सत्य कहूं तो...

एक संन्यासी के संस्मरण

IF TRUTH BE TOLD
A MONK'S MEMOIR
NOW IN HINDI



NATIONAL BESTSELLER

ओम स्वामी

JAICO

सत्य कहूं तो...
एक संन्यासी के संस्मरण

IF TRUTH BE TOLD
A MONK'S MEMOIR

NOW IN HINDI

ओम स्वामी

जयको पब्लिशिंग हाऊस

अहमदाबाद बेंगलोर भोपाल भुबनेस्वर चेन्नई
दिल्ली हैदराबाद कोलकाता लखनऊ मुम्बई

सत्य कहूं तो...

ओम स्वामी एक संन्यासी हैं, जो हिमालय की तराई में स्थित एक आश्रम में रहते हैं। वे सत्य की खोज में संसार का त्यागकर हिमालय की शरण में गए, जहां उन्होंने अत्यंत गहन ध्यान की साधना कर आत्मसाक्षात्कार पाया।

ओम स्वामी ने व्यवसाय में स्नातक की डिग्री प्राप्त की और वे सिडनी, ऑस्ट्रेलिया से एमबीए हैं। वे अपने ब्लॉग omswami.com पर प्रति सप्ताह लिखते हैं। उनके ब्लॉग का दस लाख से अधिक पाठक लाभ उठा रहे हैं।

प्रकाशक
जयको पब्लिशिंग हाऊस
ए-2 जश चेंबर्स, 7-ए सर फिरोजशाह मेहता रोड
फोर्ट, मुंबई - 400 001
jaicopub@jaicobooks.com
www.jaicobooks.com

IF TRUTH BE TOLD
सत्य कहूं तो...
ISBN 978-81-8495-816-4

अनुवादक: विजय नंदन

अनुवाद संपादनः रचना भोला 'यामिनी'

पहला जयको संस्करण: 2015

सत्य कहूं तो...

ओम स्वामी

जीवन के प्रत्येक चरण में मुझे सहयोग देने वाले मेरे मातापिता,
मेरे ज्येष्ठ भ्राता, राजन व मेरी दीदी, उपासना के
प्रति अशेष कृतज्ञता सहित

अनुक्रमणिका

‘ॐ’ भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवाः।
भद्रं पश्येमाक्षभियेजत्राः।
स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवाग्सँस्तनूभिः।
व्यशेम देवहितं यदायूः।

जो शुभ है,
कानों से केवल उसे सुनें
जो शुभ है,
नेत्रों से केवल उसे देखें
हे दिव्य स्वरुप,
हम संतोष व स्वास्थ्य से परिपूर्ण जीवन व्यतित करें
अपने जीवन काल में, तेरी अनंत महिमा का गुणगान करें
ऋग वेद 1.89.8

प्राक्कथन

मैं समझता हूं कि हम मनुष्य भी एक विचित्र प्रजाति हैं। विचित्र इसलिए कि हमें जो प्राप्त होता है, हम हमेशा उससे कुछ भिन्न पाने की इच्छा करते हैं। हमारे अंदर निःस्वार्थ बनने की क्षमता भी उतनी ही बड़ी होती है, जितनी स्वार्थी बनने की संभावना। मैं इसका उदाहरण प्रस्तुत कर सकता हूं, क्योंकि मैं स्वयं को एक सकरुण व्यक्ति के रूप में देखता और यह सोचता था कि मेरे अंदर अपने प्रियजनों को पीड़ा पहुंचा पाने की कठोरता नहीं है। फिर भी, जब मेरी इच्छा बलवती हुई, तो मैंने सहज ही उन पर वेदना थोप दी।

एक सुबह, मैं जगा, तैयार हुआ, काम पर गया और शाम को घर वापिस नहीं लौटा। इसकी बजाए, मैं एक रेलगाडी में सवार हो गया, ताकि वह मुझे मेरी सारी निश्चितताओं, मेरे सभी प्रियजनों तथा मेरी समस्त संपदा से दूर ले जाए। अपने परिवार को कोई पूर्वसूचना दिए बिना, यहां तक कि बिना कोई संकेत किए, मैं केवल चल दिया, हालांकि यह मुझे भली-भांति पता था कि परिवार में एक पुत्र या भाई बन मेरा फिर लौटना संभव न हो सकेगा।

ऐसा नहीं है कि मैंने उनकी भावनाओं के बारे में नहीं सोचा। मैंने सोचा, किंतु मैंने इसकी उपेक्षा करना स्वीकार कर लिया कि उन्हें कैसा लगेगा, क्योंकि मुझे अपने अंतःकरण की पुकार की अब और अधिक उपेक्षा करना स्विकार न था। मुझे अब यह स्वीकार न था कि मैं हर सुबह जागूं, पूरे दिन काम करूं, शाम को घर आऊं, रात का भोजन करूं और सो जाऊं, केवल इसलिए क्योंकि हर व्यक्ति यही कर रहा था, क्योंकि इसे ही 'सामान्य' समझा जाता था। और फिर किसने यह तय किया कि क्या सामान्य है? यदि मुझे दूसरों के द्वारा निश्चित नियमों और शर्तों के अनुसार जीना था, तो फिर मेरे जीवन का लक्ष्य क्या था, मेरा व्यक्तिगत प्रयोजन-यदि वह कुछ था, तो-क्या था?

मेरे सामने वह धन-संपदा पड़ी थी, जो मैंने पिछले दशक के दौरान बड़े यत्न से खड़ी की थी। परंतु कारें, संपत्ति और एक बैंक बैलेंस तो अंततः निष्प्राण चीजें ही थीं। सच तो यह है कि वे हमेशा से वैसी ही थीं। मैं उन्हें साथ लेकर नहीं जन्मा था और मेरी मृत्यु के बाद उनका मेरे साथ नहीं जाना भी तय था। तो फिर जीवन का यह सारा संघर्ष किस लिए था? और यह जिसके लिए भी था, क्या वह इसके योग्य था?

मैंने स्वयं को असंख्य बार यह सांत्वना दी कि एक दिन मैं अपने जीवन का प्रयोजन पा लूंगा, परंतु अब इन सांत्वना में कोई दम न बचा था, जबकि इधर मेरे मस्तिष्क में मेरे सवाल नगाड़ों की तरह बज रहे थे, जिन पर पड़ती प्रत्येक चोट के साथ उनकी आवाज और तेज होती जा रही थी, और निकट आती जा रही थी। मेरे चहुं ओर के समस्त संगीत अब उस ध्वनी में डूबते जा रहे थे। पंछियों तथा वर्षा की मधुर ध्वनियां, मेरी मां की करुण बातें और मेरे पिता के प्यारभरे शब्द - अब मुझे कुछ भी सुनाई नहीं देते, आनंददायक लगने का तो प्रश्न ही नहीं था।

मैंने जिन चीजों को प्राप्त करने की चेष्टाएं की थीं, वैसी हर चीज छोड़कर; जो भी मैंने बनाया था, उन्हें समाप्त कर और जिन्हें भी मैं जानता था, मैंने उन्हें त्याग कर अपने अतीत के प्रति उदासीनता अनुभव की। एक अनमने अजनबी की तरह। ठीक जिस प्रकार क्रमशः उदित प्रातःकाल रात्रि के अस्तित्व को मिटा देता हैं, उसी प्रकार सांसारिक जगत से मेरे प्रस्थान ने मेरे उस जीवन को मिटा दिया जिससे मैं परिचित था।

एक इंटरनेट कैफे से मैंने अपने परिवार तथा घनिष्ठ मित्रों को ईमेल भेजकर उन्हें यह बताया कि मैं कहीं दूर जा रहा हूं, और वहां से वापिस आऊंगा या नहीं, अथवा कब आऊंगा, यह मुझे नहीं मालूम। जब मैंने अपने सभी ईमेल अकाउंट बंद कर दिए, सिमकार्ड नष्ट कर दिया, अपना फोन किसी को दे दिया और तीन दशकों के अपने सांसारिक जीवन से अपने सारे नाते तोड़ लिए, तो मेरा हृदय किसी भी भावना अथवा भावुकता से बोझिल न था। मुझे परिभाषित करने वाले सभी ठप्पे जैसे बेटा, भाई, मित्र, सीईओ, एमबीए, सहकर्मी आदी को वहीं छोड़ कर मैं एक नए अवतार में उनसे बाहर निकल आया।

मेरा यह अस्तित्व पूर्ण रुप से नग्न था। नही, यह नग्नता किसी भौतिक अर्थ में नहीं बल्कि कुछ भी न होने, कुछ भी न रखने - यहां तक कि एक पहचान अथवा एक नाम तक नहीं रखने के संदर्भ में था। मानो शून्यता की इस अवस्था में मुझे केवल एक ही भाव से परिपूर्ण किया जा सकता था, जिसकी जाने मुझे कब से तलाश थीः एक संन्यासी का जीवन।

अध्याय एक

पहला कदम

मैंने अपने लॉज का हिसाब चुकता किया और बाहर भीड़-भरी सड़क पर निकल आया। एक साइकिल रिक्शा देखकर मैंने उसे पास आने का संकेत किया।

'कहां जाना है?' रिक्शेवाले ने पूछा।

'घाट।'

'कौन सा घाट? घाट तो कई हैं।'

मैं इस प्रश्न के लिए प्रस्तुत नहीं था। भला मैं यह कैसे जान सकता था कि वाराणसी में कई घाट हैं?

'बस, किसी भी घाट पर ले चलो।'

'बाबूजी, मैं आपको इस तरह किसी भी घाट पर नहीं ले जा सकता। वरना, आप घाट पर पहुंच कर कहेंगे कि मुझे यहां नहीं आना था।'

'आप, किसी एक घाट का नाम लें।'

'दशाश्वमेध घाट।'

'ठीक। मुझे वहीं ले चलो।'

मैंने 1995 के बाद से रिक्शे की सवारी नहीं की थी। पंद्रह वर्षों पूर्व, उस समय मैं एक ऐसा किशोर था, जो सांसारिकता की ओर आकृष्ट और उन्मुख था। अब, तीस वर्ष की आयु में, मैं ठीक विपरीत दिशा में जा रहा था। सवारी नहीं बदली थी, परंतु दिशा बदल चुकी थी; शारीरिक रूप से व्यक्ति नहीं बदला था, परंतु प्राथमिकताएं बदल चुकी थीं।

मैंने यही समझा कि मैं रिक्शे में एक शांत नदी तट की ओर जा रहा हूं, परंतु यह मेरा भ्रम था। घाट तो भीड़ से ठसाठस भरा था मानो किसी उत्तेजित मन में विचारों का ताँता बँधा हो; अथवा किसी मृत कीट पर चीटियों ने डेरा डाल रखा हो।

भारत मेरे लिए कोई नया तो नहीं था; मैंने अपने जीवन के प्रथम अठारह वर्ष इसी देश में बिताए थे। किन्तु अपनी अज्ञानता में मैंने वाराणसी में किसी दूसरे ही भारत की कल्पना कर

ली। मेरे मन में एक पुरानी तस्वीर कैद थी, एक ऐसी तस्वीर, जो मैंने देखी तो न थी, मगर मध्ययुगीन पुस्तकें पढ़ते हुए उसकी कल्पना अवश्य कर ली थीः गंगा तट पर बसी काशी, एक प्राचीन नगरी, जो विद्वानों, संतों, तांत्रिकों, योगियों तथा दूसरे आध्यात्मिक लोगों से भरी है।

मैं कुछ देर यों ही निरुद्देश्य घूमता रहा। बहुत पहले मैंने तैलंग स्वामी के विषय में सुना था - एक पहुंचे हुए महात्मा, जो सौ साल से भी अधिक समय से पूर्व काशी में रहते थे। ऐसा कहा जाता कि उनके समाधिस्थल पर एक मठ बना हुआ है। मैंने गंगा तट पर एक शांत मठ की कल्पना कर रखी थी, जहां पुराने वटवृक्षों की सघन छाया में बैठे सच्चे साधक एक श्रद्धेय गुरु के मार्गदर्शन में साधनालीन होंगे। मैंने मठ के विषय में पूछताछ की, किंतु किसी को भी इस मठ का पता-ठिकाना मालूम नहीं था।

मणिकर्णिका घाट इस शहर का ऐसा अकेला दूसरा स्थान था, जिसके बारे में मैंने पहले से सुन रखा था। मैंने सुना था कि वहां एक श्मशान है, जहां मृत शरीरों का दाहसंस्कार चौबीसों घंटे चलता ही रहता है। मुझे आशा थी कि वहां मेरी भेंट किसी तांत्रिक से होगी जो जलती चिताओं के समीप बैठे किन्हीं गोपनीय क्रियाओं में लीन होंगे। मैं वापिस सड़क तक आया और एक दूसरे रिक्शे को रोका। दोपहर हो चली थी और गरमी मुझे परेशान करने लगी थी। मैंने स्वयं को यह दिलासा देना चाहा कि अभी तो यह केवल मध्य मार्च है, किंतु इस बौद्धिक दिलासे ने भी गरमी से राहत नहीं दी।

‘मणिकर्णिका घाट चलोगे?’

‘हां, बाबूजी, मगर मैं वहां आगे तक नहीं जा सकता। मैं आपको उसकी निकटतम जगह तक पहुंचा दूंगा।’

‘कितने रुपए?’

‘बीस।’

मैं कूद कर रिक्शे पर जा बैठा, जो व्यस्त सड़क पर अपनी धीमी मगर सतत चाल से आगे बढ़ता जा रहा था। कई बार उसे भीड़ से बाहर निकालने के लिए रिक्शेवाले को रिक्शे से उतरना पड़ता। सूरज आग उगल रहा था और सड़क से जलते कोयले की तरह गरमी निकल रही थी, किंतु मैंने पाया कि रिक्शेवाले के पैरों में चप्पल नही थीं।

‘आप चप्पलें क्यों नहीं पहनते?’

बाबूजी, मैंने जिस दिन उन्हें खरीदा, उसी दिन वे मंदिर के बाहर से चोरी चली गईं।’

‘मैं इस इलाके को नहीं जानता। जूते-चप्पलों की किसी दुकान के सामने रुकना। मैं आपको चप्पलें खरीद कर देना चाहता हूं।’

‘मैं बगैर चप्पलों के काम चला लूंगा, बाबूजी।’

‘आपका नाम क्या है?’

‘महेश कुमार।’

‘चिंता न करें, महेश। मैं आपको आपका भाड़ा भी दूंगा।’

कुछ ही देर बाद मुझे जूतों की एक छोटी दुकान दिखी। मगर महेश रुकने को तैयार नहीं

थे। मुझे उन्हें रुकने का एक आदेश सा देना पड़ा। रिक्शे से उतर कर मैंने उन्हें अपने पीछे दुकान में आने का संकेत किया। वे खीसें निपोरते हुए भीतर आए।

'आइए, श्रीमान,' दुकानदार ने मुझे बिठाया। महेश दरवाजे के पास ही खड़े रहे। मैंने उन्हें अंदर आकर सोफे पर अपनी बगल में बैठने का संकेत किया। उन्होंने अत्यंत अनिच्छापूर्वक वैसा ही किया।

तभी दुकान का एक युवा कर्मी मेरे पीने के लिए पानी ले आया।

'इसे महेश को पिलाएं,' मैंने कहा। 'वही आपका आज का ग्राहक है।'

'चप्पल की बजाए सैंडिल लेंगे, महेश? वे ठीक रहेंगे।' मैंने महेश से कहा।

'आप जैसा ठीक समझें।'

दुकानदार दुकान के पिछले हिस्से में गए और कुछ मिनटों बाद हाथों में सैंडिलों का एक जोड़ा लिए वापिस आए। हलके भूरे रंग की उन सैंडिलों में गहरे भूरे फीते और स्टील के चमकते बिल्ले लगे थे। सैंडिल काफी आरामदायक लगीं। उन्होंने वे सैंडिल महेश के हाथों में थमानी चाही।

'कृपया इनके पैरों में पहनाएं, जैसा आप किसी भी दूसरे ग्राहक के लिए करते हैं,' मैंने कहा।

महेश ने घबराहट से मेरी ओर देखा। मैंने उनकी आंखों में देखते हुए संकेत किया। तुरंत ही उनके चेहरे पर एक मुस्कान तैर गई और उन्होंने अपने पैर आगे बढ़ा दिए ताकि विक्रेता उनमें सैंडिल पहना सके। मैंने महेश के सुंदर सांवले चेहरे, उनके पीले किंतु बेडौल और दागदार दांतों तथा संतुष्टि से भरी बड़ी आंखों की ओर देखा और मुझे अपने भीतर बड़े स्नेह की अनुभूति हुई। उनकी मुस्कान ने मानो मेरा दिन सार्थक कर दिया था।

महेश ने अब रिक्शे के पैडल को एक नए उत्साह से चलाना शुरू किया। जैसे नई चप्पलों में उनके मटमैले, असुंदर से पैर जैसे जीवंत हो उठे हों। मेरी दृष्टि उनके पैडल चलाते पैरों पर जा टिकी मानो बाकी सभी चीजें नेपथ्य में जा छिपीं - दुकानें, शोरगुल, गरमी। मैं उनके पैरों के सिवाय और कुछ देख ही नहीं पा रहा था, मानो वे एक दिव्य नृत्य कर रहे हों। अभी एक पैडल ऊपर गया और अब एक पैडल नीचे आया; सभी गतियां जैसे पूरी लय सहित अनायास और सहज होती जा रही थीं।

महेश ने मुझे मणिकर्णिका घाट के निकटतम स्थल तक पहुंचा दिया। रिक्शे से उतरते हुए मैंने उन्हें चेताया, 'यदि आप फिर कभी मंदिर जाओ, तो अपने जूते बाहर मत छोड़ना।'

'नहीं छोड़ूंगा,' उन्होंने कहा।

मैंने पचास रुपए का एक नोट उनकी ओर बढ़ाया।

'बाबूजी, मैं आपसे पैसे कैसे ले सकता हूं?'

'मेहरबानी करके इसे रख लें। यदि आप इसे लेंगे, तो मुझे बहुत खुशी मिलेगी।'

वे रिक्शे के आगे से घूम कर मेरे निकट आए और मेरे पैर छूने नीचे झुके। मैंने उनकी कलाई पकड़ उन्हें ऊपर उठाया। 'केवल तीन ही ऐसी जगहें हैं, जहां आपको अपना सिर झुकाना चाहिए।' मैंने कहा। 'ईश्वर के समक्ष, अपने बड़े-बुज़ुर्गों के समक्ष व अपने गुरु के

समक्ष।'

मैंने जबरन उनके हाथों में वह नोट रखा और यह सोचते हुए चल दिया कि महेश रिक्शा चलाने के लिए नहीं बने थे। वे एक क्लर्क हो सकते थे, एक अधिकारी, एक एक्ज़ीक्यूटिव हो सकते थे। होना तो यह चाहिए कि किसी को भी एक ऐसा जीवन न जीना पड़े, जो शरीर और आत्मा को तोड़ देने वाला हो। यह व्यक्ति एक लोकतांत्रिक देश में रह रहा था, पर क्या उसने इसे एक मुक्त जीव बनने दिया? राजसत्ता ने उसे कुछ नहीं दिया और उसके देशवासियों ने उसे सम्मान नहीं दिया। उसे यह आजादी नहीं मिल सकी कि वह अपने सिर के ऊपर एक छत पा सके अथवा अपनी दिनचर्या की कठिनता और कठोर नीरसता से छुटकारा पा सके। मैं नहीं समझता कि महेश ने अपने जीवन में कभी कोई अवकाश पाया होगा अथवा किसी विलासिता का आनंद लिया होगा। उन्हें कोई एक चीज जो बहुतायत से मिल सकी, वह उनकी जरूरतें ही थीं, जिनकी उनके जीवन में कभी कोई कमी नहीं हुई होगी। इसके बारे में सोचने पर मुझे यह लगा कि उनमें और मुझमें कोई बहुत अधिक अंतर नहीं था। हम दोनों अपनी आवश्यकताओं की बेड़ियों में जकड़े पड़े थे। जहां उनकी आवश्यकताएं अधिक साकार और अनिवार्य थीं, वहीं मेरी अमूर्त और मेरे ही द्वारा स्वयं पर थोपी गई थीं।

फिर मैंने किसी तरह मणिकर्णिका घाट तक पहुंचने का मार्ग पा ही लिया। मुझे संदेह है कि भारत में और कहीं भी इतनी तंग सड़कें होंगी, जितनी वाराणसी में हैं। कम से कम मैंने तो नहीं देखी। यदि आपकी नाक थोड़ी बड़ी हो और आप अपना सिर घुमाएं, तो किसी न किसी चीज़ से जरूर टकरा जाएंगे। मुझे नहीं मालूम कि मैं किस तरह मणिकर्णिका घाट तक पहुंच सका, पर अंततः मैं वहां पहुंचने में सफल रहा।

घाट पर एक चिता जल रही थी, जबकि दूसरी अधिकांशतः राख में बदल हो चुकी थी, जिसके सुलगते अंगारे कभी-कभी दहक उठते। चारों ओर टूटे हुए मटकों के टुकड़े बिखरे पड़े थे। अंत्येष्टि के समय जल से भरा मिट्टी का एक पात्र तोड़ना एक हिंदू परंपरा है, जो यह संकेत देती है कि मृतक की आत्मा ने मानवीय जगत से अपने सारे संबंध तोड़ दिए हैं। पात्र मानव शरीर का प्रतीक है और उसका टूटना इस बात का संकेत कि उससे बंधी आत्मा अब मुक्त हो चुकी।

वहां कोई संत, कोई रहस्यवादी साधक और कोई पहुंचे हुए तांत्रिक या योगी दिखाई नहीं दिए जो मुझे आत्मसाक्षात्कार की अपनी यात्रा में भागीदार बनाने का संकेत देते। उनकी बजाए, चिताओं के चारों ओर लकड़ियों के विक्रेता, पानवाले और चूड़ीवाले बैठे थे। असंख्य लोग, गाएं, कुत्ते और बिल्लियां इधर-उधर घूम रही थे।

घाट से निराशा पाकर मैंने एक बार फिर तैलंग स्वामी के मठ का पता लगाना प्रारंभ किया। बहुत सारे लोगों से पूछने पर उनमें से एक ने स्वीकृति में सिर हिलाया। उसने एक निश्चित दिशा में संकेत किया। मैं संकरे रास्तों से होकर आगे बढ़ा, उनमें दोनों ओर ऐसी इमारतें दिखी, जो कभी भी ढह सकती थीं। दुकानों में लगभग हर प्रकार का सामान बिक रहा था। पागल कर देने वाले ट्रैफिक से बचते-निकलते मैंने स्वयं को घुमावदार गलियों में

चलते हुए पाया, जिनमें एक दूसरे से सटे मकान थे और यहां-वहां खड़ी मोटरसाइकिलों के बीच बच्चे खेल रहे थे। मैं जानवरों के मल-मूत्र पर अपने पांव पड़ने से बचाने की पूरी कोशिश करता हुआ आगे चलता रहा।

पैंतालीस मिनट चलने के बाद मैं थककर और निराश होकर रुक गया। मुझे वह मठ तो नहीं मिला और कोई ऐसा व्यक्ति भी न मिला, जिसने कभी उसे देखा हो। मैं सड़क किनारे एक ऊंची जगह पर बैठ अपने ललाट से पसीना पोंछते हुए सोचने लगा कि आगे कैसा बढा जाए। कुछ मिनटों बाद, मैंने अपना सिर ऊपर उठाया, तो पाया कि मेरी दाहिनी ओर हिंदी में एक बोर्ड पर लिखा है, 'तैलंग स्वामी मठ।' वास्तव में, यह एक मंदिर था।

मैं अंदर चला गया। पुजारी के आसन पर एक व्यक्ति आसीन थें, उनका प्रत्येक अंग जैसे गोल थाः सिर, चेहरा, छाती, पेट, हाथ और पैर। तभी मुझे एक नाई दिखाई दिए, उन्होंने अपने थैले से औजार निकाले और पुजारी की दाढ़ी बनाने लगे। बाहर की झुलसा देने वाली गरमी के बाद मंदिर के अंदर की शीतलता का सुख उठाते हुए मैं उन्हें देखता रहा। उसके बाद नाई ने अपनी चीजें समेटीं और वहां से चल दिए। पैसे का कोई लेन-देन न हुआ। संभवतः उनके बीच मासिक आधार पर कोई समझौता था।

मैंने पुजारी से तैलंग स्वामी, उनकी शिष्य परंपरा और मठ के विषय में पूछा। उन्होंने बताया कि ऐसी कोई चीज नहीं है और भुगतान करने पर भी मंदिर में किसी के ठहरने की कोई व्यवस्था नहीं है।

मुझे ऐसा लगा, मानो मेरे साथ छल हुआ हो, हालांकि मैं निश्चित न था कि मुझसे यह छल किसने किया।

'तैलंग स्वामी को वहां समाधिस्थ किया गया था,' उन्होंने मंदिर परिसर के एक कोने की ओर संकेत किया। मैं वहां गया और प्रार्थना की, 'कृपया मेरा मार्गदर्शन करो, हे स्वामी, ताकि मैं अपना लक्ष्य प्राप्त कर सकूं।'

बाहर निकलने लगा तो मुझे रोककर पुजारी ने पूछा कि मुझे किसकी तलाश है? मैंने उन्हें बताया कि मैं एक गुरु की खोज में हूं और संन्यास दीक्षा लेकर एक संन्यासी का जीवन जीना चाहता हूं।

उन्होंने कहा कि मुझे संसार को छोड़ने और एक गुरु की तलाश करने की कोई आवश्यकता नहीं है और मुझे विवाह कर एक सामान्य जीवन जीना चाहिए।

सामान्य जीवन? सामान्य जीवन जैसी कोई चीज़ कहां होती है। जो किसी एक की दृष्टि में सामान्य होता है, वही किसी दूसरे के लिए अत्यंत असामान्य हो जाता है। एक योगी यह समझता है कि संसार असामान्य है और लोग खाते-पीते-मैथुन करते हुए, जानवरों जैसा जीवन व्यतीत करते हैं। संसार यह सोचता है कि योगी मूर्ख है, जो कुछ भी न करता हुआ अपना जीवन यूँ ही बिता देता है और जीवन के असंख्य आनंदों में किसी एक का भी आनंद नहीं ले पाता।

स्वभावतः, पुजारी को मैंने इनमें से कोई भी बात नहीं कही। एक ऐसे व्यक्ति से तर्क-वितर्क करने का मेरा कोई प्रयोजन न था, जो न मेरी व्यग्रता समझ सकते थे, न ही मेरा

अभिप्राय!

मैं एक बार फिर घाट की ओर बढ़ा। लगभग तीन बज चुके थे और अब अधिक गरमी का अनुभव हो रहा था। मैंने पूरा दिन कुछ भी नहीं खाया था। सुबह मुझे कोई ऐसा स्थान नहीं दिखा, जहां भोजन बहुत तला-भुना न हो। दोपहर के बाद मैं अपने आत्मसाक्षात्कार के उद्देश्य को लेकर व्यस्त रहा, पानी की भी बोतल घंटों से खाली थी और भूख से अंतड़ियां कुलबुला रही थीं।

दिशा का ज्ञान न होने के कारण मैं यह भी नहीं समझ पा रहा था कि मैं घाटों की ओर बढ़ रहा हूं अथवा उनसे विपरीत दिशा की ओर जा रहा हूं। जब मैंने यह पाया कि सड़कों पर लोगों की संख्या काफी कम हो गई है, तो मैं समझ गया कि मेरी दिशा गलत ही थी। संयोग से मुझे वहां कुछ लॉज दिखे और मैंने उनमें यह पूछ लिया कि क्या वहां कोई जगह खाली है। मैं अब किसी शांत तथा ठंडी जगह पर केवल लेट जाना चाहता था। यह एक विचित्र बात थी कि हर जगह उन्होंने मुझसे यह पूछा कि मैं कहां से आया हूं, कितने लोगों को कितने दिनों के लिए कमरे की आवश्यकता है और उसके बाद मुझे यह उत्तर मिलता कि कोई जगह खाली नहीं है। मेरे अंदर एक कौतूहल जाग उठा। यदि उनके पास कमरा खाली न था, तो फिर वे मुझसे ढेर सारे प्रश्न क्यों करते थे?

मैं आगे बढ़ता गया और अंततः नदी किनारे जा पहुंचा। हिन्दू शास्त्रों में 'गंगा मैया' के पावन महत्व की इतनी अधिक चर्चा है कि उसी की 'संतानों' ने उसे कल्पनातीत ढंग से प्रदूषित कर दिया है। मेरे निकट से प्रवाहित हो रही गंगा देखकर मेरा मन क्षोभ तथा अविश्वास से भर उठा। मैंने गंगा को हरिद्वार तक देखा था, जहां वह स्वच्छ थी। परंतु सभी नगरों में सर्वाधिक पवित्र मेरी कल्पना की काशी में इसकी यह क्या दशा है? मैंने निर्णय लिया कि मैं यहां की गंगा में स्नान नहीं करूंगा। यद्यपि आंतरिक रूप से मैंने गंगा मैया के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की। चाहे कैसे भी रूप में क्यों न हो, मां तो मां ही होती है।

'मालिश?' मैंने पूछने वाले व्यक्ति को देखने के लिए अपनी नजरें उठाईं।

'नहीं। मुझे एक गाइड की आवश्यकता है।'

'ठीक है, भैया जी। मैं आपका गाइड बन सकता हूँ।'

'आप इस इलाके से भलीभांति परिचित तो हो?'

'हां, भैया जी।'

'कितना मेहनताना लोगे? मुझे आज के बाकी बचे दिन और संभवतः कल भी आपकी आवश्यकता होगी।'

'आप जो भी चाहें, मुझे दे सकते हैं।'

'250 रुपए प्रतिदिन?'

'मंज़ूर है, भैया जी।'

'तो फिर हम चलें।'

'मैं आपका बैग ले लूंगा,' उन्होंने भलमनसाहत से कहा।

'मुझे यह अनुभव होने में कुछ मिनट लग गए कि अब मैं उस बोझ से मुक्त हो गया हूं।

सामान के साथ यही होता है - हम इसे ढोते फिरने के अभ्यस्त हो जाते हैं। हम यह जानते हैं कि यह भारी है, परंतु फिर भी वह बोझ सहज ही हमारे जीवन का एक अंग बन जाता है। उसे अपनी पीठ से उतार जब हम हलकापन महसूस करते हैं, सिर्फ तभी बोझ की चेतना आती है।

मनीष भी मुझे दो गेस्ट हाउस में ले गए, जहां मुझसे फिर वही सवाल किए गए। अंत में मेरे गाइड ने यह रहस्य सुलझाते हुए बताया कि जब इन लॉजों के कर्मचारी अपने काम में व्यस्त नहीं रहते अथवा टीवी पर क्रिकेट मैच नहीं देखते, तो वे अपना समय काटने के लिए अपने यहां कमरे की पूछताछ करने आने वालों के साथ इसी तरह बातें किया करते हैं। उनके पास कोई कमरा खाली नहीं होता, पर उन्हें एक अजनबी के साथ बातचीत करना बहुत भाता है।

मैंने ठहरने के लिए एक जगह की तलाश में बहुत दूर न जाकर, मनीष से कहा कि वे मुझे एक बड़े होटल में ले चलें, पर उन्होंने कहा कि इस इलाके में कोई वैसा होटल नहीं है। मैं यह समझ गया कि उन्हें इस इलाके की अच्छी जानकारी न थी और उन्होंने मुझसे झूठ कहा था। बहरहाल, अब मैं भूख से बेहाल हो रहा था। हमें एक शाकाहारी जैन ढाबा मिल गया, जहां बगैर प्याज-लहसुन का पका भोजन उपलब्ध था। मैं प्याज-लहसुन से परहेज करता था, सो मेरे लिए यह स्थान बहुत अच्छा था, परंतु वहां का भोजन अच्छा न था। वह मुझे स्वादहीन लगा। मैं बुरी तरह थक चुका था और मेरा सिर दर्द कर रहा था। जो भी मेरे सामने आया, उसे कुछ भी कहे बगैर मैंने कंठ से नीचे उतार लिया किंतु मेरे गाइड ने मजा लेकर खाया। ढाबे से निकलने के बाद मैंने एक छोटी सी दुकान से ठंडे पानी की दो बोतलें खरीदीं। पहली बोतल खोलकर मैंने उसके पानी से अपना चेहरा धोया और बाकी बचा पानी अपने सिर पर उड़ेल लिया। फिर दूसरी बोतल को खोल उसका पानी एक सांस में पी गया।

जब हमने एक बार फिर रहने की जगह तलाशनी शुरू की, तब लगभग छह बज चुके थे। अंततः पूजा गेस्ट हाउस पहुंचकर हमारा भाग्योदय हुआ, जहां मुझे एक कमरा मिल गया। मैंने मनीष को छुट्टी दी और उनसे फिर दूसरे दिन सुबह आने को कहा।

हालांकि मुझे अब एक कमरा मिल चुका था, मगर थकावट तथा शरीर में पानी की कमी हो जाने की वजह से मैं सो नहीं सका। मेरे शरीर की हालत मेरे पेशाब के रंग से स्पष्ट थी। मुझे यह नहीं मालूम था कि मैं इतना अधिक दुर्बल हो चुका हूं। बहुत दिन नहीं बीते, जब मैं रोजाना बैडमिंटन खेलता था, गोल्फ कोर्स में लगातार घंटों बिताता, बॉडी बिल्डिंग करता, नियमित रूप बारह से मील की दौड़ लगाया करता और यह सब मुझे बहुत सहज महसूस होता था। किंतु आज, 'वास्तविक' संसार में बिताया केवल एक दिन मुझे मेरी क्षमता से कहीं भारी पड़ गया। मेरा यह विश्वास कि मैं पूरी तरह से स्वस्थ और मजबूत हूं, केवल एक अहंकारभरी धारणा सिद्ध हुआ।

मैंने महसूस किया कि मेरा शरीर संन्यास की कठिनाइयों के लिए कतई तैयार न था। यदि मैं केवल एक दिन की गरमी न सह सका, तो फिर ध्यान करने और एक संन्यासी के जीवन की कठोरताएं झेल पाने की आशा के लिए स्थान कहां था? घोर तपश्चर्या हेतु मैं अपने

शरीर को किस भांति तैयार करूं, इसका मुझे कोई अनुभव न था। परंतु मुझे इतना तो पता था कि जीवन मुझे स्वतः सब सिखा देगा। मुझे केवल मुक्त मनोभाव सहित आग्रही बने रहना था।

मैं वहाँ लेटे-लेटे अपनी अब तक की सांसरिक यात्रा के विषय में विचार करता रहा।

अध्याय दो

एक रहस्यमय साधक

मेरी मां का पालन-पोषण एक गहरे धार्मिक वातावरण में हुआ और वे महात्माओं के प्रति श्रद्धा भाव रखते हुए पली-बढ़ीं। वे शहर में पधारे संतों के पुण्य दर्शन का लाभ अवश्य उठातीं।

एक दिन वे एक ऐसे असाधारण संत का दर्शन करने गईं, जिनके बारे में उन्होंने किसी से सुन रखा था। कहा जाता था कि वे कभी नहीं सोते, पलक तक नहीं झपकाते व ज्यादातर समय मौन रहा करते। वे सदा विचरण करते रहते, कभी किसी एक स्थान पर, एक रात से अधिक न ठहरते और न ही वहां पुनः आते।

'माघ महीने के शुक्लपक्ष में तुम एक विशिष्ट आत्मा को जन्म दोगी,' उन्होंने मेरी मां को देखते ही कहा।

संतों से सवाल-जवाब करना मेरी मां के संस्कार में न था, किंतु उन्हें उस महात्मा से ऐसे आशीर्वचन की आशा न थी, जो शायद ही कभी बोलते थे।

'बाबाजी, मेरी तो पहले से दो संतान हैं।'

'कोई हर्ज नहीं,' साधु ने कहा। 'बहुत दिनों की प्रतीक्षा के बाद हममें से एक आत्मा जन्म लेने आ रही है। एक संत का जन्म होने वाला है।'

'मेरी मां का दिल बैठ गया। उनमें से एक? एक संत? इसका अर्थ यह हुआ कि वह सामान्य जीवन नहीं जीएगा, बल्कि सबका त्याग कर देगा। उन्होंने अपना सिर झुका लिया और स्वयं को शांत करने की चेष्टा करती हुई मौन बैठी रहीं।'

'हां, वह सबका त्याग कर देगा,' बाबा ने मानो मां के मन में उठते विचारों को पढ़ते हुए कहा। 'जब उसका जन्म हो, तो मेरा स्मरण करना और मेरी भेंटस्वरूप तुलसी के कुछ पत्ते उसके होंठों से स्पर्श करा देना।'

उन्होंने बाबा के सामने सिर नवाया और जाने को उठीं। उनके मन में विचारों का बवंडर उठ रहा था। उनका परिवार संपूर्ण था और तीसरे बच्चे की कोई आवश्यकता नहीं थी। फिर

भी, इस तीसरी संतान को खोने व उसे एक घुमक्कड़ साधु बनने देने का विचार भी उनके लिए असहनीय सा था।

'तुम केवल माध्यम हो। दिव्य विधान का प्रतिरोध न करो,' संत ने उन्हें एक चुटकी भभूत देते हुए कहा। 'एकादशी के दिन यह भभूत खा लेना। उस बालक के जन्म के समय आकाश से पुष्प वर्षा होगी और एक इंद्रधनुष दिखेगा।'

मेरे जन्म के बारे में भले ही भविष्यवाणी कर दी गई हो किंतु, जैसा मेरे पिता ने बाद में मुझे बताया, इसकी पहले से कोई योजना न थी। अपने पहले बच्चे को खो देने के बाद मेरे माता-पिता को एक पुत्री तथा एक पुत्र हुआ। वे किसी तीसरे बच्चे की न तो कोई योजना बना रहे थे, न ही उन्हें उसकी आशा थी। परंतु उस संत की भविष्यवाणी के पंद्रह महीने बाद, मार्गशीर्ष महीने के शुक्ल पक्ष की द्वादशी की रात्रि को एक सरकारी अस्पताल में मेरा जन्म हुआ।

एक हलकी बूंदाबांदी को छोड़कर आसमान से कुछ और न बरसा और न ही कोई इंद्रधनुष दिखाई दिया। इसके पहले कि मेरे पिता और कोई अन्य संबंधी अस्पताल पहुंच पाते, मेरा जन्म हो चुका था। नवजात शिशु को घुट्टी-शहद पिलाने की रस्म भी मेरे मामाजी की बजाए एक नर्स ने पूरी की। मेरी मां को अपने साथ तुलसी के पत्ते लाना याद रहा और उन्होंने उसके तीन पत्ते अपनी उंगली और अंगूठे के बीच दबाकर उनका रस मेरे होंठों से स्पर्श कराया। मेरे पिता मेरे जन्म के आधे घंटे बाद पहुंचे और उन्होंने मेरा नाम अमित रखा।

मां को आशा थी कि शायद वे विधि के विधान को पलट सकेंगी, अतः उन्होंने संत की भविष्यवाणी अपने ही तक सीमित रखी। तीस साल के अनंतर मेरे संन्यास के बाद जब उन्होंने मुझे गेरुए वस्त्रों में देखा, तब कहीं जाकर उन्होंने वर्षों पहले की यह भविष्यवाणी सबको बताई।

वर्ष बीतते गए और मैं पांच वर्ष का हो गया। गरमियों की छुट्टियां आरंभ ही हुई थीं। एक दिन जब मेरे माता-पिता अपने कार्यालय में थे, मैं अपने भाई-बहन के साथ घर में था। राजन भैया और दीदी बाहर खेल रहे थे, पर मुझे उनके खेल में कोई रूचि न थी। मैं कमरे की अलमारी में अपने लिए कुछ तलाश रहा था कि अचानक निचले हिस्से में रखी कॉमिक्स का खजाना हाथ आ गया। उत्सुकता वश मैं वहीं फर्श पर बैठ गया और उनके पन्ने पलटने लगा।

कुछ ही पलों में, मैं उन पर बने आकर्षक चित्रों की दुनिया में खो चुका था, हालांकि मुझे लगा कि मैं उसमें लिखे वाक्य नहीं पढ़ पाऊंगा। किंतु जब मैंने गुब्बारों पर लिखे संवादों पर गौर किया, तो मैंने हैरत से यह पाया कि मैं अक्षरों और शब्दों से होते हुए सहज ही वाक्यों तक पहुंच गया। वह मेरा वाक्य पढ़ने का पहला अनुभव था।

हर रात सोते समय मां मुझे कहानियां सुनाया करतीं, किंतु अब तो मैंने कहानियों का एक नया संसार ही पा लिया था। मेरे द्वारा पढ़ा गया हर एक शब्द मुझे एक नए अवर्णनीय आनंद से भर देता। उन्हें पढ़ते हुए मेरा खिलखिलाना मुझे आज भी याद है। ऐसा लगता

मानो एक कथावाचक मुझसे व्यक्तिगत रूप से बातें करते हुए वे रोचक कहानियां सुना रहा हो। मानो मैं घने अंधकार से भरे वन के बीच किसी के साथ चल रहा था और वे अपने हाथ में थामे दीपक से मेरा पथ-प्रदर्शन कर रहे थे। हमारे द्वारा उठाए गए हर एक कदम के साथ हमारे सामने का मार्ग प्रकाशित हो उठता और एक बिलकुल नया संसार हमारे समक्ष आ जाता। सुबह का समय आगे बढ़ता गया और मैं एक के बाद दूसरा अंक पढ़ते हुए वहीं बैठा रहा।

अंततः दीदी मुझे खाने के लिए कहने आईं। अब दिन के भोजन का समय हो गया था। मैंने उनकी बात अनसुनी कर दी। मुझे खाना नहीं, कहानियां चाहिए थीं। वे बार-बार आतीं और मैं हर बार उन्हें लौटा देता। हालांकि उस समय वे केवल ग्यारह वर्षों की थी, किंतु सबसे बड़ी होने के कारण यह उनका ही उत्तरदायित्व था कि वे मुझे भोजन करवाएँ, जो मां जाते समय हमारे लिए बना जातीं।

'शाम के चार बज चुके हैं। अब तो तुम्हें अपना खाना खा ही लेना चाहिए।' मैं पढ़ता रहा।

'अमित?'

मैंने कोई जवाब नहीं दिया।

'अमित! मैं तुम्हीं से कह रही हूं।'

'मुझे नहीं खाना।'

उन्होंने मेरे गाल पर छोटा सा चुंबन लेते हुए कहा, 'बहुत देर हो गई, मेहरबानी करो छोटे भईया! खाना खा लो।'

वे यह जानती थीं कि मुझसे कोई काम जबरन कराना असंभव था, चाहे वह मेरे हित में ही क्यों न हो। प्यार ही एकमात्र रास्ता था।

'ठीक है, पांच मिनट के बाद।'

'तुम तो पूरे दिन यही कहते रहे हो।'

'इस बार एकदम पक्का है।'

दीदी आधे घंटे बाद आईं और एक बार फिर वही बात दोहराई गई। मैंने और समय मांगा। किंतु वे अब कुछ सुनने को तैयार न थी। वे मेरा खाना गरम कर मेरे पास ले आईं।

'मुझे भूख नहीं लगी है,' मैंने उनकी ओर देखे बगैर कहा।

'मेरे प्यारे भईया, अब तुम्हें खा ही लेना चाहिए,' उन्होंने कहा। 'मम्मी और पापा अब आते ही होंगे।'

'मुझे अपनी कॉमिक्स पूरी पढ़नी है, दीदी। कृपया आप मुझे तंग मत करो।'

उन्होंने चपाती, सब्जी, सलाद और अचार मिला कर एक ग्रास तैयार किया और उसे मेरी नाक के नीचे मेरे मुंह के पास ले आई। मेरे मुंह में पानी आ गया और मैंने उन्हें वह ग्रास अपने मुंह में डाल देने दिया। इस बीच मैं लगातार पढ़ता रहा। मुझे नहीं मालूम मैंने उस दिन कितनी चपातियां खाईं, पर उन्होंने जो भी खिलाया, मैं सब खाता चला गया। मैंने उनका गाल चूमा और एक बार फिर पढ़ने में मग्न हो गया। हर सुबह और शाम अपनी मां और दीदी को चूमना

मेरी प्रिय आदत थी। जिस दिन मैं ज्यादा प्रसन्न होता, उस दिन उन्हें और अधिक बार चूमता। वे बहुत प्यार से मेरी देखभाल करतीं और उनके साथ मैं हमेशा ही सुरक्षित तथा प्रसन्न महसूस किया करता।

जब वे मेरी प्लेट लेकर उठी, तो उन्होंने कहा, 'मुझे खुशी है कि तुमने खा लिया। मम्मी सुनेंगी, तो उन्हें अच्छा लगेगा।' मेरे माता-पिता एक ही सरकारी संगठन के अलग-अलग विभागों में काम करते थे। लगभग तीन दशकों तक वे एक साथ घर छोड़ते और शाम को एक साथ वापस आते। मेरे पिता स्कूटर चलाते, जबकि मां उनके पीछे एक तरफ होकर बैठतीं। पटियाला एक छोटा शहर था और घर से उनका कार्यालय बस पंद्रह मिनटों की दूरी पर था। मेरे माता-पिता की तरह इस शहर के आधे लोग राज्य बिजली बोर्ड के लिए, जबकि दूसरे आधे लोग एक राष्ट्रीयकृत बैंक के लिए अथवा कुछ वैसे ही संस्थानों के लिए काम करते।

एक दिन हमारा पांच लोगों का परिवार रात के खाने के लिए बाहर गया। रेस्तरां की बगल में एक दुकान थी, जिसके बाहर बिक्री के लिए बहुत सी पत्रिकाएं और कॉमिक्स रखे थे। अंदर शेल्फ के शेल्फ फर्श से अर्श तक किताबों से भरे पड़े थे। मुझे नहीं पता था कि ऐसी भी जगहें होती हैं। मैं ये किताबें देखकर अभिभूत रह गया। मैं लोहे के एक छोटे टुकड़े जैसा था और यहां एक विशाल चुंबक मौजूद था जिसके आकर्षण से बचना कठिन था। मैं दूसरी कोई भी चीज नहीं सोच पा रहा था। मेरा डिनर, रेस्तरां, मेरा परिवार - इन सबका अस्तित्व मानो समाप्त हो गया हो। मुझे तो किताबों की उस दुकान में जा कर, अपनी रुचि के सभी कॉमिक्स तथा पत्रिकाएं प्राप्त करते थे। मेरे पिता ने भोजन के बाद मुझे वहां ले जाने का वचन दिया, परंतु मुझसे प्रतीक्षा नहीं हो रही थी। मैंने तुरंत जाने जिद की और अंततः वे मान गए।

अब तक मैंने देखा था कि घरों में अखबारों के साथ पत्रिकाएं और कॉमिक्स दिए जाते थे। मैं यह सोच भी नहीं सकता था कि किसी को उन्हें अलग से खरीदना पड़ता है। मुझे लगता था कि वे बस अखबारों के ही साथ आते हैं। खरीदना। यही एक मुख्य शब्द बन गया। और खरीदने के लिए पैसे चाहिए थे। यदि मेरे पास बहुत 'पैसे' होते, तो मैं उस दुकान की सारी किताबें खरीद लेता।

मैं वापस रेस्तरां पहुंचकर भी उन पत्रिकाओं को विस्मित भवि से देखता रहा, जिन्हें मैंने अभी-अभी खरीदा था। घर पहुंचकर भी मैं सो न सका, क्योंकि उन्हें पढ़ना चाहता था। दूसरे दिन स्कूल में भी मैं एकाग्र न हो सका, क्योंकि मुझे वापस घर पहुंच उन्हें पढ़ना था। मैं जितने कॉमिक्स तथा पत्रिकाएं पढ़ता, उनके लिए मेरी भूख उतनी ही तीव्र होती जाती। समय के साथ मेरा यह जुनून बढ़ता ही गया। जब भी मेरे माता-पिता मेरे लिए कुछ खरीदना चाहते, मैं किताबें खरीदने को कहता।

किंतु वे भी आखिर कितना खरीद सकते थे? किताबें खरीदने की एक सीमा थी। इसलिए मुझे पुस्तकालय ले जाने का कार्यक्रम बना। यह हमारे घर से लगभग पांच किमी की दूरी पर था और वहां जाते हुए, मैं अंतरिक्ष यात्री जैसा महसूस कर रहा था जो अपनी पहली

अंतरिक्ष यात्रा पर निकला हो। जब मैंने पुस्तकालय में प्रवेश किया, तो वहां दृष्टि तथा बुद्धि से संबद्ध जो उत्तेजना महसूस की, उसे पचा पाना मेरे छोटे मन की क्षमता से बाहर था। मैंने पुस्तकालय के अध्यक्ष की ओर देखा और मुझे ऐसा लगा जैसे वे इस विश्व के सबसे भाग्यशाली व्यक्ति हों, क्योंकि वे ये सारी किताबें पढ़ सकते थे। हालांकि उनके चेहरे पर लेशमात्र भी मुस्कान न थी।

लगभग प्रत्येक दिन मैं लाइब्रेरी में दो घंटे पढ़ते हुए गुजारता, दो किताबें घर ले आता और उन्हें समाप्त कर दूसरे दिन उनके बदले फिर दूसरी दो किताबें ले आता। एक व्यक्ति केवल दो किताबें ही घर ले जा सकता था।

'तुम रोज जो किताबें घर ले जाते हो, क्या उन्हें वास्तव में पढ़ते हो?' एक बार पुस्तकालय के अध्यक्ष ने मुझसे पूछा।

'जी हां, मैं उन्हें पढ़ जाता हूं।'

'इतनी जल्दी क्या है? तुम उनका आनंद उठाते हुए उन्हें धीरे-धीरे क्यों नहीं पढ़ते?'

'मैं उनका आनंद उठाता हूं, अंकल परंतु मैं इस सेक्शन की सारी किताबें पढ़ना चाहता हूं।'

वे हंसने लगे, 'अब तक कोई भी ऐसा नहीं कर सका है।'

वे सही थे। मैं कभी भी बच्चों के सेक्शन की सारी किताबें नहीं पढ़ सका। फिर भी, दो वर्षों में ढेर सारे समय तथा बारह लाइब्रेरी कार्ड के बल पर, जब मैं वहां की चौदह सौ किताबें पढ़ चुका, तो उन्होंने मुझे पुरस्कारस्वरूप मिठाइयों का एक डिब्बा दिया।

मैं विभिन्न पत्रिकाओं तथा पुस्तकों में जो कहानियां पढ़ता, उनमें विभिन्न भगवानों का वर्णन होता, जो राक्षसों का संहार करते, चमत्कार करते, वरदान देते और जो उनकी भक्ति करने वालों की सहायता करते। वे हवा में उड़ने की क्षमता रखते, इच्छानुसार प्रकट और अन्तर्धान हो जाते, अपना आकार छोटा-बड़ा कर लेते... वे जो भी चाहते, कर सकते थे। मैं जिस किसी कहानी को पढ़ता, उसे सच मान लेता। मैंने भगवान के चतुर्दिक, भगवान के साथ और भगवान में ही अपने मनोजगत की रचना करना प्रारंभ कर दिया। मैं उन्हें देखना चाहता, उनसे बातें करना चाहता। मुझे उनका अदृश्य बने रहना पसंद न था। संभवतः पुराने जमाने में प्रभु लोगों के सामने प्रकट हुआ करते थे और अब उन्हें देख पाना संभव न रहा। किंतु एक घटना ने मेरी धारणा बदल दी।

एक दिन जब मैं बाहर खेलकर घर आया, तो मैंने मां को पूजास्थल में बैठ एक मोटी पुस्तक पढ़ता पाया। मैं उनसे लिपटा व चूम लिया।

'आप क्या पढ़ रही हैं, मां?'

'रामचरितमानस। भगवान राम की कथा।'

'आप अभी तक इसे पूरा नहीं कर पाई? आप तो इसे हमेशा पढ़ती रहती हैं।'

वे हंसकर बोलीं। 'यह हमारा धार्मिक ग्रंथ है। यह भगवान के विषय में है। हर बार जब मैं

इसे पढ़ती हूं, तो कुछ नया पाती हूं।'

'क्या भगवान राम ईश्वर हैं?'

'हां।'

'और भगवान शिव तथा श्री कृष्ण?' मैंने पूजा की वेदी पर रखे दो चित्रों की ओर इशारा करते हुए पूछा।

'वे सब भी भगवान हैं। वही भगवान, केवल उनके नाम अलग हैं, रूप अलग हैं।'

'तो फिर वे कहां हैं? मैं उन्हें वास्तविक जीवन में क्यों नहीं देख सकता?'

'वे सभी जगह हैं। जिनका हृदय पवित्र है, वे उन्हें देखते हैं, जो उनकी पूजा करते हैं, वे उन्हें देखते हैं।'

'लेकिन आप तो उनकी पूजा करती हैं। आप उन्हें क्यों नहीं देख पाती?'

'मेरी पूजा बहुत पवित्र नहीं है। कभी-कभी मुझे झूठ बोलना पड़ता है और भगवान झूठ बोलना पसंद नहीं करते। केवल वे, जो हमेशा सत्यवादन करते हैं, सत्य उन्हें देखता है।'

'आपको कभी-कभी झूठ क्यों बोलना पड़ता है, मां? और क्या मैं उन्हें देख सकता हूं?'

'हां, क्यों नहीं?' और उन्होंने पांच वर्षीय राजकुमार ध्रुव की कथा सुनाई, जो भगवान विष्णु की आराधना करने वन गए और वहां उन्होंने उनका दिव्य रूप देखा। मैं सुनकर रोमांचित हो गया।

'क्या मैं भी यह ग्रंथ पढ़ सकता हूं?'

'अवश्य, मैं इसे तुम्हारे साथ ही पढूंगी।'

'नहीं। आप इसे मेरे साथ मत पढ़ो। केवल जब मैं कहीं अटक जाऊं, तो मेरी मदद कर देना।'

उस दिन वे उत्तरकाण्ड पढ़ रही थी, जो रामचरितमानस का अंतिम अध्याय है और मैंने उस पृष्ठ को देखा, जिसे वे पढ़ रही थी। उन्होंने मुझे बताया कि वह 'रुद्राष्टकम' है, भगवान शिव की एक स्तुति। वह सरल संस्कृत में लिखा था। चूंकि हिंदी और संस्कृत की लिपि एक ही है, अतः मैं उसे पढ़ने लगा। कुछ वाक्यों के बाद मैं एक लंबे शब्द पर अटक गयाः 'स्फुरन्मौलि कल्लोलिनी चारु गंगा।' मेरी मां ने इसके उच्चारण में मेरी सहायता की और मुझे बताया कि इसका अर्थ है: 'शिव की जटाओं से सुंदर गंगा निकलती हैं।'

मुझे नहीं मालूम था कि स्तुति का अर्थ क्या होता है, पर उसकी लय और ध्वनि ने मुझे आकृष्ट कर लिया। मैंने कुछ अलग सा महसूस किया, मानो मेरे अंदर कुछ पिघल गया हो। टॉफियां खाने से लेकर अपने सोने के समय के बाद भी जगे रहकर मैंने विभिन्न प्रकार के बालसुलभ आनंदों का अनुभव लिया था और कई बार अच्छा भी महसूस हुआ, किंतु यह तो जैसे पूरी तरह से एक अलग ही अनुभूति थी। यह आनंद की कोई वैसी लहर न थी, जो उठती है और गिर जाती है, बल्कि यह एक नदी का सहज सौम्य प्रवाह था, एक अनूठे आनंद से भरपूर नदी। मुझे ऐसा लगा, जैसे मैंने अभी-अभी ईश्वर की अनुभूति की हो। पहली बार मुझे ऐसा लगा कि उन्हें देख पाना संभव है।

मैं अपनी मां के साथ सोया करता और हर रात उन्हें एक कहानी सुनाने को कहता। वे

बहुत सारे धार्मिक ग्रंथों से असंख्य प्रसंग जानती थीं। उस रात उन्होंने कृष्ण और उनके बालसखा सुदामा की कहानी सुनाई। कृष्ण सुदामा से गहराई से प्रेम करते थे और उन्होंने निर्धनता में आकंठ डूबे सुदामा को पलक झपकते ही भौतिक सुख प्रदान कर दिए। इस सुंदर कहानी से भावुक हो मैं उस रात भगवान के विचारों के साथ और यह दृढ विश्वास लेकर सोया कि भगवान का अस्तित्व होता है।

उस रात, हल्के नीले कंठयुक्त, गौरवर्णीय शिव को मैंने अपने स्वप्न में देखा। उनका चेहरा निर्दोष व सौम्य, नाक पतली-नुकीली, होंठ गुलाबी और भरे-पूरे थे। उनके लंबे कानों से चांदी के कर्णफूल लटक रहे थे। उनके सिर पर उनकी जटाएं एक जूड़े में बंधी थीं और उनके चौड़े कंधे पानी की बूंदों से चमक रहे थे, जैसे वे अभी-अभी हिमालय से आए हों और उनकी त्वचा पर हिमकण पिघल रहे हों। उनमें से एक बूंद में मैंने अपना प्रतिबिंब देखा। भगवान शिव मुझे अपनी सौम्य और प्रेमपूर्ण आंखों से निहार रहे थे।

'मैं तुमसे भेंट करने आया हूं।' उन्होंने कहा।

'ओह, आप भगवान शिव हैं। आपको मेरी मां से अवश्य मिलना चाहिए।'

वे मुस्कुराए और उन्होंने मेरे सिर को हलके से सहलाया। उनकी उंगलियां लंबी और पतली थीं।

'मैं केवल तुम्हारे लिए आया हूं।'

'नहीं, आपको मेरी मां से मिलना ही चाहिए। वे वास्तव में आपसे मिलना चाहती हैं। वे प्रतिदिन आपको प्रार्थना करती हैं।'

परंतु महायोगी तत्काल अलोप हो गए।

मैंने अपनी मां को जगा दिया।

'भगवान शिव आए थे, भगवान शिव आए थे! मैंने उन्हें आपके लिए रुकने को कहा। पर वे नहीं रुके।'

फिर मैं रोने लगा। 'मैंने उन्हें रुकने के लिए कहा। मैं चाहता था कि आप भी उन्हें देखो। वे कितने सुंदर थे। भगवान यहां थे मां, भगवान शिव यहां आए थे।'

उन्होंने मुझे शांत करने की कोशिश की, किंतु वे जितनी ही ज्यादा कोशिश करती, मैं उतनी ही जोर से रोता। मेरे लिए यह सहन करना किसी भी तरह संभव नहीं हो पा रहा था कि मां को मेरे सपने से बाहर कर दिया जाए, किसी स्थान पर मैं प्रभु के साथ रहूं किंतु मां वहां न हों।

'मत रो बेटा, मैं भगवान शिव से प्रार्थना करूंगी कि वे अगली बार मेरे लिए रुकें।' उन्होंने बहुत स्नेह से समझाया।

'क्या यह सब सच था? क्या वे सचमुच आए थे? क्या सपने सच होते हैं, मां?'

'और क्या, यह बिलकुल सच था।'

हालांकि मैं केवल आठ वर्षों का था, किंतु मुझे अभी भी याद है कि उस रात मुझे कैसी अनुभूति हुई। मैं फिर सो नहीं सका, ऐसा नहीं कि मेरे मन में कोई प्रश्न था, बल्कि नींद इसलिए नहीं आई क्योंकि मैं एक गहरी शांति की अवस्था में पहुंच चुका था - नींद से बहुत

आगे। यह शिव के स्पर्श का प्रभाव था। एक व्यक्ति के रूप में मेरा स्वयं का बोध विलीन होने लगा और मैं विशाल एवं शांत सागर तथा अनंत आकाश से एकाकार होने लगा। कहीं कोई सीमा नहीं थी, कहीं कोई प्रतिरोध न था। चारों ओर नीले सागर तथा गगन का विस्तार था, केवल शांति थी, प्रकाश और आनंद था। मेरे कुछ वर्षों के नन्हे शरीर ने अभी-अभी, अपनी कोटि-कोटि वर्षों पुरानी आत्मा का साक्षात्कार किया था।

दो वर्ष बीत गए। मैं दस वर्ष का हो गया और कॉमिक्स पढ़ना बंद कर पुस्तकों की ओर कदम बढ़ा चुका था। बाहर से तो मैं अधिकतर प्रसन्न दिखता, किंतु मन ही मन मैं पुनः प्रभु के दर्शन करना चाहता था, इच्छा थी कि उन्हें स्वप्न में देखने की बजाए पूरी चेतना के साथ साक्षात देख पाऊं। मेरा मन गहराईयों तक अशांत था। उनके बारे में और अधिक जानने की बजाए केवल उन्हें ही जानना चाहता था क्योंकि जो प्रश्न मुझे निरंतर परेशान कर रहे थे, उनके उत्तर वे स्वयं ही दे सकते थेः यह दुनिया जैसी है, वैसी क्यों है और मैं जैसा हूं, वैसा क्यों हूं? ऐसा क्यों है कि कुछ लोग बड़े घरों में रहते हैं, जबकि दूसरे सड़कों पर सोते हैं? लोग क्यों बीमार पड़ते और मर जाते हैं; ऐसा क्यों?

मेरे मित्र और मेरे आसपास के बड़े लोग मुझसे तार्किक संवाद नहीं कर सकते थे, इन प्रश्नों के उत्तर दे पाने का तो प्रश्न ही नहीं था। मुझे इनके उत्तरों की व्यर्थ तलाश करते हुए लगभग एक वर्ष और बीत गया। अंततः मैं यह आशा करते हुए अंकशास्त्र, ज्योतिषशास्त्र और अन्य गूढ़ शास्त्रों की ओर मुड़ा कि शायद वे मेरी जिज्ञासाओं का समाधान कर सकें। मेरी मां एक विद्वान ब्राह्मण पंडित सुरेश शर्मा को जानती थीं, जिन्होंने मुझे ज्योतिष पढ़ाने की सहमति दे दी। उनसे मैंने ग्रह-गोचर के महत्व समझे। उन्होंने मुझे कुंडलियां बनाना तथा अक्षांश और देशांतर के आधार पर राशियों के चिह्न निश्चित करना जैसा ज्ञान दिया।

मैंने ज्योतिष पर उपलब्ध सभी शास्त्रीय तथा समकालीन पुस्तकें पढ़ डालीं। इन पुस्तकों से मैंने कई व्याख्याएं तथा यहां तक कि उल्लेखनीय अंतर्दृष्टियां पाईं, पर मुझे मेरे उत्तर नहीं मिले। मैंने पढ़ा था कि ज्योतिष की शास्त्रीय पुस्तकों के लेखक ऋषियों ने गूढ़ और अलौकिक साधनों से दिव्य ज्ञान प्राप्त किया था। यह साफ था कि उनके पास अवश्य ही उस ज्ञान को प्राप्त करने और उसकी व्याख्या करने का कोई न कोई उपाय रहा होगा। ऐसा क्यों है कि देवता उनसे संवाद करते थे और वे मुझसे बात नहीं करते? उन सभी द्रष्टाओं में, जिन्होंने अत्यंत गहराई तथा दूरदृष्टि के साथ आश्चर्यजनक पुस्तकें लिखीं, एक समानता थीः वे पहाड़ों और जंगलों के एकांत स्थलों में रहकर वैदिक मंत्र जपा करते और ईश्वर का ध्यान करते। मैंने सोचा कि मैं जंगलों में जाकर रह तो नहीं सकता, पर शांत भाव से बैठ ईश्वर का ध्यान तो कर ही सकता हूं। मैं हर उपलब्ध अवसर पर ध्यान करने लगा, हालांकि मेरे पास न तो ध्यान का कोई वास्तविक दिशा निर्देश था, न उसकी व्यावहारिक समझ थी। शांत बैठकर ‘ॐ’ का जप करना ही मेरी ध्यान साधना थी। मैं बस वही किया करता। जब भी मेरे पास एक घंटे का अतिरिक्त समय होता, मैं ध्यान के लिए बैठ जाता।

एक सूक्ष्म परिवर्तन आना आरंभ हो गया। मैं प्रायः स्वयं को समय के चौराहे पर स्थित पाता, जहां अतीत, वर्तमान तथा भविष्य की सीमाएं मिटती हुई सी जान पड़तीं। ऐसा लगता कि जो अभी वर्तमान है, मैं उसमें पहले ही रह चुका हूं, परंतु एक अंतर थाः मैं यह देख सकता था कि अगले ही पल क्या होने वाला है। ठीक जैसे बिजली की एक चमक एक पल के लिए अंधेरे आकाश को प्रकाशित कर देती है और हम अपने आसपास की सभी चीजें बिलकुल स्पष्ट देख लेते हैं, अंतर्दृष्टि की यह चमक मुझे मेरे सामने बैठे एक पूर्णतः अपरिचित व्यक्ति के संबंध में भी सारी सूचनाओं से अवगत करा देती।

कभी-कभी अपने बारे में कुछ जानने के जिज्ञासु भी मेरे पास आने लगे। मैं उनके कुछ कहना शुरू करने के पहले ही उनके प्रश्न जान जाता। कभी सड़कों पर चलते हुए किसी अन्य राहगीर के संबंध में भी मुझे इसी तरह की सारी जानकारी मिल जाती। ऐसा प्रतीत होता जैसे कि मैं मात्र किसी व्यक्ति को नहीं देख रहा बल्कि उसके आर-पार देख रहा था। उनके विचार, कर्म, भावनायें सब पारदर्शी प्रतीत होतीं।

इस बारे में सुनिश्चित तौर पर नहीं कह सकता था कि अपनी इस क्षमता को क्या नाम दूं। मैं इसे अंतर्दृष्टि कहता, किंतु मेरी अंतर्दृष्टि के साथ एक समस्या थी कि यह मनमानी और अनियंत्रित थी। यह स्वेच्छा से चला करती और इसपर मेरा कोई नियंत्रण न था। हालांकि यह काम तो करती थी, किंतु मैं इससे अपने पूरे विश्वास तथा अपनी इच्छानुसार काम नहीं ले सकता था। इसे चाहने पर भी, किसी व्यक्ति के लिए पुनः प्रयुक्त नहीं किया जा सकता था। मैं चाहता कि ये घटनाएं एक अधिक तार्किक सिलसिले में, एक सीमा तक निश्चितता के साथ संपन्न हों। मैं अपने अंतर से अपने प्रश्नों के उत्तर चाहता था, न कि सड़क पर चलते किसी अजनबी के संबंध में छोटी-मोटी जानकारियां, चाहे वे कितनी ही सही क्यों न हों।

इसी बीच लोग मेरी ज्योतिषीय क्षमता के बारे में जानने लगे और ज्यादा से ज्यादा जिज्ञासु मेरे पास आने लगे। स्कूल जाने, पढ़ने, ध्यान करने और लोगों से मिलने की वजह से मेरी दिनचर्या व्यस्त हो गई और मेरे पास खेलने का समय ही नहीं बचा। मुझे इससे कोई अधिक शिकायत भी नहीं थी, क्योंकि दमे के रोग की वजह से मैं शारीरिक खेलों में अधिक भाग भी नहीं ले सकता था। उस समय सांसों के द्वारा ली जाने वाली दवाएं (इनहेलर) नहीं थीं, जब तक मैं चौदह वर्षों का न हो गया, तब तक तो बिलकुल ही नहीं थीं।

साल के चार महीनों, मार्च-अप्रैल और सितंबर-अक्टूबर में मैं विशेष तौर पर अस्वस्थ रहा करता। इन महीनों में वातावरण में एलर्जी पैदा करने वाले तत्व अधिक रहते और मेरी उख़डी हुई सांसों पर दवाओं का भी असर थोड़ी देर से हुआ करता। रात में कई-कई घंटे मैं अपनी मां के साथ बाहर बैठा रहता, क्योंकि लेटे रहने से सांसें लेने में और ज्यादा कष्ट होता। चांदनी अथवा अंधेरी रात में उनकी गोद में आराम करते हुए मैं अपनी नजरें उठाकर अपने सामने फैले विराट आकाश और उसमें भरे असंख्य तारे देखा करता, जिनमें से कोई-कोई तारे दूसरों से ज्यादा तेज चमकते। तुरंत ही एक प्रश्न उठता कि यह ब्रह्मांड किसने बनाया? मैं किसी दूसरे ग्रह पर होने के बजाए यहीं पर क्यों हूं? क्या भगवान उन दूर दिखाई देते तारों में से किसी एक पर रहते हैं? वे आखिर हैं कहां?

मिनट दर मिनट, घंटे बीतते जाते और सुबह होने तक मेरी सांसें सामान्य हो जातीं। तब कहीं जाकर मैं गहरी नींद में सो पाता। पापा मुझे गोद में उठाकर मेरे बिस्तर तक पहुंचा देते। कभी-कभी बाहर की हवा में सांसें लेने से भी कोई लाभ नहीं होता और वे मुझे लेकर अस्पताल भागते। अस्पताल जाना मुझे ज्यादा बुरा नहीं लगता, क्योंकि वहां एक रात रहने का मतलब दूसरे दिन स्कूल से छुट्टी होता था। वैसे में दूसरे दिन मैं घर पर ही रहता और अपने छूटे हुए अध्ययन अथवा ध्यान में समय व्यतीत करता। अस्पताल में एक सुई लगवा लेना इतने सारे आनंदों के सामने सस्ता ही लगता।

मैंने आधारभूत वैदिक मंत्र अपने ज्योतिष शिक्षक से सीखे, पर उन्हें केवल ज्योतिष में विशेषज्ञता हासिल थी और उनमें वैदिक मंत्रों के लिए आवश्यक शुद्ध उच्चारण का अभाव था। मैं अनुभव करता कि मेरे लिए अपने अन्वेषणों तथा प्रयोगों के लिए वैदिक मंत्रों का शुद्ध उच्चारण के साथ जप करना जरूरी था। केवल स्थिर बैठकर 'ॐ' का जप करना ही पर्याप्त नहीं था। मैंने एक बार फिर अपनी मां की सहायता ली, जिन्हें पंडित सूर्य प्रकाश शर्मा नामक एक युवा किंतु विद्वान ब्राह्मण का पता था। वे हाल ही हमारे शहर में आए थे।

अगले कुछ सप्ताहों तक पंडितजी ने मुझे यजुर्वेद के मूलभूत मंत्रों के शुद्ध तथा लयबद्ध उच्चारण सिखाए। यजुर्वेद के मंत्रों का प्रयोग बहुत सी दिव्य ऊर्जा के आवाहन में किया जाता है। संस्कृत भाषा में रचे गए वेदमंत्रों में यह क्षमता है कि वे मन को एक अनिर्वचनीय आनंद की अवस्था में ले जाते हैं। इसका प्रमुख कारण यह है कि विभिन्न सप्तकों में तुक, लय तथा अनुनासिक ध्वनियों का प्रयोग होता है। अतः पंडितजी मुझे वैदिक मंत्र पढ़ाने को राजी हुए। किंतु उनके साथ मेरा काम बहुत दिन तक नही चल सका।

प्रायः लोग उनके पास जन्मकुंडली के फल जानने आते। ज्योतिष में उनकी ज्यादा पैठ नहीं थी। हालांकि वैदिक साहित्य में उनकी विद्वत्ता से कोई भी व्यक्ति यह विश्वास कर सकता था कि वे ज्योतिष में भी पारंगत होंगे, क्योंकि अंततः तो ज्योतिष एक वेदांग अर्थात वेदों की शाखा ही है। एक दिन एक व्यक्ति अपनी बेटी की कुंडली मिलवाने आया। उसने अपने बेटी के लिए एक उचित वर की तलाश कर ली थी और अब वह यह निश्चित करना चाहता था कि दोनों की कुंडलियों में मिलाप हो। पंडितजी ने गणना में भूल कर दी और यह निष्कर्ष निकाला कि यह जोड़ा त्रुटिहीन रहेगा।

कुंडली के मिलाप में अधिकतम 36 अंक प्राप्त किए जा सकते हैं। पंडितजी की गणना का योग 43 तक पहुंच गया। उन्होंने उस व्यक्ति को यह बताया कि 43 अंक प्राप्त करने का मतलब यह था कि यह जोड़ा परंपरागत 36 अंकों से भी कहीं अच्छा रहेगा। मैं चकित रह गया। हालांकि उस वक्त मैं सिर्फ बारह वर्ष का था, किंतु मैंने अपने शिक्षक की भूल को इंगित करते हुए उन्हें बताया कि उस मिलाप को केवल बारह अंक प्राप्त हो रहे थे और साथ ही उनमें दो दोष भी थे। यदि सत्य कहा जाए तो जोड़ा बिलकुल ही बेमेल था। किंतु वह व्यक्ति मुझ पर क्रुद्ध हो उठा और उसने मुझे चुप कराते हुए कहा कि पंडितजी बिलकुल सही

हैं और ऐसा उत्कृष्ट मेल इसलिए संभव था कि उनकी अपनी कुंडली, उनकी पत्नी की कुंडली के साथ 33 अंकों से मेल खाती थी।

वह पंडितजी की अनुचित व्याख्या से प्रसन्न था, क्योंकि वह उसे आश्वस्त करते हुए इस बात की अनुमति देती थी कि वह इस विवाह संबंध को लेकर आगे बढ़े और वह यही चाहता था। यही वह चीज है, जो ज्यादातर लोगों के साथ घटित होती है: वे सत्य की तलाश नहीं करना चाहते, सत्य को जानना नहीं चाहते, वे तो सत्य से भयभीत होते हैं। उनके पास एक विचार अथवा विश्वास होता है, जिसमें उन्हें सुख मिलता है और वे बस इतना ही चाहते हैं कि कोई उसे सही ठहरा दे। वे तब तक इधर-उधर भटकते रहते हैं, जब तक कोई उनसे सहमत न हो जाए।

'मैं तुम्हें नहीं पढ़ा सकता,' उस व्यक्ति के जाने के बाद पंडितजी ने मुझसे कहा।

'क्यों, क्या हुआ?' मैं नहीं समझ सका था कि वे मुझसे अप्रसन्न थे।

'तुम मेरा दोष निकालने वाले कौन होते हो? तुम स्वयं को एक बड़ा ज्योतिषी समझते हो?'

'मुझसे गलती हो गई, कृपया मुझे माफ कर दें। मगर यदि यह व्यक्ति इस मिलाप के आधार पर यह वैवाहिक संबंध संपन्न कर लेता है, तो इस विवाह का असफल होना तय है। मैं सिर्फ इस व्यक्ति की मदद करना चाहता था।'

'मैं जानता हूं, पर तुम्हें उसके सामने मेरी त्रुटी नहीं निकालनी चाहिए थी। इससे मेरा अपमान हुआ और यह उचित नहीं था।'

'मुझे इस पर खेद है, पंडितजी।'

'मुझसे बहस मत करो। मैं तुम्हें आगे नहीं पढ़ाऊंगा। तुम कही दूसरी जगह जाओ।' उन्होंने व्यंग्यात्मक ढंग से आगे कहा, 'तुम एक ब्राह्मण हो, एक विद्वान ज्योतिषी हो। तुम्हें शिक्षक की क्या आवश्यकता है?'

मैंने उनके चरण छूए और उनके जीवन से निकल गया। हम दोनों ने एक दूसरे को चोट पहुंचाई थी। मैंने उनके अहं को आहत किया था और उन्होंने मेरे सपने को नष्ट किया। मैंने तय किया कि मुझे स्तोत्र तथा ज्योतिष की जरूरत नहीं है; मैं अपने ही मार्ग पर चलूंगा। अगले कुछ महीने मैंने अपने दिशानिर्देशन हेतु योग, तंत्र तथा मंत्र पर प्रमुख शास्त्र पढ़ डाले और अपने ध्यान पर केंद्रित रहा। अपनी साधना से मुझे निस्संदेह अधिक तीव्र सहजानुभूति, बेहतर स्मरण शक्ति तथा कुछ आभास और दृष्टिभ्रम मिले, पर ये सब निश्चित रूप से कहीं से भी 'उनके' निकट नहीं पहुंचते थे, जिनका विश्वास गूढ़ विद्या के ग्रंथों में दिलाया जाता था।

मंत्र विज्ञान के शास्त्रों में रुचिकर और प्रायः अवास्तविक दावे किए जाते। ये पुस्तकें बतातीं कि हवा में उड़ने से लेकर वस्तुओं के भौतिक प्रदर्शन तक कुछ भी संभव हो सकता है। ऐसा नहीं था कि मेरी इन सिद्धियों में कोई विशेष रुचि थी, पर ये मार्ग में मील के पत्थर जैसे तो थे ही। जब आप उनसे होकर गुजरते, तो यह जान लेते कि आप सही रास्ते पर आगे बढ़ रहे हैं। उस समय मेरे निकट मेरी सहायता करने वाला कोई भी न था - कोई संत, शिक्षक, पुजारी अथवा ज्योतिषी नहीं। मैं यहां तक सोचने लगा कि इन पुस्तकों याकि मंत्र

विज्ञान में ही कोई भी सत्यता नहीं थी। तभी एक दिन एक स्वपन ने मुझे एक दूसरी ही वास्तविकता में प्रवेश करा दिया। मुझे सपने में एक काले चोगे वाले लंबे साधु दिखाई दिए, जिनकी दाढ़ी लहरा रही थी।

'आगे बढ़ते जाओ, पुत्र,' उन्होंने कहा।

'क्या मंत्रों में कोई सच्चाई है?'

'आध्यात्मिक साधना और संदेह प्रकाश तथा अंधकार की तरह हैं, जो साथ-साथ नहीं रह सकते। आस्था बनाए रखो।'

'मुझे कोई परिणाम नहीं मिल रहा।'

'धैर्य तथा अनुशासन से अपने पथ पर बने रहो।'

'परन्तु कोई भी मेरा पथप्रदर्शन करने वाला नहीं है।'

'मैं आज दोपहर से पूर्व तुम्हारे पास आऊंगा।'

'मेरे कुछ प्रश्नों के उत्तर देने की कृपा करें।'

किंतु साधु अंतर्धान हो गए। मैं जाग गया। मैं एक ही साथ शांति तथा व्याकुलता का अनुभव कर रहा था। मैं इस स्वप्न की उपेक्षा नहीं कर सकता था, यह इतना वास्तविक और स्पष्ट था। मैं दौड़ता हुआ अपनी मां के पास पहुंचा, वे पौ फटने से पूर्व ही जग चुकी थीं। वे पूजा की वेदी पर दीप जलाकर देवमूर्तियों की स्तुति कर रही थी।

'मैं सोचता हूं कि आज स्कूल न जाऊं,' मैंने उनकी प्रार्थना बीच में ही बाधित करते हुए उनसे कहा।

'अरे, तुम आज बहुत जल्दी जाग गए। तुम बिना स्नान किए यहां क्यों आ गए, बेटा?'

मैं उनकी बात अनसुनी कर, वहीं बगल में बैठ गया।

'मैंने एक सपना देखा है और मैं समझता हूं कि आज मुझे घर पर ही रहना चाहिए।'

'क्यों? डरो नहीं।'

'मैं डर नहीं रहा। मैंने सपने में एक साधु बाबा को देखा। उन्होंने कहा कि वे आज मेरे पास आएंगे।'

'तुम्हें स्कूल हरगिज नहीं छोड़ना चाहिए, अमित। और फिर सपने कोई सच थोड़े ही होते हैं?'

'आप क्या कह रही हैं? जब मैंने स्वप्न में भगवान शिव को देखा, तो आपने कहा कि वह एक वास्तविक दर्शन था। आपने यह भी कहा था कि सपने सच होते हैं। मैं पूजा की वेदी पर बैठा हूं, मां, मैं आपसे झूठ नहीं बोलूंगा। यह एक सच्चा सपना था। मुझे आज घर पर ही रुके रहना चाहिए, क्योंकि उन्होंने कहा कि वे आज मेरे पास आएंगे। मैं आपको वचन देता हूं कि मैं दिन में अपनी पढ़ाई भी करूंगा।'

'मगर मैं तुम्हारे पापा से क्या कहूंगी?'

'उनसे कुछ भी कह देना, मां। वे आपकी बात का विश्वास कर लेंगे।'

'देखो, तुम मुझसे उसी दिन पूछ रहे थे न कि आप झूठ क्यों बोलती हैं। ऐसे ही वजहों से मुझे कभी-कभी झूठ बोलना पड़ता है!'

हम दोनों एक दूसरे को मनाने की कोशिश करते रहे। अंत में, उन्होंने मुझे घर पर ही रहने की अनुमति दे दी और किसी तरह मेरे पापा को मना लिया।

कुछ समय बाद, मैं घर में अकेला रह गया। लगभग 10 बजे किसी ने दरवाजे पर दस्तक दी। मैंने जल्दी से उसे खोला। मेरे सम्मुख काले वस्त्रों में एक साधु खड़े थे, जिनकी जटाएं उनके सिर के पीछे की ओर जूड़े में बंधी थीं। उनकी दाढ़ी उनकी छाती तक पहुंच रही थी। मैंने उन्हें भिक्षा के लिए पूछा, किंतु बाबा ने कहा कि मैं केवल तुमसे मिलने आया हूं। उन्होंने उस स्वप्न की कोई चर्चा नहीं की। उन्होंने अपने झोले में हाथ डालकर कोई चीज बाहर निकाली और उसे मुझे देते हुए बताया कि यह स्यार सिंघी है।

स्यार सिंघी एक छोटी सी गांठ होती है, जो स्यार के शरीर पर उग आती है। जब यह बढ़कर लगभग सुपारी जितनी बड़ी हो जाती है, तो यह खुद ब खुद उसके बदन से छूटकर गिर जाती है। यदि कोई अच्छा तांत्रिक सही रीति से इसका प्रयोग करे, तो इसके कई उपयोग होते हैं। भौतिक उद्देश्यों अथवा किसी के सम्मोहन अथवा वशीकरण के लिए भी इसका प्रयोग किया जाता है। किसी को हानि अथवा चोट पहुंचाने के लिए, काले जादू में भी इसका प्रयोग किया जा सकता है। यदि आप एक असली सिंघी को सिंदूर में रख दें, तो इसके ऊपर के बाल बढ़ते ही रहते हैं और आपको प्रत्येक कुछ सप्ताह बाद उस पर और सिंदूर डालना पड़ेगा, ताकि उसका प्रभाव बना रहे। हालांकि यह एक निर्जीव गांठ होती है, किंतु यह सिंदूर को खुद में समाहित करती जाती है।

'यह अमोघ है। मैं इसे तुम्हें देने आया हूं,' यह कहते हुए उन्होंने संक्षेप में मुझे यह बताया कि इसे कैसे प्रयोग करना है।

मैंने पूछा, 'मुझे सिद्धि क्यों नहीं मिल रही?'

'क्योंकि तुम अंतिम लक्ष्य पर केंद्रित न होकर छोटी-छोटी उपलब्धियों की ओर भाग रहे हो। यदि तुम सूर्य को प्राप्त कर लो, तो प्रकाश तो स्वयं ही प्राप्त हो जाएगा।'

उन्होंने सिंघी के प्रयोग के लिए अपने निर्देश दोहराए और चलने लगे। मैं उनसे कितने सारे प्रश्न करना चाहता था, किंतु उनके अत्यंत प्रभावशाली तथा करिश्माई व्यक्तित्व के आगे, मेरे मुख से एक भी शब्द नहीं निकला। मैं केवल श्रद्धा से साष्टांग ही कर सका। उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिए और प्रस्थान कर गए।

एक महिला प्रतिदिन हमारे घर का कामकाज करने आया करती थीं। वह घर के एक सदस्य की तरह ही थीं और हम उन्हें मौसी कहकर पुकारते थे। मेरी मां उनसे बड़े प्रेम से व्यवहार करती। मेरी मां में एक बड़ा विलक्षण गुण यह था कि वे हर किसी को हमेशा केवल देना ही देना जानती थीं। मैंने उसमें कभी भी घृणा, ईर्ष्या अथवा क्रोध की भावना नहीं देखी। हमने उन्हें कभी भी चीखते-चिल्लाते नहीं देखा।

मौसी के दो बेटे थे। बड़े बेटे की उम्र सात वर्ष थी और वह जन्म से ही कुष्ठ रोग से पीड़ित था। मैंने उस पर सिंघी का प्रयोग करने का निश्चय किया। अगले सप्ताह मैंने सिंघी को एक मंत्र, सिंदूर तथा काली सरसों के बीजों से ठीक उसी तरह अभिमंत्रित किया, जिस तरह बाबा ने मुझे बताया था। एक रविवार मैंने मौसी को उसे देते हुए कहा कि वे अपने बेटे के

तकिए की सिलाई थोड़ी खोलकर सिंघी को उस तकिए में डाल दें और उसे फिर से सिल दें।

'इसे चालीस दिनों तक उसी में रहने दीजिए और किसी भी दूसरे व्यक्ति को इसका पता न लगे, अपने पति को भी नहीं,' मैंने उनसे कहा।

उनके बेटे की स्थिति में एक ही सप्ताह के अंदर चमत्कारी सुधार आने लगा और तीसरा सप्ताह होते-होते वह पूरी तरह स्वस्थ हो गया। बाबा ने मुझसे यह कहा था कि तुम इसका केवल एक ही बार प्रयोग कर सकते हो और उसके बाद इसे किसी नदी में प्रवाहित कर देना। चालीस दिनों बाद मैंने मौसी से सिंघी वापस करने को कहा। उन्होंने घर जाकर उस तकिए को खोला, पर उसमें वह सिंघी मौजूद नहीं थी।

तकिए में सिंघी न मिलने के चार कारण हो सकते थे। पहला, मौसी ने इसे निकाल लिया, किंतु मुझे इसकी हामी नहीं आई। इस पर विश्वास करना कठिन था, क्योंकि वे एक तांत्रिक साधन की शर्तों का उल्लंघन कर अपने अपने बेटे को किसी खतरे में नहीं डालना चाहती होंगी। दूसरा, किसी दूसरे ने इसे वहां से निकाल लिया। तीसरा, वह कहीं बाहर गिर गई। इन दो बातों की संभावनाएं नहीं थीं, क्योंकि इस संबंध में किसी भी दूसरे व्यक्ति को नहीं मालूम था और वह तकिए के अंदर सावधानी से सिली हुई थी। चौथी, वह स्वयं गायब हो गई। मैं कभी भी यह नहीं जान पाया कि वह कहां चली गई, किंतु उसका कोई महत्व नहीं है। यह तथ्य उपेक्षा करने योग्य नहीं था कि वह बालक कुछ ही दिनों में स्वस्थ हो गया, जबकि उसके रोग के बाकी सभी उपचार वर्षों से विफल रहे थे। उसकी बीमारी फिर कभी नहीं लौटी।

बाबा से मेरी इस भेंट ने समाधान प्रस्तुत करने के बजाए कई नए प्रश्न पैदा कर दिए। वे साधु कौन थे? वे मेरे स्वप्न में कैसे आ गए? उन्होंने वह सिंघी देने को मुझे ही क्यों चुना? उन्हें इन गूढ़ विद्याओं का ज्ञान कैसे हुआ? किंतु इन प्रश्नों के बावजूद मैं इस अनुभव से चमत्कृत था। वे एक ऐसे समय में आए, जब मुझमें आशा का संचार करने तथा आगे का पथप्रदर्शन करने हेतु एक दैवी हस्तक्षेप की आवश्यकता थी। इस घटना ने ईश्वर में मेरी आस्था को पुनः जागृत कर दिया।

मैंने अपनी साधना में तांत्रिक अनुष्ठानों का परिश्रम से प्रयोग करना आरंभ किया। जब भी मैं यह सुनता कि एक संत अथवा तांत्रिक शहर में आए हैं, मैं उनके दर्शन करना न भूलता। पहले तो वे मुझे गंभीरता से न लेते, क्योंकि आखिर तो मैं एक 'बच्चा' ही था। किंतु जब मैं अपनी साधना तथा ज्योतिष, वेदों तथा अन्य शास्त्रीय साहित्य की उनसे चर्चा करता, तो उनके भाव बदल जाते। तब वे मुझसे गौर से बातें करते, अपने अनुभव साझा करते तथा किसी चीज को बेहतर ढंग से करने के लिए मुझे अपने परामर्श दिया करते। किंतु साधना के वास्तविक अभ्यासों एवं चुनौतियों के विषय में उनमें से अधिकतर को कोई विशेष अनुभव न होता। उनकी जानकारी शुद्ध रूप से किताबी ही होती। उनमें वास्तविक साधक बहुत कम ही होते - सौ में केवल एक। किंतु उनसे मुझे अपनी लौ जलाए रखने की शक्ति अवश्य मिली।

मैं अवसर मिलते ही चुपचाप एकांत स्थलों पर ध्यान करने निकल जाता, मैंने मंत्र जाप सहित अग्नि को आहुति समर्पित करते हुए कई यज्ञ किए तथा यक्षिणियों, योगिनियों,

अप्सराओं एवं देवियों की कई-कई साधनाएं भी कीं, जो सब तांत्रिक नारीशक्ति की विभिन्न रूप हैं। फिर भी कोई विशेष परिणाम नहीं मिले। इनसे कोई भी भगवान या दैवी सत्ता प्रकट नहीं हुई। फिर, मैंने विभिन्न साधनाओं के अभ्यास, तत्वों तथा मंत्रों को लेकर अपनी समझ से अपने लिए सर्वाधिक सटीक साधना स्वयं सृजित की।

कार्तिक माह (मध्य अक्तूबर से लेकर मध्य नवम्बर तक) में मैं एक एकांत स्थल पर जाया करता था, जहां मंदार के पुष्प खिला करते थे। मैं उसके 108 फूल तोड़ता, घर आकर उनकी माला बनाता और उस माला पर मंत्र का जप करता। फिर मैं उसे फ्रिज में रख देता। अगली सुबह मैं एक यज्ञ करता और तब शिवमंदिर जाकर वह माला शिवलिंग पर चढ़ा देता। मान्यता के अनुसार इस तांत्रिक साधना से साधक को भगवान शिव के दर्शन का पुण्य लाभ अवश्य मिलता। मैंने बारह वर्ष की आयु से, पूरे तीन वर्ष तक साधना की किंतु कोई मूर्त परिणाम प्रकट नहीं हुए।

कुंठित कर देने वाला प्रश्न यही था कि मुझे अपनी भूल का अनुभव नहीं हो पा रहा था और किसी मार्गदर्शक का भी नितांत अभाव था। मेरे परिवार के लोग तो इसमें मेरी सहायता कर नहीं सकते थे। दरअसल वे तो जानते तक नहीं थे कि मैं किस संधान में मग्न था। उन्हें रहस्यमय दुनिया के समानांतर अस्तित्व अथवा गुह्यविद्या में मेरी गहरी रुचि के विषय में कोई जानकारी न थी। वे प्रायः यह समझते कि मैं पुस्तकालय में हूं, जबकि मैं अपनी साधना के बारे में किसी संत अथवा तांत्रिक से चर्चा कर रहा होता अथवा किसी साधु के साथ शास्त्रार्थ की तैयारी में व्यस्त होता। मेरी मां को मेरे झुकाव की जानकारी तो थी, पर उन्हें ये चीजें विस्तार से नहीं पता थीं। हालांकि मेरी खोज में उनका निःस्वार्थ सहयोग मेरे लिए एक बड़ा सहारा था।

मेरी कुंठा शनैः शनैः निराशा में परिवर्तित होती चली गयी। यदि भगवान का अस्तित्व है, तो वे मेरे सामने प्रकट क्यों नहीं होते? यदि शास्त्र सही हैं और तंत्र में कुछ भी सारतत्व है, तो फिर मुझे इच्छित परिणाम क्यों नहीं मिल रहे हैं? मैं कहां विफल हो रहा हूं? हालंकि अभी भी मेरे लिए शक्तिशाली स्वप्नों तथा आभासों का आना जारी था, जो मेरे मार्ग पर मेरा निर्देशन भी करते थे, पर मैं उनसे संतुष्ट न था। मैं एक भौतिक प्रमाण का इच्छुक था, जो सत्यता की मेरी कसौटी पर खरा उतर सके।

धीरे-धीरे यह समझ में आने लगा कि मैं आत्मसाक्षात्कार की एक अकेली और कठिन यात्रा पर निकला हूं और इसमें सफल होने के लिए बहुत मजबूती, अनुशासन तथा समय की आवश्यकता होगी। भले ही मैंने कोई भी आध्यात्मिक साधना कैसे व कितने भी समय तक क्यों न की हो; मेरे लिए सफलता का कोई आश्वासन व निश्चितता न थे। क्षणिक सुखों से ऊपर उठकर स्थायी आनंद की स्थिति और सांसारिक भावनाओं से परे हटकर शाश्वत शांति की स्थिति में रहना मेरे लिए एक बहुत व्यक्तिगत विषय होने जा रहा था। इस यात्रा में मैं स्वयं का सर्वोत्तम मित्र और सर्वाधिक बुरा शत्रु होता। मुझे अपना मार्ग स्वयं बनाना था, क्योंकि समय के घासफूसों ने प्राचीन संतों द्वारा बनाए दिव्य मार्ग को काफी समय पहले ढंक दिया था।

अध्याय तीन
स्टॉक तथा भगवान

मैं साधना में जितना अधिक समय व्यतीत करता गया, ज्योतिष का उतना ही आलोचक बनता गया। ज्योतिष केवल बारह राशियों और नौ ग्रहों पर केंद्रित था, जबकि मेरी साधना ने मुझे एक विराट और अनंत आंतरिक विश्व के अस्तित्व के प्रति चैतन्य कर दिया था। मैं यह देखने लगा था कि किस तरह मैं और मेरे आसपास का प्रत्येक व्यक्ति पूरी तरह ब्रह्मांड की एक प्रतिकृति मात्र है। यदि ब्रह्मांड में असंख्य तारे हैं, तो हमारे शरीर में भी असंख्य कोष हैं। यदि वहां सूर्य और चंद्रमा हैं, तो यहां भी सांस लेने की सौर तथा चंद्र प्रणालियां हैं। यदि पृथ्वी पर 70 प्रतिशत जल है, तो हमारे शरीर में भी 70 प्रतिशत जल है।

रहस्यमय तारों की तरह चमकते हुए जब असंख्य ग्रह खुली आंखों से भी दिखाई आते हैं, तो मैं यह कैसे विश्वास करूं कि हमारे जीवन को केवल नौ ग्रह ही प्रभावित कर रहे हैं? और फिर इन नौ ग्रहों के साथ, जिन पर ज्योतिष बल देता है, यह बड़ी विचित्र सी बात है कि इसमें पृथ्वी को शामिल नहीं किया गया है। दो ग्रहों, राहु और केतु, का तो सौरप्रणाली में अस्तित्व तक नहीं है। दूसरी ओर चंद्रमा को ग्रह का दर्जा दिया गया है, जबकि यह केवल एक उपग्रह है। मैं इस विचार से सहमत नहीं हो सका कि हमसे करोड़ों कि.मी. की दूरी पर स्थित मंगल तो हम पर प्रभाव रखता है, किंतु जिस ग्रह पर हमारा जीवन अवस्थित है, उसका ज्योतिषीय गणना में कोई महत्व नहीं है।

मुझे लगा कि अपने कर्मों और उनके परिणामों पर केंद्रित रहने की अपेक्षा नवग्रहों व उनके कोष में रुचि रखना एक मूर्खतापूर्ण विचार था। मैं मार्गदर्शन के लिए ब्रह्माण्ड में घूमते निर्जीव गोलों पर नजरें टिकाए बैठा था। इन सबके बावजूद मैंने ज्योतिषीय गणनाएं करने का काम जारी रखा, क्योंकि उनकी आय से मेरी किताबों तथा कुछ दूसरी चीजों के खर्चे निकल आते थे।

यद्यपि मैंने लोगों को पत्थर तथा ताबीज पहनने के लिए कहना बंद कर दिया, क्योंकि अब इन उपायों में मेरा विश्वास नहीं रह गया था। मैंने लोगों को यह समझाने की चेष्टा की कि

उन्हें अपने जीवन का नियंत्रण अपने हाथों में लेना चाहिए और समझाया कि ज्योतिषीय गणनाओं से निर्देशित होना तो ठीक है, मगर उन भविष्यवाणियों पर ही निर्भर हो जाना बुद्धिमानी नहीं है। फिर भी, वे हमेशा यही सुनना चाहते थे कि उनकी परेशानियों की वजह ग्रह हैं, जीवन में उनके द्वारा चुने गए विकल्प नहीं। मेरा दृष्टिकोन बिलकुल सरल था; 'आप अब तक जो करते रहे हैं, यदि उसे ही करते रहे, तो आपको वही मिलता रहेगा, जो अब तक मिलता रहा है।'

यह सोचना एक मानवीय प्रवृत्ति है कि हम निमित्तमात्र हैं और कोई दूसरा है, संभवतः ईश्वर, जो हमें नचा रहा है। दरअसल, यह विश्वास करना सुविधाजनक है कि हम दैवी शक्तियों द्वारा दंडित अथवा पुरस्कृत किए जा रहे हैं। सत्य तो यह है कि हमारा भविष्य उन विकल्पों से तय होता है, जिनका हम आज चयन करते हैं और हमारा आज उन विकल्पों पर निर्भर है, जिनका चयन हमने कल किया था।

मुझसे ज्योतिषीय परामर्श लेनेवाले अधिकतर लोग यह समझते थे कि ज्योतिषीय निदान उन्हें उनके संघर्षों से मुक्ति दिलाएंगे। वे यह आस्था रखते थे कि चाहे वे निःकृष्ट अथवा हानिकारक विकल्पों का ही चयन क्यों न करते रहें, ज्योतिषीय उपाय किसी न किसी तरह उनकी नकारात्मक परिस्थितियों को सकारात्मक परिस्थितियों में बदल देंगे। लोग यह भरोसा करना चाहते थे कि ये उपाय उनकी समस्याओं का समाधान कर देंगे, उनकी मनःस्थिति में किसी परिवर्तन की आवश्यकता नहीं थी। मैंने अनुभव किया कि लोग सच सुनना ही नही चाहते थे। मैंने ठीक जर्मन दार्शनिक नीत्से की तरह महसूस किया, जिन्होंने कहा था कि 'वे मुझे समझ नहीं पाते; मैं इन कानों को सुनानेवाला मुंह नहीं हूं।'

मैं नहीं चाहता था कि निर्जीव कुंडलियां तथा दूरस्थ ग्रह मेरे जीवन का मार्ग निर्धारित करें और मेरी योजनाओं एवं कर्म में हस्तक्षेप करें। मैं अपना भविष्य स्वयं तय करना चाहता था। मैं एक दिन अपने एक हाथ में अपनी जन्मकुंडली तथा दूसरे में दियासलाई लेकर छत पर गया। मेरे पीछे मेरे भैया भी छत पर आए और यह भांपकर कि मैं क्या करने जा रहा था, उन्होंने तेजी से लौटकर मां को बताया कि अमित अपनी जन्मकुंडली जलाने जा रहा है। इस बीच मैंने उसमें आग लगा दी थी। मां दौड़ती हुई आईं और उन्होंने मेरे हाथों से वह अधजली कुंडली लेकर उसे पूरी तरह जलने से बचा लिया।

'तुम्हें जन्मकुंडली नहीं जलानी चाहिए थी, अमित। इसकी रक्षा करनी चाहिए। इसे श्रद्धा से संभालना चाहिए।'

'मां, जन्मकुंडली में कुछ भी पवित्र नहीं है। मैं कागज के एक टुकड़े के प्रति श्रद्धा का भाव नहीं रख सकता।'

'तुम्हारे जन्म के बाद एक बहुत विद्वान ब्राह्मण ने इसे तैयार किया था।'

'उसका कोई अर्थ नहीं है। क्या आप वास्तव में ऐसा सोचती हैं कि कुंडली में मेरा भाग्य पहले से लिखा हुआ है? राम और सीता की कुंडलियां भी मिलाई गई थीं। महान ऋषि वशिष्ठ ने स्वयं उनका मिलान किया था, किंतु क्या परिणाम निकला? उन्हें वनवास मिला और बाद में उन्होंने सीता को छोड़ दिया। क्यों?'

‘अमित, मेरे पास तुम्हारे प्रश्नों के उत्तर नहीं हैं। किंतु मैं इतना अवश्य जानती हूं कि यदि हमारे पास किसी प्रश्न का उत्तर नहीं हैं, तो इसका यह मतलब नहीं है कि वह प्रश्न गलत अथवा निरर्थक है। तुम जो भी विश्वास रखना चाहो, मैं उससे तुम्हें रोक नहीं रही, पर मैं तुम्हें यह कुंडली नहीं जलाने दे सकती।’

‘ओह, आप परेशान मत हो।’ मैंने अपने हाथ उनकी गरदन में लपेट बार-बार, जल्दी-जल्दी उनके गाल चूमे और कहा, ‘मैं जब भी चाहूं, अपनी कुंडली लिख सकता हूं।’

‘तुम बहुत नटखट और दृढ़ इच्छाशक्ति के हो,’ उन्होंने कहा। ‘कभी-कभी अपने बड़ों की बातें मान लेने से तुम्हें कोई हानि नहीं होगी। अब मुझे जाना चाहिए। मैं दूध उबाल रही थी। अब मैं एक नई कुंडली बनवाऊंगी और उसे तुम्हें नहीं दूंगी,’ उन्होंने नीचे जाते हुए कहा।

‘अपने पैसे मत बरबाद करना, मां।’ मैंने हंसते हुए कहा।

मगर मैं एक बार फिर भ्रमित हो गया। यदि मां की बातें सही हों, यदि इन सब बातों में सच्चाई हो, तब क्या होगा? यह तो ठीक था कि मेरी कुंडली में कही गई हर एक बात सच्ची नहीं निकली थी, किंतु जहां वह पूरी तरह सत्य निकली, जहां उसने मेरे जीवन की बहुत सी घटनाओं की त्रुटिहीन भविष्यवाणी की, उसके लिए क्या कहा जाए? मैंने कुछ देर तक गहराई से सोचते हुए सभी चीजों पर गौर किया और ज्योतिष के सभी पक्षों की समीक्षा की। अंततः, मैंने एक स्पष्ट और दृढ़ निर्णय लिया कि मेरे जीवन के विकल्पों के चुनाव में ज्योतिष की कोई भूमिका नहीं होगी।

मुझे ज्योतिष से आगे जाना था, क्योंकि यह यात्रा की अपेक्षा परिणामों पर केंद्रित रहता था। यह गणना के माध्यम से यह तो बता सकता था कि एक व्यक्ति एक संत होगा अथवा एक पापी, मगर यह इस विषय पर चुप्पी साध जाता था कि किसी व्यक्ति को तब कैसे और क्या करना चाहिए। यह जीवन यात्रा का एक बिंदु तो बता सकता था, पर उस परिणाम तक कैसे पहुंचा गया, इसकी व्याख्या नहीं कर सकता था। मेरी कुंडली यह तो कहती थी कि मैं आत्मसाक्षात्कार प्राप्त करूंगा, किन्तु वह यह नहीं बता सकती थी कि ऐसा किस तरह संभव हो सकेगा।

ज्योतिष से दूर हटते हुए मैंने अपनी पूरी शक्ति ध्यान पर केंद्रित की। प्रत्येक अवसर पर, यहां तक कि अपनी साईकल चलाते समय अथवा स्नान करते समय भी, मैं मंत्रों में अंतर्निहित ध्वनि शक्ति पर अपनी एकाग्रता केंद्रित रखने लगा। किंतु मुझे भगवान के दर्शन नहीं हुए, मैं भावातीत अवस्था में नहीं पहुंच पाया और न ही कोई ऐसी विशिष्ट शक्ति पा सका, जिनकी चर्चा पुस्तकों में रहा करती थी। कहीं न कहीं मैं समझ पा रहा था कि मैं किसी विशेष बात पर ध्यान नहीं दे रहा था। धार्मिक पुस्तकों के अनुसार केवल एक गुरु ही अपने शिष्य का मार्गदर्शन कर सकता और साधना के गूढ़ पहलुओं की व्याख्या कर सकता है। आत्मसाक्षात्कार की यात्रा चाहे मेरी स्वयं की ज़िम्मेदारी थी, परन्तु फिर भी साधना के रहस्यमय पक्षों के उद्घाटन के लिए मुझे एक गुरु की आवश्यकता थी। अपने लिए स्वयं सफलता अर्जित करना इतना सरल भी न था।

परंतु गुरू का संधान कहां किया जाए? मैं अपनी मां के सबसे बड़े भाई आर.के.

मौदगिल से बेहतर और किसी व्यक्ति के विषय में नहीं सोच सकता था। वे मेरी मां के लिए एक आदर्श व्यक्ति तथा देवता के समान थे। हालंकि वे भारतीय रेल में सुपरिन्टेन्डेन्ट के रूप में कार्यरत थे, परंतु यह उनकी विशेषता न थी। वास्तव में वे एक परम शिवभक्त थे। तेरह वर्ष की आयु से लेकर अपने अंतिम श्वास तक वे प्रतिदिन दो बार श्मशान का भ्रमण करते और वहां घी का एक दिया जला कर आते। किसी को भी यह पता न था कि वे वहां कौन सी साधना करते थे, क्योंकि उन्होंने कभी किसी को इस रहस्य की जानकारी न दी। कुत्ते, चिड़ियां, गाएं और दूसरे पशु वहां नित्य उनके पीछे-पीछे चलते।

मेरे मामा ने हमेशा एक सरल तथा सच्चा जीवन जीया और उनके इस व्यवहार ने मुझे सबसे अधिक प्रभावित किया। उनकी बातों में कोई दिखावा अथवा अत्युक्ति नहीं प्रकट होती, उनके सरल शब्द बड़े स्नेह से मेरे हृदय पर अधिकार कर लेते। मैंने सोचा कि यदि वे मुझे दीक्षा दें, तो संभवतः मेरी मंत्रसाधना से मुझे कुछ परिणाम मिलें। किंतु जब भी मैं उनसे इसके लिए अनुरोध करता, तो वे शिष्टता से उसे टाल जाते। मैं इस बात से चकित न था। आखिर, हम दोनों में कोई तुलना तो थी नहीं। अपनी पचास वर्षों की आयु तक उन्होंने अपनी साधना में उससे अधिक घंटे लगा दिए थे, जितने घंटे मेरी पंद्रह वर्षों की कुल आयु में थे।

वे एक दिन अपने आवास में थे। वे श्मशान के प्रातःभ्रमण से अभी-अभी लौटे थे। 'मेरे साथ आओ,' उन्होंने मुझसे कहा। मैं उनके पीछे-पीछे चला। वे मुझे छत पर ले गए। उन्होंने अपने हाथों में एक छोटी गोल डिबिया पकड़ रखी थी। जब उन्होंने वह खोली, तो उसमें थोड़े भभूत के सिवा और कुछ न था। उन्होंने उसमें एक उंगली डुबोई और फिर उसे मेरी ललाट पर रगड़ दिया। 'यह मेरा चालीस वर्षों का तप है,' उन्होंने कहा।

मैं विस्मित भाव से उन्हें ताकता रह गया।

'मैं चालीस वर्षों से इस भभूत को नित्यप्रति एक ही मंत्र से अभिमंत्रित करता रहा हूं, और तुम ऐसे पहले तथा अंतिम व्यक्ति हो, जिसे यह प्राप्त हुआ है।'

मैंने परम श्रद्धाभावना से उन्हें साष्टांग प्रणाम किया, क्योंकि उन्होंने मुझे दीक्षित कर दिया था।

'मैं किस मंत्र का जप करूं?'

'तुम पूरे संसार में घूमोगे, और मैं तुम्हें किसी मंत्र से नहीं बांधना चाहता, जिसका प्रतिदिन जप करना अनिवार्य हो। जाओ, स्वतंत्र रहो। अपना स्वप्न जीओ। तीनों लोकों में ऐसी कोई शक्ति नहीं, जो तुम्हें रोक सके।'

उन्होंने मुझे तीन निर्देश दिए, जिन्हें आप चाहें, तो जीवन के सिद्धांत कह सकते हैं। किसी शिष्य को गुरु से मिला कोई भी निर्देश उन दोनों के बीच ही सीमित रहना चाहिए। केवल तभी, जब वह शिष्य स्वयं किसी का गुरु बन जाए है और वे निर्देश हस्तांतरित करना चाहे, तो वे शब्द एक बार फिर बोले जा सकते हैं।

उस दिन उन्होंने अपनी कुंडली मुझे देते हुए कहा, 'मैं केवल एक प्रश्न पूछना चाहता हूं।'

मैं जानता था कि उनका वह एक प्रश्न मेरे लिए सरल नहीं होगा।

'मेरी मृत्यु की तिथि क्या है?'

मैं थोड़ा विचलित हो उठा। 'मामाजी, मैं इसकी गणना कर सकता हूं, पर एक ज्योतिषी के रूप में मेरी आचार संहिता मुझे इस तरह की जानकारी देने से मना करती है।'

'मैं यह तिथि पहले से ही जानता हूं। केवल इसकी पुष्टि करना चाहता हूं।'

मैं उन्हें मना नहीं कर सकता था। उनके शब्द मेरे लिए आदेश की तरह थे। हम इस पर सहमत हुए कि वे संभावित ज्ञात तिथि एक कागज पर लिखेंगे और मैं दूसरे कागज पर उनकी आसन्न मृत्यु की तिथि लिखूंगा। फिर वे मुझे अपना कागज देंगे और मैं उन्हें अपना दूंगा। मैं यह जानने को उत्सुक था कि क्या वे सचमुच अपनी मृत्यु की तिथि जानते थे। मेरे लिए यह गणना का विषय था, भले ही वह कितना भी गहरा तथा सघन क्यों न हो। परंतु उनके लिए तो यह अंतर्दृष्टि का विषय था। क्या अंतर्दृष्टि गणना की शुद्धता कर सकती है? मैंने अपना कागज निकाला और उनकी जन्मकुंडली के आधार पर गणना आरंभ की। एक घंटे के बाद हमने अपने-अपने कागज एक दूसरे को दिए।

जब मैंने उनकी लिखी तिथि देखी, तो मैं तत्क्षण यह समझ गया कि उनके साधारण से व्यक्तित्व के पीछे एक असाधारण चेतना छिपी थी। अपनी अंतर्दृष्टि की विशिष्टताओं पर उन्हें पूर्ण अधिकार प्राप्त था। यह तो स्पष्ट है कि हम दोनों में से कोई भी उस तिथि को नहीं भूला। कई वर्षों बाद, जब इस जगत से उनके विदा लेने की घड़ी निकट आ गई, तो एक दिन मैंने उन्हें ऑस्ट्रेलिया से फोन किया। वे एक मामूली से ऑपरेशन के लिए अस्पताल में भरती थे। वे पूरी तरह चुस्त और स्वस्थ थे और यहां तक कि अस्पताल जाने से पूर्व उन्होंने बास्केटबॉल भी खेला था। फोन पर हम दोनों भावुक हो उठे।

'क्या तुम यह समझते हो कि मैं ऑपरेशन थिएटर से वापस आ पाऊंगा?' उन्होंने पूछा।

'हां, क्यों नहीं? केवल इतना ही नहीं, आप फिर से बास्केटबॉल भी खेलेंगे।'

मुझे वह असत्य बोल कर प्रसन्नता हुई और मैं उसमें विश्वास रखने के लिए प्रसन्न था। उस क्षण में, मैं यह चाहता था कि काश, मेरी भविष्यवाणी तथा उनकी अंतर्दृष्टि दोनों गलत सिद्ध हो जातीं। मामाजी के डॉक्टर ने उनके ऑपरेशन को सफल घोषित कर उनके स्वास्थ्य लाभ के लिए उन्हें आइसीयू में भेज दिया। वे उस आइसीयू से बाहर न निकल सके।

जब मैं जब चौदह वर्ष का था, तो एक विद्वान व्यक्ति, प्रो. ए.पी. शर्मा, का मेरे जीवन में पदार्पण हुआ। वे अंगरेजी साहित्य में पीएचडी थे और मेरे पिता को उनके कॉलेज के दिनों से जानते थे। सेवानिवृत्त होकर वे हाल ही हमारे शहर में रहने आए थे। वे एक उत्कृष्ट हस्तरेखा विशेषज्ञ थे। अपनी भेंट के पहले ही दिन उन्होंने मेरी हस्तरेखा देखी और मैंने उनकी कुंडली का अध्ययन किया। हमने एक दूसरे के विषय में अपनी-अपनी भविष्यवाणियां कीं और खिलखिलाने लगे। जब एक ही विद्या के दो विशेषज्ञ मिलते हैं, तो वे एक दूसरे को प्रभावित करने के लिए ज्यादा कुछ नहीं कर सकते। पर मैं आरंभ से ही प्रो. शर्मा को चाहने लगा था। वे सुसंस्कृत तथा मृदुभाषी होने के अतिरिक्त मानवीय ऊष्मा से भरपूर थे।

वे अपने पुराने पैतृक घर में अकेले रहते। उनके घर में उनकी पुस्तकें रखने की अलमारियां, एक बिस्तर, एक सोफा और अध्ययन के लिए एक मेज के अतिरिक्त सैंकडों पुस्तकें थीं, जिन्होंने लगभग पूरे घर पर अपना अधिकार जमा रखा था। इनके अलावा उनके पास ढेरों पांडुलिपियां थीं, जिनमें उनकी लिखी साहित्यिक आलोचनाएं तथा जीवन पर उनके चिंतन समाहित थे। उन्हें पुस्तकों की अपनी अलमारियों से गहरा लगाव था और उनमें ताला लगाए बगैर वे कभी घर से बाहर नहीं निकलते।

मैं सप्ताह में कई बार उनके पास जाता और उनके साथ बहुत आनंद का अनुभव करता। वे मेरे अंग्रेजी भाषा के कौशल को निखारने मे सहायता करते। अंग्रेजी भाषा से उन्हें जुनून की हद तक लगाव था और वे बिना किताबें खोले ऑस्टिन, चौसर, शेक्सपियर, कीट्स, फ्रॉस्ट, व्हिटमैन, डिकेंस, हेमिंग्वे, वर्ड्सवर्थ, वाइल्ड और दूसरे कवियों व लेखकों के उद्धरण दिया करते।

वे प्रायः पुस्तकों के अवतरणों को रंगीन कर देते और हाशिए पर अपने विचार लिखा करते। पुस्तकों में लिखना एक ऐसी चीज थी, मैं जिसे कभी अच्छा नहीं मानता। मेरा सरल मत था कि पुस्तकें पढ़ने के लिए और खाली पृष्ठ लिखने के लिए होते हैं। मेरे लिए पुस्तकें एक कलाकृति के समान थीं और पुस्तकों पर लिखना पिकासो की एक कलाकृति पर कुछ लिख कर उन्हें गंदा करने जैसा था। आप जिससे प्रेम करते हैं, उसे कुरुप नहीं बनाते।

जैसा कि मैंने बताया, अंग्रेजी भाषा तथा साहित्य के लिए उनका प्रेम मेरी कल्पना से भी अनंत गुना अधिक था। मेरे लिए भाषा काम करने का एक साधन और मेरे विचारों की अभिव्यक्ति का माध्यम थी। पर उनके लिए यह एक ऐसी कला थी, जिससे वे एक नई दुनिया की रचना किया करते थे। 'जब तुम लिखते हो, तो मैं यह चाहता हूं कि तुम्हारे लेखन में इतनी कसावट हो कि यदि कोई तुम्हारे किसी एक वाक्य से एक अल्प विराम भी हटाना चाहे, तो वह पूरा पैराग्राफ फिर से लिखने की आवश्यकता आ पड़े। जब तुम बोलते हो, तो मैं चाहता हूं कि तुम्हें संघर्ष करना पड़े, इसलिए नहीं कि तुम वैसे शब्द नहीं सोच सकते, जिनसे तुम खुद को अभिव्यक्त कर सको, बल्कि इसलिए कि तुम्हारे मन में इतने सारे शब्द आ रहे हों कि तुम्हें उनमें सबसे सटीक शब्दों का चयन करना पड़े,' उन्होंने मुझसे कई बार कहा।

जाड़े की नरम धूप में बैठकर महान साहित्यिक कृतियों का अध्ययन करना हम दोनों का एक पसंदीदा शौक था। मैं पढ़ता और वे नारंगियां छीलते हुए उनके छिलके सावधानी से एक कटोरी में रखते और मुझे उनके रसीले हिस्से खाने के लिए देते जाते। धूप में बैठने के उन घंटों के दौरान ही वे प्रायः मेरी हस्तरेखाएं देखते ओर उल्लेखनीय ढंग से सही भविष्यवाणी किया करते। हम दूसरी चीजों के बारे में भी काफी बातें करते। हमारे वार्तालाप में न नियमों का कोई बंधन था और न ही आयु की बाधा।

'क्या तुम्हारे जीवन में कोई लड़की नहीं है?' उन्होने एक बार मुझसे पूछा।

'नहीं, मेरी किसी लड़की से कोई मित्रता नहीं है।'

'मुझे तुम पर विश्वास नहीं हो रहा!'

'मैं आपसे सच कह रहा हूं, अंकल!'

'ऐसा कैसे हो सकता है? तुम युवा हो, स्वयं को खूबसूरती से अभिव्यक्त कर सकते हो। पढ़ाई में अच्छे अंक लाते हो और तुम्हारे ज्योतिष को लेकर पूरा स्कूल तुम्हें जानता है। कुछ लड़कियां जरूर तुम्हारी ओर आकर्षित हुई होंगी अथवा कुछ की ओर तुम आकृष्ट हुए होगे।'

'मगर यह सच है। मेरी कोई भी ऐसी मित्र नहीं।' मुझे उनके साथ यह बात करते हुए लज्जा व संकोच का अनुभव हो रहा था। 'धार्मिक साहित्य के अनुसार 25 वर्षों की उम्र तक एक व्यक्ति को ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए।'

'यह पुराना विचार है। तुम्हें अपनी जिंदगी जीनी चहिए, इसका आनंद जरूर उठाना चाहिए। हमारे सभी ऋषियों की जीवनसंगिनियां थीं।'

'नहीं, मैं समझता हूं कि प्राचीन साहित्य में कुछ न कुछ सच्चाई तो अवश्य है। इसके अलावा मेरे पास किसी लड़की के लिए समय कहां है? यदि मैं अपना समय उसे देने लगूं, तो मैं अपनी पढ़ाई कब करूंगा, कब शतरंज खेलूंगा, ज्योतिष का काम करूंगा और हारमोनियम कब बजाऊंगा?'

'ओह, तुम बहुत तनावग्रस्त रहते हो, अमित। तुम इतने कठोर क्यों हो? थोड़ा सहज भाव से जीना सीखो।'

'लड़की के साथ रहा तो आपके साथ भी समय बिताने का अवसर नहीं मिलेगा।'

'तुम्हारे पास केवल मस्तिष्क है, हृदय नहीं। खैर, कोई बात नहीं, एक दिन ऐसा भी आएगा जब तुम किसी लड़की के मोह में इस तरह बंध जाओगे कि उसके बिना जीवन की कल्पना भी नहीं कर सकोगे।'

'ऐसा कभी नहीं होगा। मैं अपने विषय में जानता हूं। मैं कभी विवाह नहीं करूंगा।'

'परंतु तुम्हारी हस्तरेखाएं इसे साफ-साफ बताती हैं। तुम्हारी विवाह की रेखा गुलाबी, अटूट और मजबूत है। तुम अट्ठाइस वर्ष के होने के पूर्व विवाह करोगे।'

'मैं ऐसा नहीं सोचता।'

'आखिर तुम चाहते क्या हो? कभी-कभी तो तुम अपनी धार्मिक तथा संन्यासियों जैसी बातों से मुझे भयभीत कर देते हो।'

'तुम्हारे पास केवल मस्तिष्क है, हृदय नहीं,' यह उनका तकियाकलाम बन गया। जब वे मुझमें कोई भावनात्मक पक्ष नहीं ढूंढ़ पाते, तो हमारे बीच की बातचीत कुछ इसी तरह समाप्त हो जाया करती। सच तो यह है कि मेरी कोशिश के बावजूद मैं कोई लगाव या मोह नहीं महसूस कर पाता। मैं किसी भी चीज अथवा व्यक्ति के अभाव में परेशानी नहीं महसूस करता। मैं मित्रों और कुछ दूसरे लोगों से घुलने-मिलने की चेष्टा करता, किंतु मुझे ऐसे साहचर्य में कोई आनंद न आता। मैं जानबूझकर ऐसा नहीं करता था, मेरी प्रकृति ही ऐसी थी। इस विशेष अवसर पर जब उन्होंने मेरे विवाह के बारे में इतने निश्चय से कुछ कहा, तो मुझे आशंका हो आई कि क्या वे सचमुच मेरे जीवन के विषय में सही बोल रहे थे। यह तो ठीक था कि मेरी हस्तरेखाएं और मेरी कुंडली दोनों ही में मेरे विवाह का योग निहित था। क्या सचमुच ही मैं किसी पूर्वनिधारित नियति से बंधा था? मैं कुछ देर तक इस विषय में सोचता

रहा और फिर मैंने यह तय किया कि मैं अपनी हथेली की किसी एक रेखा को अपना भविष्य निर्धारित नहीं करने दूंगा। मैं अपने जीवन की पटकथा स्वयं लिखने पर दृढ़ था।

विचारमग्न व थोड़ी उद्वेलित मनःस्थिति में, मैं प्रो. शर्मा के घर से उन्हें शुभविदा कहे बगैर निकल आया। जब मैं घर आया, तो मैंने अपनी मां को पूजा की वेदी पर बैठ हमेशा की तरह कोई धार्मिक पुस्तक पढ़ते हुए पाया। उस शाम वे भागवत पुराण पढ़ रही थीं, जो भगवान कृष्ण की महिमा का वर्णन है। प्रतिदिन की भांति उन्हें चूमने के बजाए मैं चुपचाप उनकी बगल में बैठ गया।

'देखो, मां। आप जो भी चाहो, मैं वह बन सकता हूं-एक उच्च पदाधिकारी, व्यवसायी या प्रोफेसर। मेरी केवल एक ही विनती है कि मुझ पर विवाह के लिए दबाव मत डालना अथवा मुझसे उसकी अपेक्षा मत करना। मैं अपना जीवन एक आध्यात्मिक उद्देश्य में लगाना चाहता हूं। जब मैं किसी से यह कहता हूं कि मैं विवाह नहीं करूंगा, तो कोई भी मुझ पर विश्वास नहीं करता।'

वे मेरी बातों को एक किशोर के आदर्शवाद की संज्ञा देकर उन्हें बड़ी सरलता से टाल दे सकती थीं, पर इसके बजाए उन्होंने कहा, 'मैं तुम पर पूरा विश्वास रखती हूं। तुम जैसे चाहो, अपना जीवन उसी तरह बिताने को स्वतंत्र हो। मैं तुम्हें कभी किसी ऐसी चीज से नहीं बांधूंगी, अमित, जो तुम्हें पसंद नहीं हो। जब तुम थोड़े और बड़े हो जाओगे, तो हम इस पर दोबारा विचार करेंगे। कौन जाने, तब तुम्हारा विचार बदल जाए। पर तुम विवाह क्यों नहीं करना चाहते?'

'मैंने तीन हजार से अधिक कुंडलियां देखी हैं। सबके साथ एक जैसी ही समस्याएं हैं। वे सब क्या कर रहे हैं? वे जन्म लेते हैं। वे स्कूल और कॉलेज जाते हैं, एक नौकरी पाते हैं, विवाह करते हैं, बच्चे पैदा करते हैं, रोजाना के वही सारे काम करते हैं, बूढ़े होते हैं और मर जाते हैं। विवाहित लोगों की समस्याएं सुनने के बाद मैं उन्हें दो श्रेणियों में बांट सकता हूं। पहली श्रेणी में उस तरह के लोग हैं, जो अपने विवाह को सफल बनाने में असफल हैं। हालांकि वे काफी समय से विवाहित हैं, पर उनका प्रत्येक दिन एक बोझ की तरह बीतता है और अंततः उनके रास्ते अलग हो जाते हैं। दूसरी श्रेणी वैसे लोगों की है, जो अपने विवाह को सफल बनाने की भरपूर कोशिश में लगे हैं। उनके लिए भी ज्यादातर दिन थकानप्रद होते हैं, पर असहमति और झगड़ों, बहसों तथा कहा-सुनी के बीच उनकी झोली में कुछ अच्छे और मधुर पल भी आ जाते हैं।

कुल मिलाकर इसमें बहुत झंझट है। अधिकतर लोग विवाह इसलिए करते हैं कि उन्हें उसकी आवश्यकता महसूस होती है। किंतु मुझे ऐसा कुछ महसूस नहीं होता। इससे भी ज्यादा अहम यह है कि मेरे मार्ग में विवाह की कोई भूमिका नहीं है। इसकी बजाए, मैं वन में प्राचीन ऋषियों और ध्रुव की तरह तप करना चाहता हूं। मैं यह देखना चाहता हूं कि क्या सचमुच भगवान का अस्तित्व है?'

'सचमुच?' उसने आश्चर्य से कहा। 'यदि तुम्हें भगवान के अस्तित्व पर अब भी संदेह है, तो फिर तुम विभिन्न साधनाएं क्यों करते हो?'

‘मैं साधनाएं इसलिए करता हूं कि मैं उन्हें देखना चाहता हूं, मां। मैं अपने सृजनकर्ता से मिलना चाहता हूं। मैं यह आस्था रखता हूं कि उनका अस्तित्व है, पर जब तक मैं उन्हें देख नहीं लेता, मैं निश्चित कैसे हो सकता हूं? जब मैं देखता हूं कि उनके अस्तित्व के बावजूद संसार में इतनी पीड़ा और दरिद्रता है, तो मुझे उनके अस्तित्व पर ही संदेह होने लगता है। यदि भगवान सिर्फ एक है, तो फिर इतने अधिक धर्म क्यों हैं? उन्होंने इन्हें पनपने ही क्यों दिया?’

‘आस्था, बेटा। आस्था सारे प्रश्नों को समाप्त कर देती है।’

‘नहीं मां, नहीं। आस्था प्रश्नों को समाप्त नहीं बल्कि दबा देती है।’

‘मैं जानती हूं कि मैं तुम्हारे साथ यह बहस नहीं जीत सकती। मैं बस इतना ही जानती हूं कि भगवान सचमुच हैं। वे रक्षा करते हैं, पालन करते हैं और हमें संभालते हैं।’

मैं यह चर्चा जारी रखना चाहता था, पर मुख्य दरवाजे पर एक दस्तक सुनाई दी। ये प्रो. शर्मा थे, जो यह सोचकर मुझे देखने आ गए थे कि उन्होंने मुझे विचलित कर दिया है। मैं उन्हें फिर से देखकर बहुत प्रसन्न हुआ। वे शांति स्थापना के लिए उपहार के तौर पर मीठे आम भी लाए थे।

कुछ वजहों से, जिन्हें मैं कभी भी ठीक तरह नहीं समझ पाया, प्रो. शर्मा मुझे बहुत प्यार करते थे। वे अपने पर्स में मेरे दो फोटो रखा करते। जब भी मैं पासपोर्ट आकार के फोटो खिंचवाता, वे उनमें से एक तस्वीर लेने पर जोर देते। नवीनतम फोटो उनके पर्स में आ जाता, जबकि पुराने का वे बुकमार्क (पुस्तक में निशानी) के रूप में इस्तेमाल किया करते। वे मेरे लिए चाय बनाते और उसे बहुत सुंदर बोन चाइना प्याले में ढालते, जिसे वे किसी दूसरे को छूने भी न देते।

मेरे पास उन्हें देने को कुछ भी नहीं था, फिर भी उनकी प्रत्येक भंगिमा मेरे लिए प्रेममयी होती। ‘मैं अपने जीवन की संध्या में हूं, अमित।’ वे प्रायः मदिरा के सेवन के बाद कहा करते। मैं तुम्हें विकसित होते हुए तथा दुनिया जीतते हुए नहीं देख पाऊंगस, न ही तुम्हारी सफलता की खुशी साझी कर सकूंगा। काश, मैं इतना पहले पैदा नहीं हुआ होता।’

यह कहते हुए उनकी आंखें भर आतीं।

‘पर क्या तुम मुझे एक वचन दे सकते हो?’

‘हां, अंकल। मैं आपके लिए कुछ भी कर सकता हूं।’

‘जब मेरी मृत्यु होगी, तो बस मैं यह चाहूंगा कि उस वक्त तुम मेरे पास रहो। मैं अपने हाथ में तुम्हारा हाथ लेकर अपनी अंतिम श्वास लेना चाहूंगा।’

मैंने बिना यह जाने कि वस्तुतः यह संभव हो भी पाएगा या नहीं, उन्हें यह आश्वासन दे दिया कि मैं उनके पास रहूंगा, क्योंकि वे यही चाह रहे थे। परंतु उनकी मृत्यु के बारे में सोचते हुए मैंने अलगाव की कोई पीड़ा महसूस नहीं की। हो सकता है, अंततः वे सही हों कि मैं केवल तार्किक था, जबकि वे केवल भावनात्मक पक्ष रखते थे।

एक बार की बात है, हमारे इलाके में बाढ़ आई हुई थी। घर की छत से जानवर, दूसरे घरों का सामान, बरतन और बहुत सारी ऐसी चीजें सड़कों पर बहती देखी जा सकती थीं जो पहचान में भी नहीं आ रही थीं। जब कुछ दिनों बाद बाढ़ का पानी घटा और हम अपने घर में आए, तो सबसे दुखदायी चीज मुझे यह दिखी कि मेरी सारी किताबें नष्ट हो चुकी थीं। वे बिलकुल शवों की तरह फूलकर मिट्टी से सनी थीं और गल चुकी थीं। मैंने उन्हें इस उम्मीद में धूप में डाल दिया कि वे सूख जाएंगी, पर सूरज की गरमी से उनके पन्ने टेढ़े-मेढ़े हो गए। उनसे बदबू आ रही थी, सो अलग। उनका जो रूप कभी रहा था, यदि उसे याद न करे तो अब उनकी ओर देखा तक नहीं जाता था। मैं उन्हें कबाड़ी के हाथों बेच भी नहीं सकता था, क्योंकि आप अपने प्रेम को बेच नहीं सकते। एक दिन जब धूप खिली थी और हवा नहीं चल रही थी, मैंने उन सबको अपने घर की छत पर ले जाकर उनका दाहसंस्कार कर दिया। फिर मैं भारी मन से उठा और और वहां से चला आया।

इस बीच मेरे माता-पिता ने घर की छत पर एक कमरा बनवाने का निर्णय किया, ताकि भविष्य में यदि फिर ऐसी समस्या आ खड़ी हो, तो वैसी स्थिति में उसमें रहा जा सके। जिस व्यक्ति ने हमें इसके लिए निर्माण सामग्रियां मुहैया करवाई, उनकी आयु पैंतीस के आसपास रही होगी और उनका नाम प्रवेश सिंगला था। जब पहली बार मैं उनकी दुकान पर गया, तो हमने कुछ इधर-उधर की भी बातें कीं और हम दोनों तुरंत ही मैत्री भाव में बंध गए। उसके बाद हम प्रायः मिलने लगे।

प्रो. शर्मा की तरह वे भी मेरा बहुत ध्यान रखा करते, जिसकी वजह एक बार फिर मेरी समझ से बाहर थी। मैं यह नहीं समझ पा रहा था कि क्यों उनके जैसा एक सफल व्यवसायी मुझ जैसे एक किशोर का साथ पसंद करेगा।

एक दिन मैंने पूछ लिया, 'आप क्यों अपना इतना सारा समय मेरे साथ लगाते हैं? आप मेरे लिए पुस्तकें और पेन खरीदते हैं और मुझे डिनर के लिए ले जाते हैं। क्यों?'

'मुझे नहीं मालूम कि कौन सी चीज तुम्हारी ओर खींचती है, पर तुममें यह आकर्षण शक्ति मौजूद है। तुममें किसी भी चीज को लेकर कोई भ्रम नहीं नजर आता। मैं हमेशा से तुम्हारे जैसा एक भाई चाहता था,' उन्होंने जवाब दिया।

मैं वहां बैठा यह सोचता रहा कि ये भी प्रो. शर्मा की ही तरह भावनाशील व्यक्ति हैं। मन में अपराध बोध भी हुआ क्योंकि मैं उनके लिए ऐसा कोई मोह नहीं रखता था। मेरे लिए वे एक भले मनुष्य थे और हमारी कुछ रुचियां सामान्य थीं। हम दार्शनिक मुद्दों पर बातचीत करते और एक दूसरे से व्यवसाय के कुछ अच्छे विचार साझा करते। वे संपत्ति का सृजन करने में चतुर थे और उनकी आमदनी के अनेक स्रोत थे।

एक अवसर पर उन्होंने कहा, 'मैं अपने व्यवसाय से आय प्राप्त करता हूं, परंतु मैं अपनी संपत्ति शेयर बाजार से बढ़ाता हूं।'

'वाह, क्या आप मुझे यह सिखाएंगे कि शेयर बाजार में किस तरह पैसे लगाने चाहिए? मैंने अपने ज्योतिष ज्ञान से कमाए पैसे अपने पास बचा कर रख छोड़े हैं और उनका कहीं निवेश करना चाहूंगा।'

‘हां, मैं तुम्हें यह सिखाऊंगा, पर यह याद रखो कि तुम केवल तभी लाभ हासिल कर सकोगे, जब तुम हानि उठाने को तैयार रहोगे।’

उन्होंने मुझे यह बताया कि वे किस तरह स्टॉक चुना करते हैं। वे केवल प्राइमरी मार्केट-आइपीओ-में निवेश किया करते थे, चूंकि उनका यह मानना था कि वे ज्यादा सुरक्षित होते हैं।

‘अपने स्टॉक से कभी मोह मत रखो। यह कभी मत भूलो कि तुमने उन्हें लाभ कमाने के लिए खरीदा है। जब तुम एक लाभप्रद स्थिति में पहुंच जाते हो, तो उन्हें बेच दो। यदि वे तुम्हें धोखा देते हैं और तुम्हें हानि उठानी पड़ रही है, तो निकल जाओ। तुम्हारा लक्ष्य यह होना चाहिए कि तुम्हें जितनी हानि उठानी पड़ी, उससे ज्यादा लाभ उठा लो।’

और मैंने वित्त जगत में छलांग लगा दी। मैंने काफी पढ़ा और जितने प्रकार का संबंधित का प्रकाशन मुझे मिल सका, उन सबका अध्ययन कर गया। अगले कुछ महीनों में मैंने सब-ब्रोकरों के माध्यम से शेयर खरीदे। मैंने सेकेंडरी मार्केट में भी व्यवसाय किया और उनका आनंद उठाया। वहां ज्यादा तेज रफ्तार से काम होता, ज्यादा जोखिम होता और ज्यादा आनंद आता। अब मेरी बचत का 90 प्रतिशत हिस्सा शेयरों में लगा था। यह कारोबार खतरनाक और मजेदार था। मैं अपनी सारी बचत हार सकता था अथवा थोड़ी सी चेष्टा से उन्हें बढ़ा भी सकता था। जब भी शेयरों की कीमतें बढ़तीं, तो मैं आनंदित महसूस करता और जब वे गिरतीं, तो मुझे दुख होता। मुझे भावनाओं का यह झूला झूलने में आनंद आने लगा।

पंद्रह वर्षों की उम्र में 80 प्रतिशत अंकों के साथ दसवीं उत्तीर्ण करने के पश्चात् मैंने अपनी पसंद के एक कॉलेज में दाखिला लिया। मैंने वाणिज्य पढ़ने का निर्णय लिया, क्योंकि गूढ़विद्याओं में मेरी रुचि के बाद व्यवसाय ही मुझे बहुत दिलचस्प लगता था। मैं व्यवसाय को इसलिए पसंद करता, क्योंकि मुझे चुनौतियां पसंद थीं। एक ओर मैंने अपने माता-पिता की उबाऊ दिनचर्या देखी थी, जो रोजाना एक ही समय पर अपने कार्यालय जाते और वहां से वापस लौटते। दूसरी ओर, मैंने व्यवसाय जगत में प्रवेश की उत्साहजनक प्रगति देखी। अपने व्यवसाय की ऊंच-नीच के बारे में उनके द्वारा दिया जानेवाला विवरण प्रो. शर्मा के अपने कॉलेज के दिनों की याद से अधिक रोमांचक था। यह सब बस अपनी-अपनी प्रकृति की बात थी और जहां तक मेरा सवाल था, तो व्यवसाय की ओर मेरा ज्यादा झुकाव था।

व्यवसाय के लिए मेरा उत्साह देखकर मेरे आसपास का प्रत्येक व्यक्ति यह सोचता कि मुझ पर आय अर्जित करने की सनक सवार है। हालांकि उद्यमशीलता तथा पैसे बनाने में मुझे मजा आता और वित्तीय स्वतंत्रता वस्तुतः एक अच्छी चीज होती है। यद्यपि इसके पीछे भी एक गहरा कारण था, मैं जानता था कि भौतिक कलापों से मुझे मेरे प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलने वाले, किंतु इसके बावजूद मैंने व्यवसाय पर ध्यान केंद्रित किया तथा ज्योतिष की गणनाएं करना भी जारी रखा। अब तक मेरे मन में इसे लेकर तनिक भी संदेह नहीं रह गया था कि मैं भौतिक जगत को छोड़कर आध्यात्मिक मार्ग पर चलना चाहता था। मेरे अंदर परमात्मा के दर्शन पाने की उत्कंठा दूसरी किसी भी चीज से ज्यादा तीव्र थी। मैंने असंख्य

बार यह सोचा कि इस संसार को छोड़कर हिमालय में कड़ी तपस्या करूं पर मां की मधुर आंखें और ममतामयी वाणी थीं, मुझे बार-बार रोक लिया करतीं। मैं सोचता कि वे इस वियोग को बर्दाश्त नहीं कर पाएगी। सांसारिक गतिविधियां मुझे अपनी यह आंतरिक इच्छा दबाए रखने में सहायक होतीं। मैं नहीं जानता था कि मेरे पास अपनी उर्जाओं को निर्देशित करने या अपना ध्यान बंटाए रखने का कौन सा साधन सुलभ था।

मैं जिस किसी भी चीज में हाथ लगाता, उसमें प्रायः अनायास निपुणता प्राप्त कर लेता। जल्दी ही, वह मुझे चुनौतीहीन लगने लगता। चाहे वह शतरंज का खेल सीखना हो अथवा संगीत का एक वाद्य यंत्र बजाना अथवा ज्योतिषीय समाधान प्रस्तुत करना, कुछ समय बाद इनमें से प्रत्येक गतिविधि नीरस हो जाती। मैं चाहता कि कोई भी काम मुझे वास्तव में व्यस्त रखे, मेरी जांच करे, मुझे चकित करे, परंतु सब कुछ अकस्मात् सरल हो उठता।

किसी नई चीज की तलाश में मैंने एक निजी संस्थान में एडवांस्ड कंप्यूटर कोर्स करने का निर्णय लिया। पहले दिन के अंत में पगड़ीधारी और कुछ मैले से कपड़े पहने एक युवक ने भेंट की। मैंने पहले यही सोचा कि वे एक मोटर मेकैनिक हैं, क्योंकि उनके कपड़ों में लगे धब्बे तेल अथवा ग्रीस जैसे दिख रहे थे।

हरप्रीत सिंह के रूप में अपना परिचय देने के बाद उन्होंने भगवद्गीता पर मुझसे एक प्रश्न पूछा। मुझे नहीं मालूम कि उन्होंने मुझसे एक धार्मिक प्रश्न क्यों किया? सामान्यतः मैं अपने ललाट पर एक तिलक लगाता, किंतु उस दिन मैंने उसे भी नहीं लगाया था। मैं जींस और टीशर्ट में था, जो मेरी सामान्य वेशभूषा थी। उन्हें यह बिलकुल ही नहीं पता था कि मैं एक ज्योतिषी था अथवा मैंने बहुत सी धार्मिक पुस्तकें पढ़ रखी थीं, फिर भी उन्होंने एक कंप्यूटर सेंटर में मुझसे भगवद्गीता पर प्रश्न करने के विषय में सोचा। खैर, वह प्रश्न मेरी जानकारी से बाहर का नहीं था।

जब मैंने उसका उत्तर दे दिया, तो उन्होंने एक-एक पूछा, 'आपने अंग्रेजी कहां सीखी?'

'कितनी विचित्र बात है!' मैंने सोचा। मेरे उत्तर पर गौर करने की बजाए उन्होंने केवल मेरी भाषा को देखा। हम थोड़ी देर बातें करते रहे। मैंने उन्हें बताया कि मैं वित्त बाजार में इस्तेमाल करने हेतु एक सॉफ्टवेयर बनाने के लिए यह एडवांस्ड कंप्यूटर कोर्स कर रहा हूं।

'वित्त बाजार?'

'हां, मैं प्राइमरी और सेकेंडरी, दोनों तरह के बाजारों में खरीद-बिक्री करता हूं और मैं निवेश की मॉनिटरिंग के लिए एक टूल कोड करना चाहता हूं।'

'क्या आपके पास कुछ घंटों का समय होगा?' उन्होंने पूछा।

'क्या... अभी ही? ठीक है, पर आप करते क्या हैं?'

'क्या आपने 'चड़दीकला' का नाम सुना है?'

'बिलकुल सुना है।' चड़दीकला पंजाबी भाषा का एक क्षेत्रीय अखबार है।

'मैं वहीं काम करता हूं।'

हरप्रीत सिंह मुझे अपने कार्यालय ले गए। वे अपने स्कूटर पर थे, और मैं अपने मोपेड पर उनके पीछे-पीछे चला जा रहा था। जब हम पैदल उस कार्यालय की ओर बढ़े, तो वे मुझे

एक केबिन में ले गए, जिसके दरवाजे पर 'मुख्य संपादक तथा प्रकाशक' लिखा था। उन्होंने वातानुकूलित यंत्र चलाया, फोन उठाया और किसी को बुलाया। एक व्यक्ति अंदर आया और मेरे मित्र ने चाय लाने का आदेश दिया। मेरी जिज्ञासा बढ़ती जा रही थी।

'आप कौन हैं और मुख्य संपादक के कक्ष में क्यों हैं?'

वे मुस्कुराए। 'हम ये हैं,' उन्होंने मेज पर लगा एक पारिवारिक चित्र दिखाते हुए कहा।

'आपका क्या मतलब?'

'मेरा पूरा नाम हरप्रीत सिंह दरदी है और मेरे पिता इस उद्यम के मालिक हैं।'

'अच्छा, यह बात है!'

'अब मुझे यह बताइए,' उन्होंने कहा, 'क्या आप हमारे अखबार के लिए लिखेंगे?'

'मैंने कभी किसी अखबार के लिए नहीं लिखा है, और मैं पंजाबी में लिखता भी नहीं हूं। फिर, मैं किस चीज पर लिखूंगा, भला?'

'हमने पिछले ही साल अंगरेजी में एक वित्तीय प्रकाशन आरंभ किया है, जिसका नाम 'दि बिजनेस टाइम्स' है और यह लोकप्रिय हो रहा है। मुझे इसके लिए एक अच्छे स्तंभकार की तलाश है।'

और इस तरह हुआ यह कि मैं स्टॉक के अपने चयन पर उनके लिए एक नियमित स्तंभ लिखने लगा। मेरे काम से प्रसन्न होकर उन्होंने अपने साप्ताहिक संस्करण के लिए मुझे संपादकीय भूमिका की पेशकश की, जिसे मैंने तुरंत ही स्वीकार कर लिया। जल्दी ही मैं अपनी ज्यादातर शामें प्रेस में बिताने लगा। संपादकीय लिखने, समाचारों का चयन करने और दूसरे पत्रकारों के काम का संपादन करने में मुझे अत्यधिक बौद्धिक आनंद आने लगा।

दो वर्ष बाद मैंने त्यागपत्र दे दिया और छोटे व्यवसायों के लिए कंप्यूटरीकृत प्रेजेंटेशन बनाने के अपने अंशकालिक व्यवसाय को विकसित करने में लग गया। यहां पर कॉन्टेंट लिखने में प्रेस के साथ किए मेरे काम का अनुभव बहुत सहायक सिद्ध हुआ। बारहवीं पास करने के बाद मैंने जूनियर कॉलेज जाना छोड़ दिया और दूरशिक्षा में दाखिला ले लिया, ताकि मैं अपने समय का बेहतर इस्तेमाल कर सकूं। कॉलेज की मेरी शिक्षा ने मुझे पूरी तरह निराश कर दिया था और मैं यह समझ पाने में असमर्थ था कि पिछले दो वर्षों में मैंने क्या सीखा। मैंने विदेश में पढ़ने के विषय में भी सोचा, मगर उसके खर्चे उठाने की समस्या थी। विदेश जाने की अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए मेरे पास कोई स्यार सिंघी तो थी नहीं। पर मेरे पास एक मंत्र था, जिसके बारे में यह कहा गया था कि इसके जप से यह जप करनेवाले को एक यात्रा पर भेज देगा। यह माना जाता था कि इसकी ध्वनि तरंगें आपकी इच्छाएं साकार करेंगी-आकर्षण का नियम।

मैंने ब्रह्मांड से अपनी इच्छा अभिव्यक्त की और जनवरी 1998 में मंत्र का जप आरंभ किया। गाड़ी चलाते हुए, स्नान करते हुए, खाते-पीते, यात्रा करते, सोने के पूर्व, रात-दिन जब भी मैं कुछ नहीं कर रहा होता, तो मैं मंत्र पर अपना ध्यान केंद्रित कर उसका जप करता रहता। यों तो मंत्र पर मुझे विश्वास था, पर मैं यह नहीं जानता था कि यह जल्दी काम करेगा या नहीं। मार्च के एक दिन मेरी शंका समाप्त हो गई, जब मेरी एक परिचित ने बातों ही बातों

में मुझसे यह उल्लेख किया कि उनके चचेरे भाइयों में से एक शिक्षा परामर्शी है और वह छात्रों को ऑस्ट्रेलिया भेजने का काम करता है।

मैंने अपने पिता को कहा और उन्होंने तुरंत ही उच्चतर शिक्षा के लिए मेरे ऑस्ट्रेलिया जाने पर अपनी सहमति दे दी। मैंने हर्स्टविल विश्वविद्यालय, सिडनी में सूचना तकनीक (इनफॉर्मेशन टेक्नोलॉजी) में दो वर्षों के एक पाठ्याक्रम के लिए नामांकन कराया। मेरे पिता ने अपनी सेवानिवृत्ति पर मिलने वाली राशी में से मेरे पाठ्याक्रम के पहले वर्ष के कॉलेज शुल्कों तथा मेरी हवाई यात्रा के टिकट के लिए पैसे निकाले। मैंने अपनी बचत से कुछ अन्य जरूरी चीजें और ऑस्ट्रेलियाई डॉलर खरीदे। इस बीच, मैंने अपने शेयरों को दीर्घकालिक निवेश के रूप में छोड़ दिया।

यदि भारत में मेरे लिए केवल कठिन परिश्रम के कार्यों की ही संभावना थी, तो ऑस्ट्रेलिया में मेरे लिए क्या है, यह भी तो मुझे नहीं पता था। मेरे पास तीसरे स्तर की कोई भी डिग्री न थी और न ही काम का कोई ऐसा प्रासंगिक अनुभव ही था, जो एक नए देश में मुझे पैर जमाने और अपने खर्चे निकालने योग्य कमाई में मेरी मदद करता। यहां तक कि मेरे पास काम करने के पूरे अधिकार भी न थे, क्योंकि मैं छात्र वीजा पर प्रति सप्ताह केवल बीस घंटे ही काम कर सकता था। अब ऐसे में मेरा वहां क्या होना था? मेरे लिए वहां कौन सी संभावना बनती थी? मेरे पास सिर्फ कठिन परिश्रम, बेहद कठिन परिश्रम करने की इच्छा ही थी।

अठारह वर्ष की आयु में मैं ऑस्ट्रेलिया के लिए उड़ चला। मंत्र के जप ने मेरी इच्छा को मूर्त रूप तो दे दिया था, पर उसके परिणाम भोगने की जिम्मेवारी केवल मुझ पर ही थी। मैं अकेला था, किंतु आत्मविश्वास से ओतप्रोत था। मेरी तैयारी न थी, किंतु दृढ़प्रतिज्ञ तो था, मेरे पास आवश्यक जानकारी अथवा अनुभव का अभाव था, परंतु मैं आशावादी था। जीवन मेरे सम्मुख जो भी चुनौतियां लाने वाला था, मैं उनका सामना करने के लिए मानसिक रूप से तैयार था।

चार
पहली उड़ान

जीवन में दो अवसरों पर सुन्न हो जाने की अनुभूति की स्मृति मेरे मन में स्पष्ट रूप से अंकित हैं। पहली तो तब, जब मैं ऑस्ट्रेलिया की उड़ान पर था, और दूसरी तब, जब इसके बारह वर्षों बाद मैंने संन्यास लिया। नहीं, यह कोई शारीरिक जड़ता नहीं थी बल्कि एक किस्म का भावनात्मक पक्षाघात था। मुझे भावना की कोई अनुभूति नहीं हुई। मेरे परिवार के कुछ मित्रों सहित मेरे पारिवारिक सदस्य हवाई अड्डे पर मुझे विदा करने आए थे। हालांकि वे कुछ कह नहीं रह थे, पर उनकी आंखें न जाने कितना कुछ कह रही थीं। मैं हजारों मील दूर की एक मंजिल पर जा रहा था और कब लौटूंगा, यह कुछ पता न था।

इसके पहले मेरे परिवार से कभी किसी ने हवाई यात्रा नहीं की थी, देश से बाहर जाने का तो प्रश्न ही छोड़ो। हवाई अड्डे पर उन्होंने मेरी निकट आती विदावेला को छोड़कर हर किस्म के मुद्दे पर बातें कीं। वे उस बिंदु के विषय में सोचना नहीं चाहते थे, क्योंकि मेरे भविष्य के विचारों की ट्रेन पर केवल चिंताओं, असुरक्षाओं तथा वियोग की सवारियां के इलावा और कुछ ना था। मुझे याद है, सुरक्षा जांच से गुजरते हुए मैंने उन सबको शुभविदा कहा। मेरे सभी प्रियजन मुझे देखते हुए चुपचाप खड़े थे। मैं आशान्वित किन्तु असहाय दिख रहा था, जबकि वे उदास और असहाय से थे।

नई दिल्ली से सिडनी की उड़ान मेरे लिए छोटे से रोमांच की तरह थी। यह रोमांच पांच वर्ष की आयु में पुस्तकों की दुकान के पहले दर्शन या पुस्तकालय के पहले दौरे जितना रोमांचकारी न था। वे तो आनंदित करनेवाली खोजें थीं और वहां कोई भ्रमित करने जैसी बात न थी। यहां तो मैं वे चीजें कर रहा था, जिन्हें मैंने पहले कभी नहीं किया था, जैसे सीटबेल्ट बांधने की विधि आजमाना अथवा यह समझने की कोशिश करना कि पेपर बैग का क्या प्रयोजन है। मुझे यह भी नहीं पता था कि क्या वे खाने-पीने की चीजों के भी पैसे लेते हैं अथवा यह कि उस छोटे से रेस्टरूम के भंडार में क्या चीजें थीं। सबसे बढ़कर मैं यह नहीं जानता था कि ऑस्ट्रेलिया में मेरे लिए क्या प्रतीक्षारत था।

मेरे मन में भविष्य के बारे में सब तरह के विचार; अच्छे और बुरे-आते रहे, हालांकि, मैं चिंतित अथवा घबराया हुआ न था। मैं अपने सामने आनेवाले प्रत्येक संघर्ष का सामना करने के लिए आंतरिक रुप से तैयार था। मैं बस थोड़ा शांत था। हमेशा से यही मेरा तरीका था। भीषण कठिनाई, आत्यंतिक आनंद अथवा एक अपरिचित भावना के आने पर मैं बस शांत हो जाया करता हूं। यह चुप्पी मेरे द्वारा अनुभूत की जा रही भावना को जज्ब होने और मुझे सोचने का समय देती है। मैंने अपने सहयात्रियों से कोई भी बातचीत न की; न कोई सिनेमा देखा, न ही संगीत सुना। मैं शांत भाव से अपने सपनों में विचारमग्न रहा।

मुझे याद है, जब कॉलेज का दाखिला तथा यात्रा का प्रबंध करनेवाले एजेंट ने मुझे यह जानकारी दी कि कॉलेज मेरे लिए होमस्टे (किसी परिवार के साथ रहना) की व्यवस्था करेगा तो मेरे उत्साह की सीमा न रही। मैं एक ऑस्ट्रेलियाई परिवार के साथ रहने वाला था। इस तरह की व्यवस्था मुझे ऑस्ट्रेलियाई संस्कृति के बारे में सीखने का एक अवसर दे सकती थी। मैं यह जानकर भी प्रसन्न था कि उस परिवार के लिए मेरा शाकाहारी भोजन कोई समस्या नहीं बनेगा।

'हमलोग कॉलेज प्रशासन को एक फैक्स भेज चुके हैं और वह हवाईअड्डे पर तुम्हें लेने के लिए किसी व्यक्ति की व्यवस्था करेगा,' उस एजेंट ने मुझे बताया था। वह व्यक्ति अपने हाथों में तुम्हारा नाम लिखी एक तख्ती थामे रहेगा, उसने मुझे विश्वास दिलाया था।

मैं सिडनी में उतरने के बाद दूसरे देश में प्रवेश की औपचारिकता पूरी करने व अपना सामान लेने के बाद आगंतुक कक्ष में पहुंचा। मैं यह देखने के लिए उत्सुक था कि कौन मुझे लेने आता है और मैं किस तरह के परिवार के साथ ठहरूंगा। मैं प्रतीक्षा करता रहा, करता रहा, किंतु कोई भी नहीं आया। मैं बाहर निकल लोगों के चेहरे इस उम्मीद में गौर से देखता रहा कि शायद कोई आगे बढ़कर यह कहे कि क्या आप अमित शर्मा हैं। मैंने उनके हाथों में लिए गए तख्तों को देखा कि शायद किसी पर मेरा नाम लिखा हो। मैं आगंतुक कक्ष के एक कोने से लेकर दूसरे तक यह सोचकर घूमता रहा कि कहीं मैं गलत निकास से बाहर आ गया होऊं। किंतु मेरे सारे प्रयास निरर्थक साबित हुए। जिस तरह गिलहरी बरसात में अपने भोजन की तलाश में घूमती है, उसी तरह घूमते हुए मैंने एक घंटा बिता दिया। मैं थोड़ा घबराया हुआ और बेचैन था, आशान्वित भी था। मेरे प्रियजनों के चेहरे मेरी आंखों के सामने चमक उठे। वे यह जाने को चिंतित होंगे कि मैं सुरक्षित पहुंच गया। मैंने हवाईअड्डे पर फूल बेचनेवाले से पांच डॉलर का खुदरा कराया और एक फोन में एक डॉलर के दो सिक्के डाल अपने घर में संक्षिप्त कॉल कर अपने परिजनों को यह बता दिया कि मैं सुरक्षित हूं और बाकी सभी चीजें ठीक हैं। मेरी आवाज सुनकर उनकी चिंता दूर हुई।

फिर मैं तीन घंटे तक उस व्यक्ति की प्रतीक्षा करता रहा, जो मुझे लेने के लिए आने वाला था। मैंने सोचा कि जिसे भी यहां आना होता, वह अब तक आ गया होता। अंततः मैंने यह निष्कर्ष निकाला कि कोई भी मुझे लेने नहीं आ रहा। बाद में मेरे कॉलेज ने मुझे यह बताया कि उन्हें किसी ने भी हवाई अड्डे पर लेने आने अथवा होमस्टे की व्यवस्था के लिए सूचना नहीं दी थी।

अब मेरे पास जाने की कोई जगह न थी। ऑस्ट्रेलियाई झंडे, कंगारुओं तथा सिडनी ओपेरा हाउस को छोड़कर, जिन्हें मैंने टीवी पर तथा कॉलेज विवरण-पुस्तिका पर देखा था, मेरे लिए यहां और कुछ भी परिचित न था। यहां मैं किसी को जानता भी न था। हालांकि मेरा एक चचेरा भाई यहां रहता था, मगर हम दोनों एक दूसरे के संपर्क में नहीं थे।

मेरे मित्र का एक मित्र भी यहां रहता था। मेरे पास उसके दो नंबर थे। मैंने उन दोनों पर बात करने की कोशिश की, पर वे दोनों गलत नंबर निकले। मुझे शरीर से पसीना निकलता महसूस हुआ। मैंने अपना सिर खुजाया। सच्ची। अब मैं कहां जाऊं? मैं ठहरने की जगह कहां देखूं और कहां खाऊं? मैं किसी होटल में जा सकता था, पर अपने पास कुल जमा तीन हजार डॉलर से कुछ ऊपर की रकम की जीवनरेखा के साथ मैं कितने दिन काट पाता?

तभी, मुझे याद आया कि मेरे एजेंट का पुत्र भी सिडनी में ही रहता था, जिसका नंबर उसने मुझे दे रखा था। 'यदि कोई आपातकाल हो, तो तुम उसे कॉल कर सकते हो,' उसने कहा था। यह तो मेरे लिए एक आपातकाल ही था। मैंने उस नंबर पर कोशिश की। दूसरे सिरे पर किसी ने फोन उठाया। यह एजेंट का पुत्र ही था। मैंने अपने सौभाग्य को धन्यवाद दिया। मैंने संक्षेप में उसे अपने 'होमस्टे' की गड़बड़ के विषय में बताया और कहा कि मैं कहां जाऊं, यह समझ में नहीं आ रहा।

'मेरे भाई-बहन अगले तीन सप्ताह के लिए भारत गए हुए हैं। सो, तुम मेरे साथ ही ठहर जा सकते हो,' उसने कहा। 'एक टैक्सी ले लो और चले आओ,' उसने अपना पता बताते हुए मुझसे कहा।

मैंने एक टैक्सी को संकेत किया और उसमें बैठ गया। टैक्सी ड्राइवर ने कहा, 'ग'डे मेट।' मैं कुछ भी समझ नहीं पाया, क्योंकि मुझे यह वाक्य अंग्रेजी का नहीं लगा। अंग्रेजी के ऑस्ट्रेलियाई उच्चारण से मेरा कभी पाला नहीं पड़ा था, मेरी देखी किसी हॉलीवुड फिल्म में भी ऐसा उच्चारण नहीं था। वैसे भी मैंने ज्यादा फिल्में देखी नहीं थीं। **बेबीज डे आउट से लेकर दि टर्मिनेटर** तक शायद कुल मिलाकर बीस के आसपास देखी होंगी।

मैंने उसे अपना पता दिया और हम चल पड़े। अरे वाह, चारों ओर सभी चीजें कितनी साफ-सुथरी लग रही थीं। मैंने कभी भी यह नहीं सोचा था कि इतनी सफाई और सुव्यवस्था भी संभव हो सकती है। अंत में हम अपने गंतव्य पर पहुंचे - उत्तरी सिडनी में फाल्कन स्ट्रीट। मौसम सर्द था - मैं 21 जून को वहां पहुंचा था। सौभाग्य से यह एक रविवार था। यदि यह एक काम का दिन होता, तो एजेंट का पुत्र घर पर नहीं होता और कोई भी मेरा फोन नहीं उठाता। इसी बीच फोनकॉल और टैक्सीभाड़े में मेरे 36 डॉलर निकल चुके थे, यानी मेरी जमापूंजी का 1 प्रतिशत।

मैं किसी तरह अपने भारी बैग पहली मंजिल तक ले गया। एजेंट का पुत्र कोई बीसेक वर्ष का युवा था और उसने अपना नाम हैप्पी बताया। उसने मुझे अपने बैग बाहर के कमरे में ही छोड़ देने को कहा। यह केवल एक बेडरूम का अपार्टमेन्ट था।

'तुम सोफाबेड पर सो सकते हो,' उसने कहा। मैंने सिर हिलाया। मैं बस यही सोचकर प्रसन्न था कि सिर के ऊपर एक छत तो नसीब हुई।

हैप्पी ने सप्ताहांत में एक मित्र को बुला रखा था। वह कॉमर्स में पोस्टग्रेजुएट (वाणिज्य में स्नात्कोत्तर) था, वहां छात्र वीजा पर रह रहा था और एक कारखाने में काम करता था। जल्दी ही चार और युवक आ गए। वे सभी उसी कारखाने में काम करते थे और उनमें से एक ने हाल ही टैक्सी ड्राइवर का लाइसेंस प्राप्त किया था।

जब हम सब साथ बैठे थे, तो उस पोस्टग्रेजुएट युवक ने मुझे कुछ बिनमांगे सुझाव दिए। 'यदि तुम यह सोच रहे हो कि यहां एक नौकरी प्राप्त कर सकोगे, तो इसे भूल जाओ। मैं दिल्ली विश्वविद्यालय से एमकॉम हूं और मैं यहां एक कारखाने में काम करता हूं। इस देश में बहुत ज्यादा नस्लवाद है और भारतीय डिग्री और अनुभव का यहां कोई मूल्य नहीं है। यहां पर स्थानीय अनुभव ही काम आता है।'

'क्या इसे एक सिक्योरिटी गार्ड का लाइसेंस नहीं मिल सकता?,' दूसरे ने पूछा।

'उसके कोर्स की कीमत लगभग 1200 डॉलर है और ये यदि उतना दे भी दे, तो भी काम मिलने का आश्वासन नहीं दे सकते।' उस एमकॉम युवक ने किसी भविष्यवक्ता की तरह घोषित किया।

'हां। शायद इसे कारें धोने का काम मिल सके।'

'हो सकता है।'

'किसी रेस्तरां में बैरे का काम?'

'यह उनका उच्चारण नहीं समझ पाएगा।'

'क्या यह देहात के किसी फार्म पर काम कर सकता है?'

'यदि और कुछ भी न मिले, तो यह काम कर सकता है, किंतु यह ठीक नहीं रहेगा, क्योंकि उस तरह यह पढ़ नहीं सकेगा। यदि यह अपनी परीक्षा में पास न हो सके या फिर इसका वीजा समाप्त हो जाए, वैसी स्थिति में यह खेत पर जा सकता है। मैं एक व्यक्ति को जानता हूं, जो इसे नौकरी दे सकता है। उसका आलुओं का एक खेत है,' फिर मि. कॉमर्स ने कहा।

'टैक्सी ड्राइवर?'

'तुम मजाक कर रहे हो! तुम्हें सारी सड़कों के नाम और रास्ते याद करने पड़ेंगे। क्या तुम्हें मालूम है कि इसके लाइसेंस की परीक्षा कितनी कठिन होती है?'

अभी तक मैं स्वयं इस बहस में नहीं पड़ा था। यह सब उनके ही बीच चल रहा था। सामान्यतः मुझे इसकी परवाह नहीं थी कि वे मेरे बारे में क्या कह अथवा सोच रहे थे। मुझे किसी के सामने खुद को साबित नहीं करना था, इन लोगों के सामने तो कतई नहीं। मगर मेरे लिए उन सबकी चिंता देखते हुए मैं भयभीत था कि वे सब अपनी बातचीत कभी बंद नहीं करेंगे।

'सुनो, बंधुओ,' मैं बोल पड़ा। 'मुझे यह अच्छी तरह पता है कि मुझे यहां क्या करना है और यह टैक्सी चलाना, कारें धोना अथवा आलू छीलना उसमे शामिल नहीं है। इसके पहले कि मेरे पैसे खतम हो जाएं, मैं कुछ बेहतर काम की व्यवस्था कर लूंगा।' मैंने कुछ और भी चीजें कहीं, जो अभी याद नहीं कर पा रहा हूं, किंतु मुझे इतना तो अवश्य याद है कि मैं पांच

मिनटों तक बिना रुके बोलता रहा था। उसके बाद उन्होंने मेरी चिंता छोड़ दी।

हैप्पी ने मुझसे पहले ही दिन से किराया देने को कहा। 'फोन बिल का भुगतान उपयोग के आधार पर करना और बाकी सुविधाओं के लिए उपयोग के दिनों के आधार पर।' मुझे तीन सप्ताह के अंदर अपने लिए रहने की व्यवस्था कर लेनी थी। यह सब तो मेरे लिए ठीक था, पर अभी मुझे जोरों की भूख लगी थी, क्योंकि मैंने सुबह से कुछ भी नहीं खाया था। लंच का समय गुजर चुका था और कोई भी लंच की बात नहीं कर रहा था। अंत में 5 बजे के करीब उन्होंने बियर और दूसरे किस्म की शराब निकाली और खाने की चीजों के आदेश किए। उन्होंने मुझे बियर की पेशकश की और थोड़ी व्हिस्की भी आजमा कर देखने पर जोर दिया। मैंने इनकार कर दिया। शराब और सिगरेट का सेवन तथा ऐसी दावतों का मेरी जीवनशैली में कोई स्थान न था। इसके अलावा, मैं इन लोगों से अपरिचित भी था। मेरे परिचितों में प्रो. शर्मा तथा प्रवेश ही वे दो लोग थे, जो शराब का सेवन करते थे। प्रवेश कभी-कभी ही पीते थे, जबकि प्रो. शर्मा अत्यंत शालीनता से पीते थे।

वैसे भी, हमारे सभी आनंद मस्तिष्क में निवास करते हैं। मैंने अपनी आनंदानुभूति के लिए इनसे कहीं बेहतर और स्थायी चीजों के अनुभव किए थे और उनके कोई हानिकारक 'दुष्प्रभाव' भी न थे। एक बौद्धिक चुनौती मुझे सबसे अधिक रोमांच दिया करती। मैं लगातार घंटों बैठा किसी कंप्यूटर समस्या को सुलझाता अथवा शतरंज की बिसात पर नजरें गड़ाए रह सकता था, पढ़ने और अपने कीबोर्ड पर संगीत के सृजन का तो कहना ही क्या। और तो और, जब एक महान पुस्तक समाप्त होती अथवा मैं किसी कंप्यूटर समस्या को सुलझा लेता, तो मुझ पर भी आनंद का एक नशा देर तक हावी रहा करता।

सबसे बढ़कर, मैंने अंतर्मन के आनंदों से साक्षात्कार किया था। मैंने ध्यान के सागर में गहरी डुबकी लगाने के आनंद की अनुभूति की थी। मैंने वेदमंत्रों के गान का आनंद उठाया था, जिनकी ऊपर उठती प्रत्येक ध्वनि मुझे एक दूसरी ही दुनिया में स्थानांतरित कर दिया करती। यदि आत्मा के लिए कोई उत्तेजक वस्तु थी, यदि प्राणों के लिए कोई नशा था, तो मेरे लिए, वह ध्यान ही था।

अगले दिन मैं बैंक जा पहुंचा, ताकि एक नया खाता खोल सकूं। बैंक मैनेजर एक दोस्ताना स्वभाव के व्यक्ति थे, एक बड़ी सी मुस्कान से मेरा स्वागत किया। किसी ने भी कतार तोड़कर आगे बढ़ने की कोशिश नहीं की; यह जगह सुव्यवस्थित मगर तनावरहित थी। तीस मिनट से भी कम समय में मेरे पास एक बैंक खाता नंबर और एक अस्थायी एटीएम कार्ड मौजूद था। घर वापस लौटते समय मैंने एक निःशुल्क स्थानीय अखबार उठा लिया, जो प्रशासनिक सचिवों, सहायकों, टेलीमार्केटियरों इत्यादि की जरूरत के विज्ञापनों से भरा था। किंतु प्रोग्रामरों, संपादकों अथवा विक्रेताओं के लिए कोई जॉब नहीं था। मुझे बाद में पता चला कि केवल मुख्य धारा के अखबार ही वैसे काम के विज्ञापन प्रकाशित किया करते थे, जिनकी मुझे तलाश थी।

दोपहर के बाद मैं अपने नए कॉलेज में गया। यह एक छोटी इमारत के एक तल्ले में अवस्थित कुछ कमरों में ही सिमटा था। इसके प्रिंसिपल रिचर्ड डा सिल्वा एक अच्छे व्यक्ति

थे। मैंने उन्हें अपना परिचय दिया और उनसे यह अनुरोध किया कि वे मुझे एक काम दिलाने में मदद करें, परंतु उन्होंने कहा कि वे इस मामले में कुछ भी नहीं कर सकते। मैंने उनसे पूछा कि क्या वे मुझे बिना वेतन के एक काम का अनुभव लेने में सहायता कर सकते हैं, तो उन्होंने मुझे वचन दिया कि वे इसकी चेष्टा अवश्य करेंगे।

अपने फ्लैट की बगल में ही मुझे एक व्यावसायिक केंद्र मिल गया, जहां मैंने अपना जीवन-परिचय तैयार तथा प्रिंट कर उन्हें विभिन्न कंपनियों को फैक्स कर दिया। मैंने विभिन्न सचिव तथा प्रशासनिक कार्य संबंधी नौकरियों के लिए आवेदन किया था। फैक्स भेजने में लगभग एक घंटे का समय लगाने के बाद मैं घर की ओर लपका, ताकि यदि कोई फोन करे, तो उसे सुनने के लिए, मैं वहां मौजूद रहूं। मैं पूरे दिन फोन के निकट बैठा रहा, मगर किसी ने फोन नहीं किया। दूसरा दिनः मैंने और भी ज्यादा फैक्स भेजे। तीसरे दिनः पता चला कि मुझे विभिन्न कंपनियों को नौकरी के बारे में पूछताछ के लिए स्वयं फोन करना होगा, वे मुझे फोन नहीं करेंगे। चौथा दिनः मैंने घर पर फोन कर उन्हें बताया कि यहां सब ठीक है। मुझे पता चला कि मेरी मां ने अपने बड़े भाई को फोन कर उनसे बातें की थीं, जिनके पुत्र, अरुण मौदगिल, सिडनी में रहते थे। उन्होंने यह सलाह दी कि मैं उन्हें फोन करूं। अरुण भैया ने मुझे यह कहा कि वे सप्ताहांत में मुझे अपने साथ ले जाएंगे और यह कि मुझे इसके लिए अपने सामान बांध कर तैयार रखने चाहिए। मैं खुश था कि मुझे अरुण और उसके परिवार के साथ कुछ समय बिताने का अवसर मिलेगा।

पांचवां दिनः मैंने डाक में एक नहीं, दो पत्र देखे, जिन पर कंपनियों के चिन्ह छपे थे। मैं रोमांचित हो उठा। तो अंततः मुझे एक इंटरव्यू कॉल मिल ही गया अथवा संभव है, यह सीधा नियुक्ति पत्र ही हो। पहला पत्र तो एक विनम्र इनकार का था। इसे इतनी शिष्टता से लिखा गया था कि मैंने सोचा कि उन्हें वस्तुतः मुझसे प्रेम था, पर वे किसी वास्तविक वजह से मुझे काम पर नहीं रख सकते थे। मैंने दूसरा पत्र खोला। वह भी ठीक पहले की ही तरह था। मैं निराश हो उठा, मगर फिर भी मैंने उनके इन पत्रों की प्रशंसा की। आखिर किसी ने तो यह लिखने का ध्यान रखा कि उन्हें मेरी आवश्यकता नहीं थी। इसके बावजूद, मैंने उन पत्रों पर लिखे नंबरों पर फोन किया जहां से मुझे कहा गया कि यदि भविष्य में कभी ऐसा अवसर आया, तो वे मुझे उसकी जानकारी देंगे।

सामान्यतः, भारत में रहते हुए मैंने अपने अनुभव अपने किसी परिजन अथवा प्रो. शर्मा से साझे किए होते। मगर यहां तो कोई भी ऐसा नहीं था, जिससे मैं बातें कर सकता। एका एक मुझे एक शून्यता की अनुभूति हुई। मुझे पहली बार यह समझ में आया कि मैं एक बिलकुल नए देश में निपट अकेला था। मेरी पीठ पर कोई भी नहीं था और मुझे वहां जीने के लिए किसी उपाय की तलाश करनी थी। मुझे कॉलेज में पढ़ना था, काम ढूंढ़ना था, रहने के खर्चे निकालने थे और इतनी बचत भी करनी थी कि दूसरे वर्ष की ट्यूशन फीस भी दे सकूं, जिसमें असफल रहने पर मुझे देश से बाहर कर दिया जा सकता था। मैं बाथरूम में गया, जो हैप्पी के फ्लैट में एकमात्र ऐसी जगह थी, जहां मैं एकांत पा सकता था। आईने में देखने पर मैंने यह पाया कि मैं रो रहा हूं। मैंने खुद को रोकने के प्रयास नहीं किए, बल्कि जी भरकर

रोने दिया। ऑस्ट्रेलिया में मैंने उसी समय, पहली व अंतिम बार आंसू बहाए थे।

उसके बाद, मेरी आंखें सूज गईं और मेरा चेहरा थका हुआ सा लग रहा था, पर मैं तरो ताजा और हलका हो गया। शायद मेरी चेतना में यह बात गहराई तक बैठ गई थी कि मैं यहां बिलकुल अपने भरोसे था और इस स्वीकृति ने मुझे हलका कर दिया। मैं अपना चेहरा गंदा रखना सहन नहीं कर सकता था, क्योंकि एक घंटे के भीतर ही अरुण भैया से मेरी भेंट होने जा रही थी और मैं उन्हें यह नहीं जानने देना चाहता था कि मैं रो रहा था। मैंने चेहरा धोया और सप्ताहांत के लिए अपना बैग पैक कर उनका इंतजार करने लगा।

जब वे मेरे फ्लैट के निकट पहुंचे, तो उन्होंने मुझे फोन किया। मैं तेजी से नीचे पहुंचा। वे वहां खड़े थे, अपनी चमचमाती हौंडा लीजेंड के बगल में खड़ा एक आकर्षक व्यक्ति। हमने हाथ मिलाए और मैंने उनके चरण छूए। इसके पहले उनसे मेरी केवल दो बार भेंट हुई थी, पहली बार जब मैं एक बालक था और दूसरी बार, जब वे कुछ वर्षों पहले भारत आए थे। वे कार चला रहे थे और मैं उनकी बगल में बैठा था। मुझे उनकी कार भा गई। उसकी एकदम साफ-सुथरी, खूबसूरत कीमती चमड़े से मढ़ी आंतरिक साजसज्जा, स्वचालित गियर और पैर फैलाने की विस्तृत जगह मुझे बहुत अच्छी लगी।

भैया इस बात को बहुत पसंद नहीं करते थे कि कोई छात्र ऑस्ट्रेलिया में छात्र वीजा पर आए और फिर यहां रहने तथा पढ़ने के लिए संघर्ष करे। यह विचार उन्होंने कुछ वर्ष पहले तब व्यक्त किया था, जब मेरे बड़े भाई को पढ़ने के लिए बाहर भेजने के बारे में मेरी मां ने उनकी सलाह मांगी थी। उन्होंने कहा कि इसके बजाए यह कहीं बेहतर है कि छात्र भारत में ही अच्छी पढ़ाई करें और तब, यदि उनकी इच्छा हो, तो काम करने बाहर जाएं। यही वजह थी कि मैंने अपने ऑस्ट्रेलिया आगमन के विषय में उन्हें सूचना नहीं दी थी।

जब मैंने अपनी स्थिति के विषय में उन्हें जानकारी दी, तो उन्होंने कहा कि 'अब जब तुम यहां आ ही गए हो, तो हम इसे सफल करने के प्रयास करेंगे।'

जब हम साथ जा रहे थे, तो मुझे यह पता चला कि उन्होंने हाल ही अपना काम छोड़ दिया था और श्रिंकरैप पैकेजिंग का एक नया व्यवसाय आरंभ किया था। भैया पेशे से एक इंजिनियर और मानसिक क्षमता से एक अत्यंत प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। बाद में, उन्होंने अपने व्यवसाय को करोड़ों डॉलर के उद्यम में विकसित कर लिया, जिसका कारोबार दस देशों में फैल गया।

वे सेवेन हिल्स में रहते थे, जो सिडनी के पश्चिमी भाग में एक उपनगर था और जो मेरे कॉलेज से काफी दूरी पर था। उनके घर पहुंचने में हमें बहुत समय लगा। वहां उन्होंने अपनी दो छोटी बेटियों से मेरा परिचय कराया, जिनके नाम अनंता तथा आयेशा थे। उनकी उम्र क्रमशः छह तथा तीन वर्ष की थी। उनकी पत्नी, अंजु, एक प्रमाणित अकाउंटेंट थीं और एक ग्लोबल इन्वेस्टमेंट बैंक के लिए काम करती थीं। जब मैं वहां पहुंचा, तो वे अपने काम पर ही थी।

उस शाम, वे बाद में घर पहुंची। जहां मैं और भैया बैठे बातें कर रहे थे, अंजू ने अपना सिर एक ओर झुकाया और मुझे देखकर चेहरे पर एक बड़ी मुस्कान के साथ 'हेलो!' कहा।

उनकी ऊष्मा ने अचानक सब कुछ सहज बना दिया। धीरे-धीरे पता चला कि वे एक स्नेहपूर्ण, प्रतिभाशाली और कमाल की महिला थीं।

हालांकि अभी घर से यहां आए एक सप्ताह ही गुजरा था, पर मुझे ऐसा लगा, जैसे अनंत काल गुजर गया हो। इस एक सप्ताह के अंदर मैंने कॉलेज में रिपोर्ट की, अपना मेडिकल बीमा कराया, एक नया बैंक खाता खुलवाया, बीस नौकरियों के लिए आवेदन किए, दो लिखित अस्वीकृति पत्र प्राप्त किए, उत्तरी सिडनी की सड़कों की खाक छानी, एक सेल्स सेमिनार में यह समझकर भागीदारी की कि यह एक इंटरव्यू कॉल था, एक शतरंज शिक्षक की नौकरी के लिए इंटरव्यू दिया, कॉलेज में काम के अनुभव के लिए आवेदन किया और ऑस्ट्रेलियाई उच्चारण से सुपरिचित हो गया। इसी बीच मेरे दो सौ डॉलर से भी ज्यादा व्यय चुके थे।

शनिवार को अरुण एवं अंजु ने कुछ दोस्तों को बुला रखा था। इसके पहले वाले सप्ताहांत के विपरीत, यह गंभीर लोगों का समूह था। हमने एक आनंददायक रात्रिभोज लिया और मैंने अपने यामाहा कीबोर्ड पर, जिसे मैं भारत से ले आया था, कुछ गाने बजाए। सभी लोगों ने आराम से बैठकर संगीत का आनंद लिया। अगले दिन मेरे लिए जाने का समय था। सुबह के समय अरुण मेरे पास आए और उन्होंने कहा, 'हम लोग यह चाहेंगे कि जब तक तुम कहीं कुछ जम न जाओ, हमारे साथ ही रुको।'

'मैं तो इसे बहुत पसंद करूंगा, भैया,' मैंने कहा, 'मगर मैं भार नहीं बनना चाहूंगा। क्या परिवार में बाकी सभी लोग इसके लिए तैयार हैं?'

'हां, मैंने अंजू से बात कर ली है। सच तो यह है कि यह उसी का विचार है।' उनके इस भाव ने मानो मेरा दिल छू लिया। अरुण ने मुझे अपने फोन लाइन का भी प्रयोग करने को कहा, जिसके साथ एक अलग फैक्स मशीन लगी थी। जब मैं नौकरी के आवेदन भेजने में लग गया, तो मेरे मस्तिष्क में व्यवसाय के तरह-तरह के विचारों की मानों बाढ़ सी आ गई; मुझे चारों ओर अवसर ही अवसर दिखने लगे। समय बरबाद न करने की इच्छा के वशीभूत, मैंने व्यवसाय का एक नाम भी आरक्षित करा लिया, जो 'वेबकॉम टेक्नोलॉजीज' था। इंटरनेट का विकास एक विराट घटना के रूप में सामने आ रहा था, जिसकी संभावनाओं का कोई ओर-छोर न था और मैं इस अवसर को हाथ से जाने देना नहीं चाहता था। मेरी एकमात्र बाधा यह थी कि मेरे पास कुछ भी आरंभ करने की पूंजी नहीं थी। इसका मतलब यह नहीं था कि मुझे लाखों अथवा यहां तक कि दस हजार डॉलर की जरूरत थी। मुझे बस कोई यह कहने वाला चाहिए था कि 'तुम अगले वर्ष की कॉलेज फीस के लिए पांच हजार डॉलर और अगले छह माह के रहने-खाने के खर्चे की चिंता मत करो,' और इसके बाद मैंने खुद को एक व्यवसाय खड़ा करने में पूरी तरह झोंक दिया होता। किंतु इस पल तो मेरे लिए सांस लेने की जगह भी उपलब्ध न थी।

मैंने बहुत जल्द यह समझ लिया कि स्थानीय अखबारों में सॉफ्टवेयर से संबद्ध नौकरी के ज्यादा विज्ञापन नहीं होते और कोई भी मुझे काम देने को इसलिए तैयार न था, क्योंकि मेरे पास कोई स्थानीय अनुभव न था। और ज्यादा कंपनियों के संपर्क में आने के लिए मैं रोजाना

‘येलो पेजेज’ छान जाता और पचास संभावित नियोक्ताओं को फोन किया करता। मैं वैसे सौ फोन भी कर सकता था, पर अरुण भैया के लैंडलाइन में निःशुल्क स्थानीय फोन करने का एक कोटा नियत था और मैं वह सीमा पार नहीं करना चाहता था। एक बार मैंने किसी को फोन किया, जिसने मेरी बात सुनने के बाद कहा, ‘मुझे ऐसा लगा, जैसे मैं किसी रोबोट की बातें सुन रहा होऊं।’

रोबोट? यह बिलकुल साफ था कि मैं अपनी कोशिश में विफल रहा। जरा सोचिए तो सही, कहां तो मैं इन कोशिशों में अपनी जान दिए जा रहा था और कहां फोन के दूसरे सिरे पर मेरी बातें सुनने वाले व्यक्ति को यह लग रहा था कि मैं कोई रोबोट हूं। इसका मतलब था कि मेरी आवाज मशीनी लग रही थी। किंतु इसके बाद उसने जो कहा, उससे मेरी सोच गलत साबित हुई। ‘मुझे आइटी से संबद्ध कोई भी जरूरत नहीं है, दोस्त,’ उसने कहा, ‘पर क्या तुम मेरे लिए फ़ोन पर मार्केटिंग करोगे? मुझे एक ऐसे व्यक्ति की जरूरत है, फोन पर जिसकी आवाज तुम्हारे जैसी हो?’

किसी ऑस्ट्रेलियाई व्यक्ति से अपनी सराहना सुनने का मेरे लिए यह पहला अवसर था। पर चूंकि मैं अब भी प्रोग्रामिंग के क्षेत्र में एक नौकरी या काम पाने को उत्सुक था, सो मैंने विनम्रतापूर्वक मना कर दिया।

किंतु हर बीतते दिन के साथ मैं अधिकाधिक निराश होता गया। एक सप्ताह बाद मुझे एक टेलीमार्केटिंग की नौकरी का आमंत्रण मिला। यह कंपनी भी एक उपनगर, बौल्कम हिल्स, में स्थित थी और यह अक्षरशः एक ‘गृह उद्योग’ था, यानी नियोक्ता ने अपने घर को ही ऑफिस की शक्ल दे दी थी। मेरा मेहनताना 12 डॉलर प्रति घंटे तय किया गया, जिसके ऊपर से मुझे कमीशन मिलना था। इस पैसे से मैं क्या-क्या करूंगा, यह सोचने का लोभ मैं संवरण न कर सका। अचानक, यह एक बड़ी रकम लगने लगी।

मेरा काम यह था कि मैं छोटे-छोटे व्यवसायों को अपनी सेवाओं की पेशकश करूं। एक बार जब ग्राहक दिलचस्पी लेता दिखे, तो मुझे उसको एक ऑर्डर फॉर्म फैक्स कर देना था और यदि वह ग्राहक उसपर अपने हस्ताक्षर कर अपने क्रेडिट कार्ड के विवरण के साथ उसे वापस फैक्स कर दे, तो यह सौदा पक्का माना जाना था। किंतु, मेरे नियोक्ता ने इन सबके लिए एक खास प्रक्रिया तय कर रखी थी। मुझे 9 बजे सुबह से लेकर 1 बजे अपराह्न तक फोनकॉल करने थे, उसके बाद अपराह्न में फैक्स करना था और शाम में अथवा दूसरे दिन फोन से दोबारा पूछताछ करनी थी।

मैंने दिन के भोजन अथवा चाय के लिए भी अवकाश नहीं लिया। मैं बस फोन पर फोन करता चला गया। मुझे पता चला कि दूसरे टेलीमार्केटियर सुबह के समय केवल एक अथवा दो ग्राहकों को तैयार कर पाते हैं, जबकि मैंने पहले ही दिन सुबह के सत्र में आठ और अपराह्न के सत्र में चौदह ग्राहकों तैयार कर लिए, क्योंकि मैं पूरे दिन नए कॉल करता ही रहा। जैस ही मुझे कोई ग्राहक दिलचस्पी लेता हुआ लगता, मैं फैक्स मशीन तक दौड़ा जाता, उसे फैक्स भेजता और फिर तुरंत ही पूछताछ कॉल भी कर लेता, ताकि मैं सौदा पक्का कर लूं। पहले ही दिन मैंने छह ग्राहक पक्के कर लिए। ‘वाह, क्या बात है,’ मैंने सोचा।

मगर, मेरे बॉस का विचार कुछ दूसरा था। उन्हें मेरा अनुचित समय में फैक्स करना पसंद नहीं आया। 'तुम्हें प्रक्रिया का पालन करना होगा,' उन्होंने दूसरे दिन मुझसे कहा। 'हम केवल दिन के भोजन के समय फैक्स भेजते हैं।' मैंने उससे माफी मांगी और आगे के फोन करने अपनी मेज पर चला गया। इस तरह दूसरे दिन मुझे लगभग तीस इच्छुक ग्राहक मिले, पर सौदा एक भी पक्का न हुआ। जहां तक मेरा विचार था, गरम लोहे पर ही चोट की जानी चाहिए। यह सीधी सी बात थी, जिसके लिए ज्यादा बुद्धि लगाने की जरूरत नहीं थी।

तीसरे दिन, मैंने इस हेतु ऑपरेशन मैनेजर की सहायता लेने का निर्णय लिया, जो मुझसे बड़ी आयु की एक महिला थीं। मैंने उन्हें बताया कि मैं अपने सारे लक्ष्य पार कर सकता हूं, बशर्ते मुझे तुरंत ही फैक्स करने की अनुमति दी जाए। वे मेरा अनुरोध लेकर बॉस के पास गईं, जबकि मैं उनके केबिन के बाहर इंतजार करता रहा। कुछ मिनटों बाद बॉस उस महिला के साथ ही बाहर निकले और मेरे सामने ही उनसे कहा, 'इस बेवकूफ को यहां से बाहर निकल जाने को कहो।'

मुझसे आज तक किसी ने ऐसे बात न कि थी। मुझे पैसों की आवश्यकता तो थी, पर मैं इसके लिए अपमान सहने को तैयार न था। जैसा कहा जाता है, हर चीज के लिए एक पहला अवसर हुआ करता है। तो ऐसी किसी चीज के अनुभव का यह मेरा पहला ही अवसर था और मैंने इसकी कोई तैयारी न कर रखी थी।

'आप अपनी जुबान संभाल कर बोलें,' मैंने कहा।

'भाग यहां से साले...,' उन्होंने प्रत्युत्तर में अपशब्द कहा।'

मैं सन्न खड़ा रहा। उस महिला ने जल्दी से मुझे चले जाने को कहा, अन्यथा वह सज्जन गुस्से से पगला सकते थे।

'आप दो दिनों का मेहनताना और कमीशन मुझे देंगी या नहीं?' मैंने महिला से पूछा।

महिला के बजाय बांस ने ही उत्तर दिया, 'इस ... को यहां से बाहर निकालो।'

'आपको हो क्या गया है?' मैंने कहा। असहाय जैसा महसूस करते हुए मैंने उसी की तरह तेज आवाज और अधिकार के साथ बोलने की कोशिश की, पर वैसा असर पैदा न कर सका। स्वयं मुझे ही मेरी आवाज दबी-दबी और तुच्छ सी लगी। उन्होंने नफरत से अपना सिर हिलाया और अपने केबिन में चले गए। उस महिला ने मुझसे चले जाने का अनुरोध किया।

मैंने अपना बैग उठाया और बाहर चला आया। मैं अत्यंत तनाव और तरह-तरह के विचारों में खोया था और पैदल चलते हुए मैं कब बसस्टॉप पार कर गया, कुछ पता भी न चला। अंततः थककर मैं फुटपाथ पर बैठ गया और एक लंबे समय तक वहीं बैठा सोचता रहा। दस महीने बाद मुझे 5,000 डॉलर की ट्यूशन फीस देनी थी। फिर मुझे जल्दी ही अपने ममेरे भाई का घर भी छोड़ना था। मुझे अपने लिए कुछ न कुछ तो करना ही था।

जब मैं वापस घर लौटा, तो अरुण वहीं थे। 'तुम जल्दी लौट आए!'

'उस आदमी ने मुझे अपशब्द कहे।'

'तुम्हें अपशब्द किसने कहे?'

'कंपनी के मालिक ने। उन्होंने मुझे अपशब्द कहे।' मैंने उन्हें घटना की थोड़ी जानकारी

दी।

‘ऐसा तो प्रायः नहीं होता? परंतु क्यों? फिर तुमने क्या किया?’

‘मैं कर भी क्या सकता था, भैया? मेरे लिए कोई और विकल्प तो था नहीं। उन्होंने मुझे वहां से निकल जाने को कहा।’

‘यह तो बहुत बुरा हुआ, पर चिंता मत करो। तुम्हें कुछ और काम मिल जाएगा,’ उन्होंने कहा। ‘क्या उन्होंने दो दिनों के काम के पैसे दिए?’

‘उन्होंने केवल मुझे अपमान ही दिया। पैसे नहीं दिए। मैंने अपना सम्मान भुलाकर उनसे अपने मेहनताने की मांग की, पर उन्होंने इनकार कर दिया।’

‘उन्हें गोली मारो। चलो, हम लोग कॉफी पीएं।’

उन्होंने मुझे उत्साहित करने तथा हंसाने की कोशिश की, पर मैं वस्तुतः बहुत निराश था। अब कोई भी और कोशिश करने की मुझे जरा भी इच्छा न थी, किंतु ‘कुछ ना करना’ एक ऐसी विलासिता थी, जिसे मैं सहन नहीं कर सकता था। वहां टिके रहने के लिए मुझे अपनी कोशिशें लगातार जारी रखनी थीं। मैंने एक बार फिर से ‘येलो पेजेज’ निकाले और पहले से भी ज्यादा ऊर्जा से कंपनियों को फोन करना शुरू किया। छह सप्ताह और पंद्रह सौ कॉल के बाद ‘ऑस्ट्रेलियन विंडोज पब्लिशिंग’ नामक कंपनी ने मुझे पहला मौका दिया। मार्गो प्लोराइट नामक एक महिला ने सॉफ्टवेयर प्रोग्रामिंग में मुझे अवैतनिक कार्य अनुभव के लिए इंटरव्यू हेतु बुलाया। मैं अगले दिन उससे मिलने गया और यह यह पाया कि वे अपने पति के साथ मिलकर यह व्यवसाय चलाती थीं।

अवैतनिक काम मेरे लिए कोई बहुत अच्छा ऑफर तो बिलकुल न था, क्योंकि मैं तो पैसों की भारी जरूरत में था। किंतु एक आइ टी उद्योग में काम करने का अनुभव मेरे लिए कहीं दूसरी जगह के वैतनिक काम से अधिक मूल्यवान था। मैंने उनसे पूछा कि क्या मुझे सी ++ में कोडिंग करने का मौका मिलेगा, जो मेरे लिए सुपरिचित प्रोग्रामिंग भाषा थी, तो उन्होंने सकारात्मक उत्तर दिया। वे जिस प्रोग्रामिंग भाषा का इस्तेमाल करते थे, वह डेल्फी थी, जिसके विषय में मैंने पहले कभी नहीं सुना था। मैं इसमें काम करने को बहुत इच्छुक न था, क्योंकि डेल्फी में कोडिंग करनेवाले के लिए आगे बढ़ने के अवसर नहीं थे। फिर भी, तत्काल कोई भी अवसर मिलना ही मेरे लिए पर्याप्त था।

ए.डब्ल्यू.पी. ने मुझे चार सप्ताहों के कार्य अनुभव का प्रस्ताव दिया था। मैं पूरे समय, एचटीएमएल फाइलों को ‘कॉपी’ करते हुए उन्हें ‘रीनेम’ किया करता था। यह एक आसान, बहुत आसान काम था पर मैं एक आसान काम की खोज में न था। मैंने अपने जीवन में बहुत पहले ही यह समझ लिया था कि आप जितने कठिन काम को संभाल सकते हैं, पैसे भी उसी अनुपात में कमा सकते हैं। आप जितने ज्यादा तनाव से निबट सकते हैं, उतने ही ज्यादा पैसे पा सकते हैं। आसान कामों के लिए भुगतान भी सामान्य ही हो सकता है। पर, मेरे पास कोई विकल्प न था।

चौथे सप्ताह के आरंभ में, उस दंपत्ति ने मुझे एक चकित कर देने वाला समाचार दिया। ‘हम तुम्हारे काम से बहुत खुश हैं। हमें तुम्हारे साथ एक वर्ष का अनुबंध कर खुशी होगी।

अगले सप्ताह से आरंभ कर हम तुम्हें 15 डॉलर प्रति घंटे की दर से सप्ताह में चालीस घंटो के हिसाब से डॉलर का भुगतान करेंगे।'

मुझे अपने कानों पर विश्वास न हुआ। अंततः मुझे एक नौकरी का प्रस्ताव मिला। किसी को यह लगा कि मेरा कुछ मूल्य है। मैंने उन्हें उनके प्रस्ताव के लिए धन्यवाद दिया, हालांकि मैं पूरी तरह संतुष्ट नहीं था। इसका एक कारण तो यह था कि मैं कोडिंग का काम नहीं कर रहा था। मैं जो कुछ कर रहा था, उसे मुझसे काफी निचले स्तर का जानकार भी कर सकता था। दूसरा, मैंने अब तक अपने नियोक्ता को यह नहीं बताया था कि अपने छात्र वीजा पर मुझे प्रति सप्ताह केवल बीस घंटे के वैतनिक काम की अनुमति थी।

उस शाम, जब मैं अपने कॉलेज में पढ़ रहा था, तो हमारे प्रिंसिपल ने मुझे अपने ऑफिस में बुलाया। 'बधाई, अमित, हमने एक सॉफ्टवेयर कंपनी में तुम्हारे एक इंटरव्यू की व्यवस्था की है।'

'आपका बहुत धन्यवाद, रिचर्ड!'

'यह दो सप्ताहों का एक अवैतनिक कार्य अनुभव होगा। यदि उन्हें तुम्हारा काम पसंद आया, तो वे इसे दो सप्ताहों के लिए और भी बढ़ा देंगे।'

'जी, बहुत अच्छा!'

'तुम्हारा इंटरव्यू बुधवार को होगा।'

बुधवार को मैंने एडब्ल्यूपी को फोन कर अस्वस्थता के लिए अवकाश की सूचना दी। उन्होंने उसका बुरा नहीं माना। आखिरकार, मैं उनके लिए निःशुल्क काम कर रहा था। मैं अपने इंटरव्यू के लिए ट्रेडिंग टेक्नोलॉजी ऑस्ट्रेलिया (टीटीए) के ऑफिस में पहुंचा। यह शहर के केंद्रीय इलाके में स्थित एक छोटी फाइनेंशियल सॉफ्टवेयर कंपनी थी, जिसके निदेशक ग्रेगोरी रोस्टरों तथा जो मैसनो ने मेरा इंटरव्यू लिया। ग्रेग एक स्विस-जर्मन थे, जो काफी समय पूर्व ऑस्ट्रेलिया चले आए थे। जो मैसानो हालांकि इतालवी मूल के थे, किंतु उनका जन्म तथा पालन-पोषण ऑस्ट्रेलिया में ही हुआ था।

इंटरव्यू के बाद उन्होंने एक कंप्यूटर प्रोग्रामर की नौकरी का प्रस्ताव रखा। मैंने इस बात की पूरी पुष्टि कर ली कि मेरा कार्य अनुभव प्रोग्रामिंग में होगा। मैंने पूछा कि क्या मुझे सी++ में कोडिंग करने का मौका मिलेगा, तो उन्होंने कहा कि हमलोग सामान्यतः सी++ का ही इस्तेमाल करते हैं। हालांकि मुझे इस काम के पैसे नहीं मिलने जा रहे थे, पर मुझे एक साप्ताहिक रेलवे पास देने का वादा दिया गया।

अब मैं एक बड़ी दुविधा में पड़ गया था। एक तरफ मेरे सामने ए.डब्ल्यू.पी. द्वारा पूर्णकालिक काम का प्रस्ताव था और वे मुझे भुगतान करने को तैयार थे, किंतु उसमें विकास के अवसर अथवा कोई बौद्धिक चुनौती न थी। दूसरी ओर टीटीए मुझे केवल दो सप्ताहों के लिए एक अवैतनिक अवसर दे रही थी, जिसमें आगे के लिए कोई आश्वासन न था, किंतु यह काम प्रोग्रामिंग के उस क्षेत्र में था, जो मेरी रुचि तथा महत्वाकांक्षा के केंद्र में स्थित था। यदि मैं टीटीए को चुनता, तो संभव था कि मैं एक बार पुनः वहीं पहुंच जाता, जहां से मैंने शुरुआत की थी, यानी कंपनियों को फोन कर उनसे कार्यानुभव के लिए अनुरोध करना। ए.डब्ल्यू.पी.

के साथ, संभव था कि मैं एक वर्ष बाद भी फाइलें ही ‘कॉपी’ और ‘पेस्ट’ करता रहता। ‘अधिक से अधिक मेरे साथ बुरा क्या हो सकता है?’ मैंने स्वयं से पूछा।

अध्याय पांच

15 डॉलर से 2,50,000 डॉलर

मैंने सोमवार को ट्रेडिंग टेक्नोलॉजी ऑस्ट्रेलिया के ऑफिस में रिपोर्ट की। अपने डेवलपर्स की छोटी टीम से मेरा परिचय कराने के बाद जो ने मेरा पहला काम सौंपते हुए मुझे एक कांटेक्ट मैनेजमेंट सॉफ्टवेयर बनाने को कहा।

‘एक कांटेक्ट मैनेजमेंट सॉफ्टवेयर?’ मुझे थोड़ा अचरज हुआ, क्योंकि मैंने यह सोचा था कि मैं उनके फाइनेंशियल सॉफ्टवेयर पर काम करने जा रहा हूं।

‘हां, मुझे अपने संभावित तथा वर्तमान ग्राहकों की सूची के प्रबंधन के लिए एक एप्लीकेशन की जरूरत है।’

वे मुझे एक कंप्यूटर तक ले गए। ‘हमने इस मशीन पर वीबी लोड कर रखा है।’

‘वीबी?’

‘हां, क्या तुम विजुअल बेसिक नहीं जानते?’

मैंने अपने इंटरव्यू में यह साफ कर दिया था कि मैं केवल सी++ जानता हूं।

‘मैं जानता तो नहीं, पर सीख सकता हूं।’

मैं कंप्यूटर के स्क्रीन पर अपनी आंखें गड़ाए किंकर्तव्यविमूढ़ बैठा रहा। मेरा कंप्यूटर इंटरनेट से भी जुड़ा न था, जिसका यह मतलब था कि मैं वेब से अपनी सहायता के लिए किसी संदर्भ सामग्री का इस्तेमाल नहीं कर सकता था। मुझे यह मालूम था कि यदि मैं इसे कोड नहीं कर पाया, तो दो सप्ताहों से पहले नहीं तो उसके अंत में मुझे बाहर का रास्ता दिखा दिया जाएगा।

इसके विपरीत ए.डब्ल्यू.पी में अपना आसान सा काम अनायास ही मुझे याद आता रहा। किंतु अब तो मैं यहां आ चुका था और मुझे जल्द ही कोई समाधान ढूंढ़ निकालना था। इसबीच मेरे पैसे घटकर छह सौ डॉलर पर पहुंच चुके थे। लंच के समय मैं बाहर गया और विजुअल बेसिक पर एक पुस्तक खरीदी। चार दिनों बाद मैंने उन्हें अपने कांटेक्ट मैनेजमेंट सॉफ्टवेयर का पूर्ण संस्करण दिखाया।

‘यह तो अच्छा है, दोस्त,’ जो ने कहा। ‘फिर कैसे तुमने यह कहा कि तुम वीबी नहीं जानते?’

‘मैं सचमुच इसे नहीं जानता था।’

‘और तुमने इस पूरे सॉफ्टवेयर को चार दिनों में बना डाला?’

‘जाहिर है।’

‘मैंने सुन रखा था कि भारतीय अच्छे प्रोग्रामर हुआ करते हैं। चार दिन! आश्चर्य की बात है।’

‘धन्यवाद, जो। मुझे इसमें अब भी कई सुधार करने है। यह तो पहला ही संस्करण है।’

‘आगे बढ़ो, दोस्त।’

उन्होंने ग्रेग की ओर देखा, अपनी चार उंगलियां उठाईं और कहा, ‘चार दिन!’’

अगले गुरुवार को उन्होंने मेरा कार्यानुभव दो सप्ताह के लिए और बढ़ा दिया। तीसरे सप्ताह तक जो और ग्रेग को मुझ पर इतना विश्वास हो चला था कि उन्होंने मुझे अपने मुख्य प्रोडक्ट, रिंगर, की जिम्मेदारी सौंप दी। रिंगर एक अत्यंत जटिल तथा उन्नत किस्म का सॉफ्टवेयर था, जो बांड्स, फोरेक्स तथा ऑप्शन्स के व्यवसायियों को बाजार की गति के आधार पर खरीद-बिक्री करने की सुविधा प्रदान करता था। डेवलपर्स की एक छोटी सी टीम के साथ, मेरा काम सॉफ्टवेयर का रख-रखाव करना था। वहां मेरे महीने की समाप्ति के साथ ही उन्होंने मुझे 15 डॉलर प्रति घंटे की दर से, मेरे छात्र वीजा के प्रावधानों के अनुसार, सप्ताह में बीस घंटों के लिए एक स्थायी अंशकालिक नौकरी की पेशकश की।

मैं अपने वीजा का उल्लंघन किए बगैर बीस घंटे से ज्यादा काम करना चाहता था। मैंने जोइ तथा ग्रेग से संपर्क किया।

‘मुझे अपने बीस घंटों के लिए ही भुगतान चाहिए, पर वस्तुतः मैं ज्यादा सीखना चाहूंगा। इसलिए क्या मैं यहां प्रति सप्ताह चालीस घंटे अथवा उससे भी ज्यादा काम कर सकता हूं? अभी मेरे घर पर मेरा अपना कंप्यूटर नहीं है।’

‘ठीक है। हम लोग तुम्हें अपने ऑफिस की चाबी दे देंगे, ताकि ताकि तुम चाहो, तो देर से भी ऑफिस छोड़ सको।’

मुझे और कठिन परिश्रम करना था, ज्यादा तेजी से सीखना था और अधिक कमाना था, क्योंकि यही एकमात्र रास्ता था, जिससे मैं एक दिन विश्वविद्यालय की पढ़ाई पूरी करने का अपना सपना पूरा कर सकता था। मैं जानता था कि यह मेरे लिए एक दिवास्वप्न जैसा था, क्योंकि यह मेरी क्षमता के बाहर की बात थी। मेरी वर्तमान चिंता तो मेरे कॉलेज की फीस थी, जिसकी अगली किस्त-5000 डॉलर-मुझे सात महीने बाद देनी थी और अब तक इसका कोई अता-पता न था कि किस तरह मैं इतनी राशि की बचत करने जा रहा हूं। मैं अभी ही उतनी कड़ी मेहनत कर रहा था, जितनी मेरे लिए उचित कही जा सकती थी।

सामान्यतः मेरे दिन की शुरुआत 5 बजे प्रातः हो जाती, ताकि मैं हर किसी के उठने से पहले स्नान कर लूं। इसे बाद के लिए टालने पर बाकी लोगों को बाधा पहुंचती, क्योंकि अरुण भैया के घर में केवल एक ही बाथरूम था। जब एक बार मैं तैयार हो जाता, तो ब्रेड

की दो स्लाइसों के साथ एक कप चाय लेता और अपना लंच पैक कर लेता। सामान्यतः इसमें वही चीजें होतीं, जिन्हें मैंने पिछले दिन रात के भोजन से ही बचा ली होती; अथवा यह ब्रेड की चार और स्लाइसों के साथ जैम होता।

प्रायः मैं 6 बजे घर से निकल जाता और पैदल चलकर 2 किमी दूर स्टेशन पहुंचता। यह एक पहाड़ी इलाका था और मुझे यह दूरी तय करने में अपनी तेज चाल से भी पूरे अठारह मिनट लग जाते। कभी-कभी जब अंजु भाभी को थोड़ा जल्दी निकलना होता अथवा मैं देर से निकल रहा होता, तो वे मुझे स्टेशन तक छोड़ देतीं। ट्रेन से शहर पहुंचने में 45 मिनट लगते और फिर 15 मिनट पैदल चलने के बाद मैं टीटीए ऑफिस पहुंचता। 7.30 में मैं काम शुरू कर देता और 5 बजे के बाद तक कोड करने का कार्य करता रहता।

अपने ऑफिस से मुझे अपने कॉलेज पहुंचने में ट्रेन से 20 मिनट लगते, जहां मैं 9 बजे तक पढ़ता। जब तक मैं घर पहुंचता, रात के 11 बज चुके होते। घर में चुपचाप प्रवेश करने के बाद, क्योंकि तब तक प्रत्येक व्यक्ति सो चुका होता, मैं तरोताजा होता और कपड़े बदलता। कभी-कभी स्नान करने की इच्छा होती, किंतु मैं इसे दबा दिया करता था, क्योंकि इसकी आवाज सभी व्यक्तियों को जगा सकती थी। कभी-कभी तो मैं रात में शौचालय का इस्तेमाल भी टाल जाता, क्योंकि फ्लश करने की आवाज काफी शोर मचाती थी।

भाभी मेरे लिए रात का खाना रख दिया करती थी। प्रायः मैं भोजन के प्लेट को माइक्रोवेव में रख गरम कर लेता था। कई बार तो मैं ठंडा खाना ही खा लेता, क्योंकि रात में माइक्रोवेव को ऑन करने से भी शोर होता था। भाभी और भैया की दिनचर्या अत्यंत व्यस्त रहती थी और उसके बाद उनकी छोटी बच्चियां भी थीं। इसलिए मैं किसी भी तरह उनकी नींद में खलल नहीं डालना चाहता था। मैं उनकी भलमनसाहत का बदला अपने किसी अविवेकी कदम से चुकाना नहीं चाहता था। कभी जब मैं जल्दी घर पहुंचता, तो पाता कि वे दोनों टीवी पर 'लॉ ऐंड ऑर्डर' देख रहे होते थे और तब भाभी स्वयं मुझे खाना गरम कर दिया करतीं।

जब तक मैं रात का खाना खत्म करता, प्रायः आधी रात हो चुकी होती। तब मैं अपना सोफाबेड तैयार करता और दो घंटे पढ़ने के बाद सो जाता। कभी-कभी मेरे पढ़ते वक्त भैया मेरे रूम में आ जाते और एक बड़े भाई के प्यार भरे स्वर में मुझे थोड़ी नींद ले लेने को कहते। इसमें कोई भी शक नहीं था कि दोनों मुझसे गहराई से प्यार करते थे। उन्होंने मुझसे कोई भी किराया नहीं लिया और न ही मुझे किराना सामग्रियों अथवा पानी-बिजली-फोन इत्यादि के शुल्क देने दिए। मैं हमेशा सप्ताहांत के उनके भ्रमण कार्यक्रम का हिस्सा हुआ करता था और उन्होंने कभी मेरे व्यक्तिगत क्षेत्र में दखल नहीं दिया। भैया हमेशा मुझे उत्साहित करते रहे और भाभी मुझे सहारा देती रहीं।

मैं पिछले पांच महीनों से भैया-भाभी के घर में रह रहा था। अब चूंकि मैं पैसे कमा रहा था, इसलिए अपने आवास की व्यवस्था करने का समय हो गया था। मैं कहीं भी केवल साझे

आधार की ही जगह ले सकता था, क्योंकि अभी मेरी आय इतनी अधिक न थी कि मैं कोई स्वतंत्र जगह ले पाता। दिसंबर के पहले सप्ताह में मैंने स्थानीय अखबारों में एक विज्ञापन देखा, जिसके द्वारा मेरे कॉलेज के निकट ही रहनेवाले एक व्यक्ति ने अपने फ्लैट के लिए एक साझेदार की तलाश की थी। यह क्रोशियन मूल का एक ऑस्ट्रेलियाई व्यक्ति था और जब मैंने उसे फोन किया, तो उसने अपना नाम एंथोनी बताया। उसने बताया कि मुझे 100 डॉलर प्रति सप्ताह के साथ अन्य उपयोगी चीजों के शुल्क वास्तविक आधार पर देने होंगे। मैंने इसे स्वीकार करने में एक पल की भी देर न की।

अब, जब मैं अपने कॉलेज से बस कुछ ही ब्लॉक की दूरी पर रहने लगा, तो जीवन मेरे लिए थोड़ा आसान हो गया। यहां से मुझे केवल अपने कार्यस्थल जाने में बीस मिनटों की ट्रेन यात्रा करनी थी और इस तरह आने-जाने में रोजाना दो घंटों की बचत हुई। इससे मुझे पढ़ने के अलावा कभी-कभी आराम करने और सपने देखने के लिए ज्यादा समय मिलने लगा। चूंकि इसमें मेरे लिए एक अलग कमरा था, इसलिए मैं ध्यान का कार्यक्रम भी फिर से शुरू कर सका।

एंथोनी और मैं ज्यादा बातें नहीं करते। निर्माण उद्योग में काम करने की वजह से वह सुबह-सुबह निकल जाता और दोपहर के मध्य में वापस लौटता। मैं निर्माण उद्योग के विषय में कुछ नहीं जानता था और वह कंप्यूटरों के बारे में बिलकुल अनजान था। मैं एक श्रद्धावान हिंदू था और वह एक भावुक इसाई। मैं क्रोशियाई संस्कृति से अपरिचित था और ऑस्ट्रेलियाई संस्कृति के विषय में बहुत थोड़ी जानकारी रखता था, जबकि एंथोनी भारत के बारे में एकदम अनजान था। किंतु हम दोनों में एक चीज मिलती-जुलती थी और वह यह कि हम दोनों ही चुप रहनेवाले थे। यह हमारे मानवीय बंधन मजबूत करने को पर्याप्त था, क्योंकि अपनी चुप्पी से हमने एक दूसरे को स्वीकार किया और एक दूसरे के व्यक्तिगत अवकाश के लिए सम्मान की भावना रखी। तब अचानक हम अच्छे दोस्त बन गए, जब मैंने उसे एक सेकेंडहैंड कंप्यूटर खरीदने में मदद की।

इस फ्लैट में मेरे आने के दो महीने बाद, एक अलसाए से सप्ताहांत में उसने एल्विस प्रेस्ली नामक व्यक्ति के बारे में मुझसे बातें आरंभ कीं। शायद वह कोई रॉकस्टार था, किंतु मुझे उसके विषय में कोई जानकारी न थी।

‘क्या? तुमने कभी एल्विस के विषय में नहीं सुना?’ अपना प्रश्न समाप्त करने के बाद उसने अपना मुंह बंद नहीं किया।

‘नहीं।’

‘तुम मजाक कर रहे हो।’

‘नहीं।’

‘दोस्त! तुम इस पृथ्वी पर ऐसे पहले व्यक्ति होगे, जिसने एल्विस के बारे में नहीं सुना है।

‘हो सकता है!’

वह अपना सिर पीछे कर ठहाके लगाने लगा। उसी दिन, बाद में भारत में अपने बड़े भाई से मेरी बातें हुईं और मैंने उन्हें इस छोटी सी घटना के बारे में बताया।

‘उससे पूछो कि क्या उसने लता मंगेशकर के विषय में सुना है,’ उन्होंने कहा। ‘उसे बताओ कि उनके पास सबसे ज्यादा गाने रिकॉर्ड कराने का गिनीज़ विश्व रिकॉर्ड है। 26,000 से ऊपर!’

हम दोनों फोन पर खूब हंसे। चाहे जो भी मुद्दा हो, मुझे मेरे भैया, राजन, का बिना शर्त समर्थन हासिल रहता।

ऑस्ट्रेलिया में बने रहने के लिए मुझे ठहाकों और आराम से बढ़कर पैसों की जरूरत थी। अपने काम से मैं, टैक्स काट कर, 254 डॉलर प्रति सप्ताह कमा रहा था। फ्लैट का किराया, अन्य उपयोगी चीजों के शुल्क, ट्रेन पास और किराना दुकान के खर्चे चुकाने के बाद मेरे पास लगभग 50 डॉलर प्रति सप्ताह की बचत होती। फिर भी सप्ताह में एक बार, शुक्रवार को, मैं अपनी दावत का आनंद उठाता। सुबह मैं एक कैपेचीनो खरीदता, जो मेरा पसंदीदा पेय था। दोपहर में संतरे का रस पीता और शाम में हंग्री जैक्स नामक एक फास्ट फूड चेन में शाकाहारी भोजन करता, जिसमें शाकाहारी बर्गर, फ्रेंच फ्राइज और एक सॉफ्टड्रिंक शामिल होता।

मेरी दावत में तीन लोग हुआ करतेः मैं, मैं और स्वयं मैं। कभी चार नहीं, न चार, न दो! दूसरे दोस्तों, लड़कियों और सामाजिकता के लिए न तो वक्त था और ना ही कोई विचार। हर सप्ताह मैं एक नई पुस्तक भी खरीदता। मैंने यह महसूस कर लिया था कि यदि मैं प्रति सप्ताह 50 डॉलर भी बचा सकूं, तो इससे मैं अपने कॉलेज की फीस नहीं चुका पाऊंगा। इसलिए पुस्तकों में निवेश कर अपनी जानकारी का आधार बढ़ाना मुझे अपने बैंक बैलेंस बढ़ाने से अधिक अच्छा विकल्प महसूस हुआ।

हालांकि मैंने इसके विषय में उससे कभी बातें न कीं, किंतु ग्रेग की सहजबुद्धि को उन चिंताओं और चुनौतियों की भनक लग गई थी, मैं जिनसे मुखातिब था। उन्होंने एक बार अपनी पत्नी और दो बेटों के साथ लंच लेने के लिए मुझे अपने घर आमंत्रित किया। उनकी पत्नी, लिंडा, एक स्नेहभरी महिला थीं और उन्होंने मेरे लिए दाल बनाने की तकलीफ उठाई, क्योंकि उन्हें यह पता था कि मैं शाकाहारी हूं। ग्रेग ने मेरे प्रति भलमनसाहत दिखाते हुए यह सलाह दी कि मैं किराया बचाने की खातिर उनके घर में रह जाऊं। उनकी इस उदारता ने मुझे छू लिया। निःशुल्क आवास से मुझे बचत करने में वस्तुतः काफी मदद मिलती, किंतु मैं हमेशा से एक निजी व्यक्ति रहा हूं और अपने शांत अपार्टमेंट में मुझे अपनी निजता अत्यंत प्रिय थी।

इसके अलावा, कहीं निःशुल्क रहना वैसे भी कोई दीर्घकालिक समाधान नहीं था। मेरे लिए ज्यादा पैसे कमाना अधिक जरूरी था। मैंने लगातार ज्यादा से ज्यादा पुस्तकें पढ़ते हुए और नई तकनीकें सीखते हुए अपनी कुशलता बढ़ाना जारी रखा। दिन-रात सॉफ्टवेयर कोडिंग में बिता दिये। जब मैं कोडिंग अथवा अध्ययन नहीं कर रहा होता, तो ध्यान करता। आप मुझे आधी रात में भी उठाकर मुझसे प्रोग्रामिंग करने की एक भाषा की विशेषताएं पूछ सकते थे और मैंने आपको उसका सही उत्तर दिया होता। यदि आप मुझे एक त्रुटिपूर्ण सॉफ्टवेयर देते, तो मैंने इसे केवल देखकर बगैर उसे चलाए ही आपको उसकी त्रुटि बता

देता। यह बहुत कुछ प्रोग्रामिंग की अंतर्दृष्टि विकसित कर लेने जैसी बात थी। मैं एक ट्यूटर रखने की लागत नहीं उठा सकता था, प्रोग्रामिंग में मेरा कोई भी 'मार्गदर्शक' नहीं था और मेरे कॉलेज के प्राध्यापक मेरी आवश्यकता के स्तर से बहुत बुनियादी स्तर पर थे। सच तो यह है कि मुझे अपनी प्रोग्रामिंग में मदद के लिए ईश्वर की सहायता की जरूरत थी, पर वह तो एक विडंबनापूर्ण संसार की अराजकता संभालने में व्यस्त था। इसलिए मुझे अपनी स्वयं की कुशलता तथा पुस्तकों पर ही निर्भर रहना था।

और ज्यादा योग्यता हासिल करने की अपनी कोशिश के क्रम में मैंने सिस्टम्स इंजीनियरिंग में माइक्रोसॉफ्ट का प्रमाणपत्र प्राप्त करने का निर्णय लिया, और इसके लिए जरूरी अध्ययन करने हेतु पुस्तकों का एक सेट खरीदा। 'मैनपावर' नामक एक रिक्रूटमेंट कंपनी उम्मीदवारों को इसकी अनुमति देती थी कि वे उसके परिसर में जाकर ऑनलाइन टेस्ट दे सकें। जिस दिन मैं वहां गया, दो कमाल के व्यक्तियों से मेरी मुलाकात हुई, जो थे किएरन होथोर्न और डेविड सू। किएरन ऑस्ट्रेलियाई थे, जबकि डेविड चीनी मूल के थे, मगर उनका जन्म तथा पालन-पोषण ऑस्ट्रेलिया में ही हुआ था।

जब हमने कुछ देर तक बातें कीं, तो किएरन ने यह कहकर मुझे चौंका दिया कि वे अपने ग्राहकों के साथ संभावित काम के अवसरों के लिए मेरा इंटरव्यू लेना चाहते हैं। हम वहां के कई मीटिंग कमरों में से एक में बातें करने बैठ गए।

'तुम और कौन सी प्रोग्रामिंग भाषा जानते हो?' उन्होंने पूछा।

उनके प्रश्न का उत्तर देने के बजाए मैंने उनसे कहा, किएरन, आप जल्द ही मैनपावर छोड़ कर खुद की एक कंपनी शुरू करेंगे।'

'क्या कहा?'

'हां। और मैं वह पहला उम्मीदवार होऊंगा, जिसे आप अपने किसी ग्राहक के यहां काम दिलाएंगे।'

उन्होंने तेजी से दरवाजा बंद किया और धीमी आवाज में फुसफुसाए, 'तुम कैसे जानते हो? क्या तुम किसी की सोच को पढ़ने की योग्यता रखते हो? मैंने पिछले ही सप्ताह इसे छोड़ने के बारे में सोचना शुरू किया।'

'जब मेरी अंतर्दृष्टि बोलती है, तो मैं उसे सुनता हूं। मैं अपने अंतर की आवाज सुनता हूं, किएरन, और इसने मुझे वही बताया, जिसे मैंने तुम्हें अभी-अभी कहा।'

'क्या मैं अपने व्यवसाय में सफलता प्राप्त करूंगा?'

'हां। मुझे इसमें कोई संदेह नहीं है।'

चार सप्ताह बाद किएरन ने मुझे अपने रिक्रूटमेंट फर्म से फोन किया। उन्होंने कहा, 'प्योर कॉमर्स ऑस्ट्रेलियाई टेक्नोलॉजी पार्क में स्थित एक नई फर्म है। उन्हें एक वेब प्रोग्रामर की आवश्यकता है।' इसका सीईओ छब्बीस वर्षीय डेनियल लावेकी नामक व्यक्ति था। किएरन ने उससे मेरा संपर्क करा दिया।

डेनियल ने दो सप्ताहों में मेरा तीन बार इंटरव्यू लिया और उनमें से हर एक में मुझे गहराई से कुरेदा। हमारी एक बार की बातचीत के दौरान मैंने उससे पूछ लिया कि आपकी

कंपनी कितनी बड़ी है। मुझे सीधा जवाब दिए बगैर उन्होंने बताया कि उसमें बहुत सारे हितभागी (स्टेकहोल्डर्स) और ठेकेदार थे। इंटरव्यू संपन्न हो जाने के बाद मुझे यह बताया गया कि जल्दी ही कोई मुझसे संपर्क करेगा।

यह एक गुरुवार था और जब मेरे फोन की घंटी बजी, तो मैं टीटीए में काम कर रहा था।

'बधाई! तुम्हें यह काम मिल गया,' किएरन ने कहा।

मेरा दिल धड़क उठा।

'मुझे कितना...?'

40,000 डॉलर का पैकेज।'

अब जाकर गाड़ी पटरी पर आई। लगता है, विश्वविद्यालय की पढ़ाई संभव हो सकेगी।

'काम करना कब से शुरू करूं?'

'डेनियल यह चाहता है कि जितनी जल्दी हो सके, तुम काम शुरू कर दो। सोमवार से।'

'किंतु मुझे यहां दो सप्ताहों की नोटिस देनी होगी।'

'मेरी तो पक्की सलाह होगी कि सोमवार को शुरू कर दो, क्योंकि हमें इस अवसर को हाथ से निकलने नहीं देना चाहिए। मैंने तुम्हारे वीजा की स्थिति के बारे में भी बात की है और डेनियल ने बताया कि वह अनुबंध को उसी के अनुसार तैयार करा लेगा। मुझे इसमें संदेह है कि हमें ऐसा अवसर फिर दोबारा मिल सकेगा।'

यह सच था। मैं यह अवसर चूकना नहीं चाहता था। प्योर कॉमर्स को पेमेंट गेटवे सिस्टम्स तैयार करने में विशेषज्ञता हासिल थी और यह ऑस्ट्रेलिया की पहली कंपनी थी, जो कई मुद्राओं में भुगतान की प्रक्रिया ऑनलाइन संपन्न किया करती थी।

इस कॉल के तुरंत बाद मैंने ग्रेग और जो को यह खबर सुनाई और उनसे कहा कि मैं उनकी कंपनी छोड़ रहा हूं। ग्रेग मुझे मीटिंग के कमरे में ले गया और उसने दरवाजे को सामान्य से कुछ अधिक जोर से बंद किया।

'अब मुझे बताओ,' उसके चेहरे का भाव सामान्य था। 'क्या बात है?'

'मैं टीटीए छोड़ना चाहता हूं।'

'किंतु मैंने तो तुम्हें अपने घर में निःशुल्क रहने का ऑफर भी दिया था!'

'मैं जानता हूं, ग्रेग। मुझे अफसोस है। परंतु मुझे जाना ही पड़ेगा, क्योंकि मुझे विश्वविद्यालय की पढ़ाई के लिए पैसे की जरूरत है।'

थोड़ी और बातचीत के पश्चात, जिसमें उन्होंने मुझे यहीं रुकने के लिए मनाने की कोशिश की, हम एकाएक नोटिस की अवधि के मुद्दे पर आ गए।

'चलो ठीक है, थोड़ा सोचो और हमें सोमवार को अपने निर्णय से अवगत कराओ।'

'दरअसल, मैं सोमवार को काम पर नहीं आऊंगा।'

'क्या? तुम्हें दो सप्ताहों की नोटिस भी तो देनी है।'

'मुझे अफसोस है, ग्रेग, मैं वैसा नहीं कर सकता, क्योंकि मेरा नया नियोक्ता यह चाहता है कि मैं सोमवार से अपना काम आरंभ कर दूं। आप चिंता न करें, मैंने यहां अपना कोड पूरी तरह लिख लिया है।'

'यह तो पागलपन होगा।' अब उनकी आवाज थोड़ी ऊंची थी। मैंने महसूस किया कि वे दुखी होने से अधिक क्रोधित थे।

'मुझे खेद है।'

'थोड़ा अच्छी तरह विचार करो, दोस्त,' जब हमने मीटिंग समाप्त की, तो ग्रेग ने रुखाई से कहा।

यह अप्रैल 1999 था और मैंने टीटीए में छह महीने से ज्यादा काम कर लिया था। मैं उस दोपहर वहां से निकल गया और फिर उसके बाद सोमवार को वहां काम करने नहीं गया। एक अनुभवहीन व्यक्ति होने की वजह से मैंने ग्रेग और जो से अपने संबंधों को ज्यादा महत्व नही दिया। इससे भी बूरी बात यह थी की, कही भी अपना काम छोड़ने का यह कोई तरीका नहीं था, पर मैं नौकरी का यह नया अवसर गंवाने को तैयार न था। मेरी पढ़ाई के लिए पैसे ज्यादा जरूरी थे। फिर भी इतने गैरपेशेवर और अकृतज्ञ तरीके से उन्हें छोड़ना एक भूल थी। एक नैतिक भूल। पेशागत रूप में, मैंने अपने समुचित हिस्से से अधिक काम कर दिया था, क्योंकि मुझे केवल बीस घंटे की मेहनत के पैसे दिए जा रहे थे, जबकि मैं उसके दोगुने घंटे काम कर रहा था। किंतु व्यक्तिगत रूप से, मैं ग्रेग की भलमनसाहत का बदला चुकाने में पूरी तरह विफल रहा था। मुझे ग्रेग और जो से माफी मांगनी थी, जो मैं कभी नहीं कर सका।

मैंने प्योर कॉमर्स में अपना काम काफी उत्साह से आरंभ किया। मेरे अलावा वहां केवल एक ही और व्यक्ति था, और वह खुद डेनियल था। मैंने अन्य कर्मियों के बारे में पता किया, परंतु और कोई था ही नहीं। मैं उनका पहला और अकेला कर्मी था और वहां मेरे रहने के अंतिम दिन तक यही स्थिति बनी रही। मैं इससे परेशान नहीं था। मुझे एक अच्छा वेतन दिया जा रहा था और यह काम रुचिकर था। मेरी मेज पर मेरा एक व्यक्तिगत फोन था और मेरे कंप्यूटर में इंटरनेट भी लगा था।

जब मैं प्योर कॉमर्स में काम कर रहां था, तो मैंने अपने दो साल के डिप्लोमा को, तेज गति से, एक वर्ष में ही समाप्त कर देने का भी उपाय कर लिया। किंतु यह डिप्लोमा केवल मील का एक पत्थर था, यह मेरा लक्ष्य नहीं था। मैंने जिस पाठ्याक्रम के लिए इतना संघर्ष किया था, उसे समाप्त करने के बाद यह महसूस किया कि पिछले एक साल में मैं ज्यादा कुछ नहीं सीख सका। इसके बजाए मेरे कार्य अनुभव ने मुझे कहीं अधिक ज्ञान दिया। यदि मुझे इसकी आजादी होती, तो मैं इस पाठ्याक्रम से बाहर निकल गया होता, मगर इसकी कोई संभावना न थी, क्योंकि यह मेरे छात्र वीजा का उल्लंघन माना जाता, जिसके लिए मुझे ऑस्ट्रेलिया से निकाला भी जा सकता था। मेरा दिल तो विश्वविद्यालय की शिक्षा पर जमा हुआ था और मैं एक समुचित डिग्री, कम से कम एक स्नातक डिग्री, हासिल करने का इच्छुक था। किंतु इसके साथ ही इस डिग्री के लिए और तीन साल देने को भी मैं तैयार न था। मैं जितनी जल्दी संभव हो सके, प्राप्त कर इसे अपने रास्ते से हटा देना चाहता था, ताकि मैं अपने करियर पर एकाग्र हो सकूं।

इस बीच मेरे डिप्लोमा के साथ एक छोटी सी समस्या थी। मुझे अच्छे अंक मिले थे और मैं डिप्लोमा हासिल करने के योग्य था, पर मुझे यह पता चला कि यदि मैं अपना प्रमाणपत्र

प्राप्त करना चाहता था, तो मुझे दूसरे साल की भी पूरी फीस देनी होगी। हालांकि यह अनुचित नहीं था, पर मेरे पास इसके लिए 5000 डॉलर की राशि नहीं थी। मैंने आशा न छोड़ी और अपना ट्रांसक्रिप्ट लेकर वेस्टर्न सिडनी विश्वविद्यालय के कोर्स कोऑर्डिनेटर से मिलने गया। उन्होंने मेरे आवेदन को देखा, मेरे ट्रांसक्रिप्ट और बायोडाटा पर गौर किया और मेरे सॉफ्टवेयर कोडिंग के नमूने का प्रिंट देखा, सभी मेरे आवेदन के साथ सफाई से नत्थी थे।

'तुम यूडब्ल्यूएस में क्यों पढ़ना चाहते हो?' उन्होंने पूछा।

'क्योंकि यह यहां के सर्वोत्तम विश्वविद्यालयों में से एक है और यहां बस उसी पाठ्याक्रम की पढ़ाई होती है, जिसे मैं पढ़ना चाहता हूं।'

'पर तुम तो इस उद्योग में अभी ही काम कर रहे हो।'

'हां, मि. होसी, किंतु मैं सॉफ्टवेयर मॉडलिंग तथा बिजनस सिस्टम्स के विषय में और अधिक जानना चाहता हूं।'

उन्होंने लगभग पंद्रह मिनट तक मेरा इंटरव्यू लिया और अंततः मेरे आवेदन पर लिखा, 'प्रथम वर्ष के मूल विषयों से विमुक्त।'

'मैंने तुम्हें अधिकतम संभव छूट दे दी। यूडब्ल्यूएस में तुम्हारा स्वागत है,' उन्होंने कहा।

मि. होसी ने ट्यूशन फीस किश्तों में देने के मेरे अनुरोध को भी स्वीकार कर लिया। आखिरकार, बिजनस कॉलेज में मेरी कोशिशें बेकार नहीं गईं। न केवल मैंने अपने तीनवर्षीय डिग्री का एक वर्ष बचा लिया, बल्कि केवल ट्यूशन फीस के भी 14,000 डॉलर भी बचा लिए। मैंने एंथोनी का फ्लैट छोड़कर पैरामैटा नामक उपनगरीय इलाके में अपना एक अलग फ्लैट ले लिया, क्योंकि यह विश्वविद्यालय से निकट था। अचानक मुझे ऐसा लगा जैसे जीवन समस्यारहित हो गया हो। सभी चीजें सही हो गईं।

अपनी रोजाना ट्रेन यात्रा के दौरान मैंने प्रकाशन के लिए आलेख लिखने शुरू कर दिए, ताकि मैं अपने समय का बेहतर इस्तेमाल कर सकूं। ये आलेख ज्यादातर तकनीकी जर्नल तथा पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ थे, जो अमेरिका से निकलती थीं। हर आलेख के लिए मुझे 500 डॉलर मिला करते। किंतु दो महीने के बाद मैंने समय की कमी से ये आलेख लिखने बंद कर दिए। आपको कोई विचार सोचना था, आलेख लिखना था और कंप्यूटर कोड के नमूने देने थे। इनमें से कुछ भी कठिन न था। पर इनमें समय लगता था, जो मेरे पास अधिक न था। इसके बदले ट्रेनयात्रा के इस वक्त का इस्तेमाल विश्वविद्यालय के अपने 'असाइनमेंट' पूरे करने में लगाने लगा।

उधर प्योर कॉमर्स में मेरे काम और मेरे द्वारा विकसित एप्लीकेशनों से आती आय से खुश होकर डेनियल ने मेरे लिए चार महीनों में 30,000 डॉलर की बढ़ोतरी की। हालांकि मेरे लिए यह बहुत उत्साहजनक थी, मगर मैं अब इस कंपनी में बने रहने के लिए उत्साहित न था, जिसके दो प्राथमिक कारण थे। पहला, यहां अकेला कर्मी होने की वजह से टीम के साथियों से सलाह-मशविरे जैसी कोई चीज न थी, कोई भी किसी विचार पर अपनी राय देन वाला नहीं था। इससे मेरी प्रतियोगिता की भावना को हानि पहुंच रही थी, क्योंकि मुझसे स्पर्धा करने वाला कोई न था।

दूसरा, मैंने यहां मूल सॉफ्टवेयर का निर्माण कर लिया था। यह एक ऐसे आम की तरह था, जिसे मैंने पूरी तरह चूस लिया था और अब उसमें जरा भी रस नहीं बचा था। सिस्टम्स का रख-रखाव मेरे लिए कोई चुनौती जैसी चीज न था। मैं निर्माण करना चाहता था, क्योंकि निर्माण ही असल काम था। सॉफ्टवेयर विकसित करनेवाले द्वारा उसके रख-रखाव के काम को देखना कुछ वैसा ही है, जैसा एक विश्वस्तरीय इमारत खड़ी करने के बाद उसके वास्तुविद् द्वारा उसी इमारत में चपरासी की भूमिका में आ जाना।

अब इसके बाद क्या? मैं इससे ज्यादा बड़े और कहीं अधिक जटिल सिस्टम पर काम करने, इससे गहरी तथा बड़ी समस्याएं सुलझाने को बेकरार था। मुझे कोडिंग में आनंद आता, क्योंकि यह मुझे ध्यान की ही तरह पूरी तन्मयता की अनुभूति कराता। जब मैं प्योर कॉमर्स छोड़ने की सोच रहा था, मैनपावर से डेविड सू ने मुझे फोन किया। यह कुछ उसी तरह था, मानों ब्रह्मांड मेरी बात सुन रहा था और उसने कहा, 'एवमस्तु।'

हमने कॉफी पीते हुए बातें कीं। उसने कहा, 'तुम्हारी तरह के व्यक्ति को किसी बड़े कॉरपोरेशन के लिए काम करना चाहिए।'

'पर मुझे कौन रखेगा?' मैंने पूछा।

'तुम ऐसा क्यों कहते हो?'

मैं डेविड से खुलकर अपने वीजा पर काम करने के प्रतिबंध की जानकारी दी। चाहे मैं कितना भी कुशल क्यों न होऊं, कोई भी पब्लिक लिमिटेड कंपनी यह जोखिम नहीं लेगी। किंतु डेविड के विचार कुछ दूसरे ही थे। उन्होंने एक बड़ी कंपनी के साथ एक अवसर के विषय में बताया, जो मेरे लिए कुछ विशेष करने को तैयार थी।

'पर वीजा के मामले का क्या किया जाएगा?'

'उसे मुझ पर छोड़ दो।'

'एक दूसरी समस्या भी है, डेविड।'

उसकी प्रतिक्रिया के लिए रुकने के पहले ही मैंने उसे बताया कि विश्वविद्यालय के अगले सत्र में दो ऐसे विषय थे, जिनकी पढ़ाई सप्ताह के किसी विशेष दिन ही होती थी। इसका मतलब होगा कि मुझे हर सप्ताह एक दिन की छुट्टी लेनी होगी।

'चिंता मत करो, हम लोग इसे सुलझा लेंगे।'

'क्या सचमुच?'

'हां,' उसने कहा। बस इंटरव्यू के समय इनमें से कोई भी समस्या क्लायंट को मत बताओ। इन्हें मैं सुलझाऊंगा।'

तीन दिनों बाद, मुझे न्यूज इंटरैक्टिव के साथ एक इंटरव्यू के लिए बुलाया गया, जो एक बड़े मीडिया घराने, न्यूज कॉरपोरेशन का एक प्रभाग था। इंटरव्यू की एक पूरी श्रृंखला के बाद डेविड ने कड़ी सौदेबाजी की।

'मेरे पास तुम्हारे लिए कुछ अच्छी खबर है, अमित,' उसने फोन पर कहा।

'बोलते जाओ!' मैं अत्यंत उत्साहित था।

'नहीं। हम लोग आज काम के बाद डिनर पर मिलें।'

काम के बाद मैं सीधा डार्लिंग हार्बर गया, जहां के एक शानदार भारतीय रेस्तरां, जाफरान, में हम अपनी पसंदीदा मेज पर बैठे।

‘अनुमान लगाओ, क्या होगा?’ डेविड ने अपने आदतन अंदाज में पूछा। ‘हमने वह पैकेज हासिल कर लिया है, जिसे हमने लक्ष्य किया था। साथ में न्यूज कॉरपोरेशन से वीजा स्पांसरशिप भी। इसके अतिरिक्त वे तुम्हें डिग्री की अपनी पढ़ाई पूरी करने तक प्रतिसप्ताह एक दिन की छुट्टी भी देंगे और विश्वविद्यालय के तुम्हारे खर्चे भी उठाएंगे।’

मैं भावुक हो उठा और मेरी आंखें भींग गईं।

‘और मैं मजाक नहीं कर रहा हूं, अमित,’ डेविड ने आगे कहा, ‘यह सिर्फ शुरुआत है, तुम्हारी तकनीकी योग्यता विलक्षण है।’

मैं अपनी उपलब्धियों पर बगैर संतुष्ट हुए बेहतर से भी बेहतर करते जाना चाहता था। मैं डेविड को अपनी निष्ठा का वचन देना चाहता था और उन्हें तथा अपने नियोक्ता को गर्व की अनुभूति कराना चाहता था कि उन्होंने मुझे चुनकर सही निर्णय लिया। किंतु मैं न्यूजकॉर्प से यह स्पॉन्सरशिप नहीं लेना चाहता था, क्योंकि इसके साथ यह शर्त बंधी थी कि मैं उनके लिए कम से कम चार वर्षों तक काम करूंगा। मैंने कभी भी बंधना पसंद नहीं किया। मैंने डेविड को इस बाबत बताया और उन्होंने कहा कि वे अनुबंध में उचित संशोधन करा लेंगे।

‘जब तक तुम इस व्यवसाय में हो, डेविड, और जब तक मैं इस उद्योग में हूं,’ मैंने कहा, ‘मैं तुमको यह वचन देता हूं कि तुम मेरे एकमात्र एजेंट रहोगे।’

मैंने अपना स्पाकर्लिंग पानी लिया और उन्होंने अपना बियर मग उठाया।

‘चियर्स, दोस्त।’

न्यूजकॉर्प में आने के तुरंत बाद उन्होंने मुझे एक तकनीकी नेतृत्वकर्ता मनोनीत कर दिया। मुझे सॉफ्टवेयर विकसित करनेवालों की एक पूरी टीम का नेतृत्व करना था। यहां हर चीज बड़ी थीः प्रोजेक्ट्स, टीम, जिम्मेदारियां और चुनौतियां, और साथ ही पुरस्कार भी। हमारा ऑफिस ही इतना शानदार था कि अब तक मेरे अनुभव में वैसा कुछ नहीं आया था। यह पिरमोंट नामक एक स्थल में स्थित था, एक जलस्रोत के सामने का भूखंड था, जिसमें फर्श से अर्श तक शीशे की खिड़कियां लगी थीं। यहां निःशुल्क कॉफी मिलती थी तथा बिलियर्ड्स का टेबल भी लगा था। और यह कोई बेस्वाद सी इंस्टेंट कॉफी न होकर असली चीज थी। कैफे में दो कुशल कॉफी बनानेवाले काम करते थे, जो कॉफी के विभिन्न उत्कृष्ट पेय बनाया करते। यह इंटरनेट के फलने-फूलने का युग था और कुशल आईटी पेशेवरों को आकृष्ट करने के लिए नियोक्ता कुछ भी करने को तैयार थे।

न्यूज का वातावरण बहुत उत्पादक था, जो मुझ जैसे सॉफ्टवेयर निर्माण में असामान्य रुचि रखनेवाले व्यक्ति को विशेष रास आनेवला था। मैं अपने प्रोजेक्ट्स पर उन्हें नतीजे देता गया और उन्होंने मुझे नए-नए काम देना जारी रखा। डेविड और मैं अच्छे दोस्त बन गए और हम दोनों ज्यादा नहीं, तो सप्ताह में एक दिन जरूर मिला करते। वह टाइक्वोंडो में एक ब्लैक बेल्ट था तथा काफी भला और सक्षम व्यक्ति था। वह संबंध बनानेवाला व्यक्ति था, जबकि मैं हमेशा कार्यसंपादन तथा नतीजों पर एकाग्र रहा करता। डेविड ने मुझे यह महसूस कराया

कि कार्यस्थल पर व्यक्तिगत संबंधों का कार्यप्रदर्शन से ज्यादा महत्व है; पेशेवर विकास के लिए सिर्फ तकनीकी उत्कृष्टता ही पर्याप्त नहीं होती।

जब मैं न्यूज में ही था, तो प्योर कॉमर्स के एक पुराने ग्राहक ने मुझसे संपर्क किया। वे अंटीगा और बारबुडा द्वीप से एक बहुत लाभदायक ऑनलाइन कैसिनो संचालित करते थे। वे मुझसे मिलना चाहते थे। अंततः उनके संस्थापक तथा अन्य अधिकारियों के साथ उनके मुख्यालय अंटीगा में एक मीटिंग तय हुई। उनके अध्यक्ष ने, जो एक लंबे, छरहरे और सफेद बालों वाले व्यक्ति थे, अपना नाम ओटो बताया। उन्होंने 7,50,000 डॉलर के पैकेज के साथ मुझे तकनीकी निदेशक के पद की पेशकश की। यह मुझे उस समय मिल रहे पैकेज में केवल एक बढ़ोतरी ही नहीं, बल्कि एक जोरदार उछाल था, मैं ऑस्ट्रेलिया में कभी भी जितना पाने की उम्मीद कर सकता था, उससे कहीं अधिक। इसके बदले मुझे उनके लिए एक पेमेंट गेटवे बनाना था।

मैं इसे स्वीकार करने को तैयार था, पर मुझे एक नैतिक दुविधा हो रही थी। मैं इसपर निश्चित नहीं हो पा रहा था कि मुझे एक कैसिनो के लिए काम करना चाहिए अथवा नहीं। यह मुद्दा तब सुलझ गया, जब मैंने उनके कार्यालय में घूमते समय उनके कस्टमर सेवा टीम के एक सदस्य से मिला। वे अपने एक अमेरिकी ग्राहक के एक ईमेल का जवाब दे रहे थे, जो यह विनती कर रहा था कि उसके भुगतान को वापस कर दिया जाए, क्योंकि उसने एक भयानक भूल कर दी थी। उस अमेरिकी ग्राहक ने अपने चार क्रेडिट कार्डों से ६०,००० डॉलर का जुआ खेल लिया था। अपने ईमेल में उसने यह लिखा था कि उसे अपने घर से हाथ धोना पड़ेगा। मैंने कस्टमर सेवा के उस व्यक्ति से यह पूछा कि क्या उस व्यक्ति के लिए कुछ किया जा सकता है। ‘चिंता न करें, मैं रोजाना इस तरह के बहुतेरे ईमेल पाता हूं,’ उन्होंने उस ग्राहक की दलीलें अस्वीकार करते हुए कहा।

मुझे इसके आगे और कुछ सोचने के जरूरत न थी। मैंने उन लोगों को बताया कि मुझे सिडनी वापस जाकर चीजें समेटनी होंगी और मैं चार सप्ताह के बाद उनके साथ काम शुरू कर सकूंगा। किंतु मैं वापिस नहीं आना चाहता था। आज तक भी मैं यह नहीं समझ सका कि मैं क्यों उन लोगों से झूठ कहा, मगर वहां का वातावरण बहुत विचित्र-सा था। वहां मेरा दम घुटता महसूस हुआ और मैं जल्द से जल्द निकल जाना चाहता था। लोग अपनी जीवन भर की कमाई तथा घर गंवा रहे थे और मैं इन सबका हिस्सा नहीं बनना चाहता था।

सिडनी से मैंने उनके सीईओ को फोन किया और उन्हें बता दिया कि मेरी अंतरात्मा ने मुझे एक कैसिनो के लिए काम करने की अनुमति नहीं दी। इसी बीच, न्यूजकॉर्प ने मेरे पैकेज में 25,000 डॉलर की मोटी बढ़ोतरी की। उन्हें लगा कि मैं उन्हें छोड़ने जा रहा हूं।

एक रात जब हम दोनों डिनर पर बैठे थे, डेविड ने कहा, ‘मुझे लगता है कि तुम एक बड़ी भूमिका के लिए बने हो, अमित। न्यूज में वे तुम्हारी प्रतिभा का पूरा उपयोग नहीं कर पा रहे। ‘अच्छा, तो आप ऐसा सोचते हो?’, मैंने कहा।

'हां, तुम्हें तो किसी संगठन का नेतृत्व करना चाहिए, केवल एक प्रोजेक्ट का नहीं।'

यह डेविड का खास तरीका था। चाहे कोई सूचना कितनी भी अहम क्यों न हो, वे उसे हमेशा एक सहज ढंग से पेश किया करते। यह जान पाने का कोई सुराग नहीं होता कि यह एक आकस्मिक ढंग से कही गई बात है अथवा उसने इस पर पहले ही गंभीरता से विचार कर लिया है।

'क्या आपके मन में कोई बात है?'

'तुम्हें ग्रेग से मिलना चाहिए,' उन्होंने कहा।

'यह ग्रेग कौन हैं?'

'वे बड़े संगठनों के लिए टेक्नोलॉजी ब्लूप्रिंट बनाया करते हैं और उन्हें तुम्हारे ही जैसे किसी व्यक्ति की जरूरत है,' उन्होंने केवल इतना ही कहा।

दो दिनों बाद उन्होंने डॉ. ग्रेगरी उपिंगटन से मेरा परिचय कराया। ग्रेग उद्यम एकीकरण (एंटरप्राइज इंटीग्रेशन) में पीएचडी और आईटी क्षेत्र के एक महारथी थे। ग्रेग की विनम्रता अलौकिक थी। ग्रेग और मैंने जिस पल एक दूसरे से हाथ मिलाए, हमारी तत्काल ही छन गई और फिर बाद में तो हम दोनों घनिष्ठ मित्र हो गए। बड़े पैमाने पर प्रणालियों के एकीकरण में उनकी विशेषज्ञता थी और वे हाल ही आरंभ होने वाली एक कंपनी इंडस्ट्री वाइड नेटवर्क (आइडब्लूएन) में मुख्य सूचना अधिकारी के पद पर काम कर रहे थे। बातों ही बातों उन्होंने यह बताया कि इस कंपनी में वे लोग अभी संघर्ष की ही अवस्था में थे और उन्हें व्यग्रता से एक तेज तर्रार मुख्य टेक्नोलॉजी अधिकारी (सीटीओ) की जरूरत थी। ग्रेग का कहना था कि मैं उस पद को संभाल लूं।

मैंने कंपनी के मुख्य परिचालन अधिकारी (सीईओ), डेनियल हिल्सन से, जिसे डैन कहकर पुकारा जाता, मिला। वे अत्याधुनिक टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल कर रहे थे और एक ऐसे डाटा समेकन (एग्रीगेशन) प्रोडक्ट पर काम कर रहे थे, जो अपने समय से बहुत आगे था। डैन तथा उनकी टीम से भेंटों की एक श्रृंखला के बाद उनकी कंपनी के बोर्ड ने मुझे केवल एक गिलास पानी देकर मुझसे तीन घंटों तक सवाल-जवाब किए और तब कही जाकर वे ढाई लाख डॉलर के पैकेज की मेरी अपेक्षा से सहमत हुए।

न्यूजकॉर्प की एक्जीक्युटिव टीम मेरा त्यागपत्र देख प्रसन्न नहीं हुई। उन्होंने मुझे और पैसे तथा यह दलील देकर रोकना चाहा कि न्यूज में मेरे सामने बहुतेरे विकल्प थे। मगर उनके पास मेरे लिए उस तरह की विशाल चुनौती न थी, जैसी आइडब्लूएन का प्रोडक्ट मुझे पेश कर रहा था। उनके इस प्रोडक्ट के अलावा मैं डैन के विजन और उनके उद्यमशील चारित्रिक गुणों से प्रभावित था। मेरे सामने तीसेक साल का एक युवा सीईओ था, जो अपनी एक पहचान के साथ खड़ा था और मैं उससे बहुत कुछ सीख सकता था।

आइडब्लूएन में अपने पहले तीन दिनों में मैंने उनके सिस्टम्स डॉक्यूमेंटेशन का अध्ययन किया, सॉफ्टवेयर आर्किटेक्चर तथा सिस्टम्स डिजाइन की परख की, उनकी कोडिंग पर नजरें दौड़ाईं और कमियों की पहचान की। इन सबके बाद मुझे एक निराशाजनक अहसास यह हुआ कि यह प्रोडक्ट उतना जटिल न था, जितना उनके द्वारा इसे बताया गया था। इस

बात की कोई संभावना न थी कि वह प्रतिदिन मुझे आठ से दस घंटे तक व्यस्त रख पाता; एक घंटा प्रतिदिन देने से ही यह काम हो जाता। मैं इतना ऊंचा पैकेज लेने को किसी भी तरह सही नहीं ठहरा पा रहा था।

मैंने डैन से अपनी सोच साझा की और कहा, 'मैं नहीं समझता कि आपको पूरे समय के लिए मेरी जरूरत है, डैन।'

'मतलब?'

'मैं इसमें लगी टीम का नित्य एक घंटे के लिए मार्गदर्शन कर यह प्रोडक्ट विकसित करा सकता हूं। दिन के बाकी सात घंटों के लिए यहां मेरे लिए कुछ भी नहीं है।'

उन्हें मेरी बात से विस्मय हुआ और उन्होंने धीरे से अपना सिर हिलाया। शायद उन्होंने यह सोचा कि मैं त्यागपत्र देने जा रहा हूं। उस असहज मौन की स्थिति में ही कुछ पल गुजरे।

'तो आप क्या सुझाव देते हो?' उन्होंने अंत में कहा।

'मैं आपके लिए एक परामर्शी प्रभाग विकसित कर सकता हूं। मुझे अपने वेतन के लिए पर्याप्त आमदनी लाने दीजिए।'

उन्होंने समझदारी से सिर हिलाया। हमारी बातचीत के कुछ ही दिनों बाद उन्होंने विश्व के सबसे बड़े शौपिंग माल कंपनी, वेस्टफील्ड के साथ एक बैठक आयोजित की। यह बिलकुल सही समय पर हुई बैठक थी। वे करोड़ों डॉलर का ई-कॉमर्स प्रोजेक्ट संचालित कर रहे थे, पर डिलीवरी तथा समेकन की समस्या उनके आड़े आ रही थी। उन्होंने हमारे साथ इस शर्त पर सात अंकों का एक अनुबंध किया कि मैं उनके लिए पूर्णकालिक आधार पर उपलब्ध रहा करूंगा। मैं अपनी इन दोनों भूमिकाओं की देखरेख करता रहा - वेस्टफील्ड में प्रोजेक्ट का नेतृत्व करना और आइडब्लूएन में सीटीओ के रूप में प्रोडक्ट टीम को संभालना। आइडब्लूएन मेरा नियोक्ता बना रहा और उनके लिए मैं अपने वेतन से कई गुना अधिक की आय ला कर प्रसन्न था।

यह सन 2000 की बात थी। मैं 1998 में ऑस्ट्रेलिया आया और मुझे एक ऐसे काम के लिए संघर्ष करना पड़ा, जो मुझे कुछ भी दे सके। दो साल बाद जब मैं बीस वर्षों का था, तो मैं एक एक्जीक्यूटिव टेक्नोलॉजी मैनेजमेंट भूमिका में आ चुका था, जिसमें एक अच्छा से भी बेहतर वेतन पैकेज था। क्या यह केवल मेरे कठिन परिश्रम का फल था? ऐसा सोचना बेवकूफी ही होगा। एक अलौकिक कृपा का तत्व हमेशा ही वहां मौजूद था। वरना, ऐसे लोगों की कमी नहीं थी, जो मुझसे ज्यादा मेहनती तथा बुद्धिमान थे, पर उन्हें ऐसी सफलता नहीं मिली।

इसी वर्ष जुलाई में, राजन एवं मेरी मां ने मेरे पास आकर मुझसे मिलने का निर्णय लिया। पिछले दो वर्षों से वे मुझे देख नहीं सके थे। मैं अपनी मां को इधर-उधर घुमाना चाहता था और इसलिए मैंने एक कार खरीदना चाहा। एक सप्ताहांत, डेविड और मैं साब शोरूम के पास रुके। हम वहां पंद्रह मिनटों तक रुके रहे, जो हमें एक अनंत काल जैसा लगा, पर कोई

भी हमसे कुछ पूछने समझने नहीं आया। अंत में हमारे निकट एक युवा व्यक्ति आया।

'हेलो,' सेल्समैन ने कहा, 'कहिए मैं आपकी क्या सहायता कर सकता हूं?'

जब मैंने उनसे टेस्ट ड्राइव कराने के बारे में कहा, तो उसने कहा कि अभी तो कोई भी कार उपलब्ध नहीं है।

मैं उनके उदासीन रवैए पर चकित रह गया। क्या एक कार बेचने में उनकी कोई रुचि नहीं थी? मैंने सेल्समेन को अपना बिजनेस कार्ड थमाया। फिर उसकी भंगिमा एकदम से बदल गई। उसने खुशी से कहा, मैं देखता हूं कि क्या टेस्ट ड्राइव के लिए कोई कार उपलब्ध है।'

'मेरी सुनिए,' मैंने कहा, 'आप मेरे कार्यालय में आकर मुझसे मिलिए। साथ में एक डेमो कार तथा खरीद के जरूरी कागजात भी लेते आइए।'

'आपके लिए कौन-सा समय सुविधानजनक होगा, मि. शर्मा?' उन्होंने मेरे बिजनेस कार्ड से अपनी नजर हटाकर मेरी ओर देखा।

11 बजे सुबह। सोमवार।'

'मैं वहां मौजूद रहूंगा।'

सोमवार को जब मैं टेस्ट ड्राइविंग कर रहा था, तो सेल्समैन ने मुझे बताया, 'मैं इस डीलर के यहां सबसे कनिष्ठ कर्मी हूं और उस दिन वरीष्ठ कर्मियों ने आप लोगों से बातें करने मुझे ही इसलिए भेजा था, क्योंकि उन्हें लगा कि आप कार खरीदने के प्रति गंभीर नहीं हैं।'

एवं उस वक्त हल्की बारिश हो रही थी। मैंने महसूस किया कि यह दैवी कृपा के प्रतीकस्वरूप थी। वरना, सिर्फ दो साल पहले जो व्यक्ति बस में चढ़ने से सिर्फ इसलिए हिचक जाता था कि उसका किराया दो डॉलर था, वह आज किस तरह एक कनवर्टिबल कार खरीद रहा था, जिसकी कीमत 70,000 डॉलर थी? दैवी कृपा।

मैं वह पैसे अपनी मां के लिए खर्च करना चाहता था, जिन्हें मैं इतना प्यार करता था, जितना कभी किसी से नहीं किया था। हालांकि उन्होंने मेरे लिए जो त्याग किए, मैं उनका बदला सात जन्म में भी नहीं चुका सकता था; वे रातें जो उन्होंने दमे से हांफते अमित की देखभाल करते हुए बिताईं और हमेशा मेरा साथ दिया। मेरी साधना या ज्योतिष, शतरंज, किताबों या अन्य वस्तुओं में मेरा साथ देना उनके लिए जरुरी नहीं था पर वे हर जगह मुझे अपने साथ मिलीं। मैं यह चाहता था कि सिडनी में उनका यह समय यादगार हो सके।

मैंने नए फर्नीचर, बिस्तर की चादरें तथा नहाने-धोने के नए सामान खरीद कर अपना फ्लैट सजाया-संवारा। फ्रिज तथा रसोई को कई तरह के खाने-पीने के सामान से भर दिया। और अंत में मैं अपनी नई कार में उन्हें लेने हवाईअड्डे पहुंचा। जैसे ही मैंने अपनी मां को देखा, मैंने उनके पैर छूए, उनसे लिपट गया और उनके गाल चूम लिए। फिर मैं राजन भैया से लिपटा।

'तुम बहुत दुबले हो गए हो,' मां ने कहा। 'तुम जरूर अपने स्वास्थ्य की परवाह किए बगैर कड़ी मेहनत करते रहे हो।'

'बस, आपने चिंता शुरू कर दी,' मैंने झूठी नाराजगी से कहा।

‘अच्छा, अब जब मैं तीन महीनों के लिए यहां हूं, तो मैं तुम्हें अच्छी तरह खिलाऊंगी।’

‘पहले आप मुझे यह बताओ कि क्या आपको मेरी नई कार पसंद आई?’ मैंने एक बटन दबाया और कार की छत मुड़कर पीछे सिमट गई। ‘मैंने इसे आपके लिए खरीदा है।’

‘भगवान तुम्हें इससे भी ज्यादा दें,’ उन्होंने कहा। ‘और तुम हमेशा...’ मां के बाकी शब्द भावुकता के कारण कंठ में ही अटक गए।

‘मेरे लिए क्या है, अमित?’ राजन हंसते हुए बीच में ही बोल पड़े। ‘मैं समझता हूं कि यहां इस कार का मां से बेहतर इस्तेमाल मैं ही करूंगा।’

कार में मां कुछ चुप-सी ही रहीं, जबकि भैया खूब उत्साहित और बातूनी थे। मैं ऑस्ट्रेलिया की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था, स्वच्छ सड़कें, अपनी पढ़ाई, मेरी कंपनी सहित दूसरी हर वैसी चीज के विषय में बोलता रहा, जो मुझे याद आती गई। मेरी हर बात पर भैया के दस सवाल होते।

उस रात बाद में मैंने मां से पूछा कि उनके मन में क्या कुछ चल रहा है। उन्होंने कहा, ‘तुम यहां अपनी सफलता के बारे में मुझे फोन से भी बताते रहते थे, किंतु यह सब अपनी आंखों देखकर मुझे भगवान को धन्यवाद देने के लिए शब्द नहीं मिल रहे। मैं कितना संतुष्ट महसूस कर रही हूं।’

उत्तर में मैंने बस अपना सिर उसके चरणों पर रख दिया। ‘यह सब आपके आशीर्वाद का फल है, मां।’

उनकी आंखों से आंसू छलक पड़े।

मेरी मां को ऑस्ट्रेलिया में बिताया अपना तीन महीने का समय बहुत अच्छा लगा। यह मेरे जीवन के सबसे यादगार समय में एक था, क्योंकि पहली बार मैं अपनी मां की खातिरदारी कर पा रहा था। और इसलिए भी कि उन्होंने मुझ पर जो प्यार और आशीष लुटाए तथा मेरी जितनी देखभाल की, वह केवल एक मां ही कर सकती थी। वे रोज मुझे भरपेट नाश्ता करातीं और रोज शाम मैं घर लौट कर स्वादिष्ट भोजन का आनंद लिया करता। जब मैं सुबह काम करने निकलता, तो वे मुझे ताजा छिले बादाम की पुड़िया थमा देतीं, ताकि मैं गाड़ी चलाते हुए उन्हें रास्ते में खाता जाऊं। जब मैं घर से निकलता, तो वे मुझे विदा देने दहलीज तक आतीं। ऑस्ट्रेलिया में मेरे साथ ऐसा पहली बार हुआ कि जब मैं घर से निकलता, तो कोई मुझे विदा देता और शाम में मेरे घर लौटने का इंतजार किया करता। पिछले दो वर्षों में मैं यह लगभग भूल ही चुका था कि मैं एक मशीन नहीं, बल्कि मानव प्राणी हूं। उनकी स्नेहमयी देखरेख ने मुझे एक बार फिर से एहसास दिला दिया कि मैं एक इंसान था।

उन दिनों मैं काम में लंबे समय तक लगा रहता। ऐसे भी दिन होते, जब मैं सिर्फ सोने के लिए ही घर आ पाता, किंतु मां ने कभी इसकी शिकायत न की। मैं जिस तरह उन्हें पूरा शहर घुमाना चाहता था, समय की कमी से वैसा कुछ भी न कर सका, पर उन्होंने कभी मुझे इसके लिए दोषी नहीं महसूस कराया। ‘मैं बस तुम्हें खुश देखकर ही खुश हूं,’ वे कहा करतीं।

एक दिन जब मैं उनके साथ बैठा ऑस्ट्रेलिया में अपने जीवन के विषय में उनसे बातें कर रहा था, तो मैंने कहा, 'मुझे गलत मत समझना, मां। मुझे यहां यह सब पसंद है। इस देश ने मुझे कितना कुछ दिया है पर, तुमसे सच कहूं, तो मेरा दिल यहां नहीं लगता।'

'क्यों, अमित, क्या बात है?'

मैंने उन्हें अपने मन की बात बताई कि किस तरह ध्यान में समय नहीं दे पाना मुझे खलता है और किस तरह समय की कमी के वजह से मैं अपनी साधना नहीं बढ़ा पा रहा हूं। मैं शिक्षा की भूमिका समझता हूं और पैसे के महत्व को भी मैं कम नहीं आंक रहा, पर ये सब निश्चित रूप से मेरे जीवन को पूर्ण नहीं बना सकते हैं। मेरा लक्ष्य तो हमेशा से वही रहा है और आज भी वही है, भगवान।

'एक दिन मैं इससे अधिक आध्यात्मिक जीवन जीना चाहता हूं,' मैंने कहा।

'तुम्हें जिस किसी चीज से खुशी मिले,' उन्होंने धीरे से कहा। 'मैं इतना ही जानती हूं कि तुम बिना विचारे कभी कुछ नहीं करोगे।'

मुझे अपने कथन पर उसकी स्वीकृति से आश्चर्य नहीं हुआ। उन्होंने कभी भी मुझे और ज्यादा पैसे अथवा रुतबे के पीछे भागने के लिए उत्साहित नहीं किया। वे हमेशा से मुझे अपना समर्थन देती तथा समझती आई थीं, मानो वे मेरी आंतरिक अनुभूतियां जानती हों।

जब हम लोग बातें कर ही रहे थे, तभी राजन भैया उस कमरे में आए और उन्होने कहा, 'तुम लोग अपने गंभीर संवादों से मुझे हमेशा ही भयभीत कर देते हो!' मैं उन्हें देख कर मुस्कुराया। 'मां, अमित चाहे जो भी कहता है, तुम उस पर हां कैसे कह देती हो?' वे बोले।

मां बस मुस्कुरा कर रह गई, मगर भैया ठीक कह रहे थे। छोटी-मोटी चीजों पर हमारी कुछ तुच्छ और अस्थायी मतभेद को छोड़ कर अपनी मां से मेरे संबंध में कभी किसी विरोध की नौबत नहीं आई थी। इसकी वजह यह हो सकती थी कि उन्होंने वस्तुतः कभी मेरा विरोध नहीं किया अथवा वे मुझे पूरी तरह समझती थीं, या फिर दोनों ही बातें सही थीं।

भैया ने मेरे विचार प्रवाह में बाधा देते हुए उन दो ऑस्ट्रेलियाई व्यक्तियों की नकल करना आरंभ किया, जिनसे उस दिन उसकी मुलाकात हुई थी। मैंने इस पर जमकर ठहाके लगाए, इसलिए नहीं कि वे लोग उसी तरह बोलते होंगे, बल्कि इसलिए कि भैया जिस तरह एक-एक शब्द बोल रहे थे, वह बहुत मजेदार था।

इसके पहले कि हम जान पाते, मां के भारत लौटने की घड़ी आ गई। भैया रुक गए, क्योंकि उन्हें एक कंपनी ने प्रायोजित कर दिया था। मां के लौट जाने के बाद मुझे बहुत ही बुरा लगा, क्योंकि मैं उसके साथ ज्यादा वक्त बिता ही नहीं पाया। वे यहां मेरी कार अथवा मेरा फ्लैट या यहां की इमारतें और पर्यटन के लिए दिलचस्प चीजें देखने नहीं आई थीं। वे तो मुझे देखने आई थी।

दिसंबर में मैंने अपनी स्नातक डिग्री की पढ़ाई छह महीने पहले पूरी कर ली। तीन वर्षों की यह डिग्री, जो मुझे दी गई छूट की वजह से घट कर दो वर्षों की रह गई थी, अंततः अठारह

महीनों में पूरी हो गई, क्योंकि मैंने अतिरिक्त विषय गरमी तथा जाड़े के स्कूलों में पूरे कर लिए।

मेरी बुनियादी शिक्षा के पूरी होने और एक स्थिर आमदनी आने से अंततः अब कहीं जाकर मेरा जीवन स्थिर हुआ। जबसे मैं ऑस्ट्रेलिया आया था, वस्तुतः मुझे स्वयं पर, अपने आंतरिक जीवन पर, गौर करने का समय नहीं मिल पाया था। मेरी साधना न तो पहले से तीव्र हुई थी और न ही बेहतर। अब जबकि मेरी चारों ओर चीजें स्थिर हुईं, तो मेरे अंतर की शून्यता, जो कुछ दिनों के लिए मेरी बाह्य चेष्टाओं की वजह से परदे के पीछे चली गई थीं, फिर से मेरे सामने आ खड़ी हो गई।

संन्यास का मेरा लक्ष्य मेरे लिए स्पष्ट था और मैं अच्छी तरह यह जानता था कि मुझे किधर जाना है। पर उसका वक्त अभी नहीं आया था। मुझे यह सुनिश्चित करना था कि मैं संसार की भौतिक चुनौतियों से घबरा कर आध्यात्मिक मार्ग का चयन नहीं कर रहा। भौतिक सफलता के शीर्ष पर पहुंचकर फिर उससे विमुख हो जाना कहीं सच्चा संन्यास होता। पहले यदि मेरे पास खोने के लिए कुछ नहीं होता, तो फिर मैं किसका त्याग कर रहा था। मैं यह सुनिश्चित करना चाहता था कि आध्यात्मिक मार्ग के लिए मेरा मनोभाव स्पष्ट व पवित्र हो।

मैं सोचता कि अगर मुझे आजीवन दूसरों के लिए काम ही करना है तो एक कर्मचारी के रुप में कितना भी क्यों न कमा लूं, मुझे सेवानिवृत्त होने तक काम ही करना होगा; और यदि मैं इसी तरह काम करता रहा, तो फिर मुझे आत्मअन्वेषण के लिए कब समय मिलेगा? एक कनवर्टिबल स्पोर्ट्स कार में बैठ कर काम पर जाने का आकर्षण अब उतना ज्यादा नहीं रह गया था, जितना वह पहले दो महीनों में था। मेरे वेतन का चेक, जो पहले मुझे बहुत उत्साहित कर जाता था, अब कागज के एक सामान्य टुकड़े जैसा लगा करता। मेरी दिनचर्या अब मुझे उबाऊ लगती और मैंने यह महसूस किया कि मुझे इसमें कुछ परिवर्तन करने की आवश्यकता है। मुझे यह लगा कि जो काम मैं आइडब्लूएन के लिए किया करता था, उसे मैं आसानी से अपने लिए भी तो कर सकता हूं। मैंने यह आकलन किया कि अपना व्यवसाय खड़ा करना अब एक दिलचस्प तथा लाभदायक उद्यम होगा।

जब मैंने आइडब्लूएन के लिए बीस लाख डॉलर की आय अर्जित कर ली, तो खुश होकर उन्होंने मुझे 20,000 डॉलर का क्रिसमस बोनस दिया। घर लौटकर मैंने राजन भैया को वह चेक दिखाया।

'वाह! चलो, हम लोग इसका जश्न मनाएं,' उन्होंने कहा।

'बिलकुल। पर पहले मुझे एक जरूरी ई-मेल भेजना है।'

मैंने डैन को मेल भेजकर अपने मोबाइल को स्विच ऑफ कर दिया।

'ठीक है, हम लोग आज एक सिनेमा देखने तथा डिनर लेने भी चलें। मैं आज सचमुच जश्न मानना चाहता हूं।'

रेस्तरां में मैं मेन्यू को एकटक देखता रहा और एक दबी हुई हंसी हंसता रहा।

'क्या बात है, तुम हंस क्यों रहे हो?'

देखिए भैया, जीवन भी एक मेन्यू की ही तरह है। हमें विभिन्न विकल्पों के बीच चयन

करना पड़ता है। हमें सभी चीजें नहीं मिल सकतीं। यदि हममें मेन्यू में दी गई सारी चीजें खरीद सकने की भी सामर्थ्य हो और हम वे सारी चीजें खाना भी चाहें, फिर भी हम वैसा नहीं कर सकते। हमें उसी का चयन करना पड़ेगा, जो हमें सबसे ज्यादा आनंद दे, न कि उसका जो मेन्यू में सबसे ऊपर है। आज मैंने भी एक विकल्प पसंद किया है।'

'तुम्हारी रहस्यमय बातें मुझे उलझा देती हैं, भाई। तुमने क्या किया? कौन सा विकल्प? मुझे सरल शब्दों में समझाओ।'

'मैंने त्यागपत्र दे दिया।'

'क्या मैं आप लोगों के लिए कोई पेय लाऊं?' वेटर ने बीच में व्यवधान डाला।

'कुछ मिनट बाद,' भैया ने सदमे से मुझे घूरते हुए उसे लौटा दिया।

'तुमने क्या किया? तुमने कंपनी छोड़ दी? तुम्हें तो बोनस चेक मिला था, न कि वहां से हटने का भुगतान।'

उनके चेहरे का तनाव देखकर मुझे हंसी आने लगी। वह तो बोनस चेक ही था, पर मैंने घर आने के बाद उन्हें अपना त्यागपत्र मेल कर दिया।'

'परंतु क्यों?'

'क्योंकि आज घर लौटते समय मुझे एक अनुभूति हुई।'

'कौन सी अनुभूति? साफ-साफ बताओ न कि तुम क्या करने जा रहे हो?'

'क्यों नहीं हम लोग पहले कुछ ऑर्डर दे दें?'

'नहीं, जब तक तुम मुझे यह नहीं बता देते कि तुमने इस नौकरी को क्यों छोड़ा, तब तक हम लोग कोई ऑर्डर देने नहीं जा रहे हैं। और यह अनुभूतिवाली बात क्या है?'

'अच्छा, अब तक मैं मेन्यू के सबसे पहले आइटम का ऑर्डर करता आया था। मेरी यह सोच थी कि मैं उस चीज को हासिल करूं, जो अब तक मेरे पास नहीं थी, ताकि मैं खुश हो सकूं। जब मैं बेरोजगार था, तो मैं एक प्रोग्रामर होना चाहता था। जब मैं एक प्रोग्रामर हो गया, तो फिर मैंने एक सॉफ्टवेयर आर्किटेक्ट बनने को लक्ष्य किया। फिर मैं एक तकनीकी नेतृत्वकर्ता, एक तकनीकी प्रबंधक, एक तकनीकी निदेशक और अंततः एक सीटीओ बन बैठा। मैं समझता हूं कि इस नीति ने मुझे अब तक लाभ ही पहुंचाया है। मगर यदि आगे मैं इसे ही जारी रखूं, तो बेवकूफ ही होऊंगा। क्या मैं प्रसन्न हूं? क्या मैं यही करना चाहता हूं? नहीं, भैया, नहीं। मैं जो करना चाहता हूं, वह यह नहीं है और मैं यही करने के लिए पैदा नहीं हुआ था।

'आज की बोर्ड मीटिंग में एक सदस्य पैंसठ वर्षों की आयु का होकर भी एक पार्किंग टिकट पाने के लिए बेचैन था। जब वह मीटिंग में बैठा था, तो वह खांस रहा था और किसी बीमार जैसा दिख रहा था, किंतु फिर भी वह मीटिंग में शामिल होने आया। हम क्यों कमाते और सीखते हैं? वृद्धि क्या है? प्रगति क्या है?'

'क्या अब मैं आपके लिए कुछ ला सकता हूं, सज्जनो?'

'एक सलाद, एक ब्रुसकैटा, एक कोक और नींबू की एक फांक के साथ एक स्पार्कलिंग वाटर,' मैंने कहा। 'मुख्य आहार के लिए दो शाकाहारी पैने पास्ता, जिनमें से एक के साथ

बोक्सोसिनी चीज भी लाइए।'

'क्या आप और कुछ चाहते हैं?' मैंने भैया से पूछा। उन्होंने इनकार में सिर हिलाया।

'मैं उस बूढ़े बोर्ड सदस्य की तरह नहीं होना चाहता,' मैंने आगे कहा। 'एक कुत्ता कभी मालिक नहीं हो सकता। मैं अब किसी के द्वारा नियुक्त एक कर्मचारी नहीं रह सकता। मैं अब खुद अपना मालिक और अपने जहाज का कप्तान होना चाहता हूं।'

'मगर तुम करोगे क्या?'

'मैं अपना व्यवसाय शुरू करूंगा।'

'पूंजी के बारे में क्या सोचा है? तुम्हें एक ऑफिस और कर्मियों की एक टीम की भी जरूरत होगी। यह सब कैसे संभव हो पाएगा?'

'अभी मेरे पास इन प्रश्नों के उत्तर मौजूद नहीं हैं, मगर मैंने यह फैसला कर लिया है कि मैं और दस वर्ष ही काम करूंगा और तीस की उम्र में काम से निवृत्त हो जाऊंगा। यह केवल तभी संभव हो पाएगा, जब मैं अपना व्यवसाय खड़ा करूं।'

'लेकिन यदि व्यवसाय नहीं चल सका, तब क्या होगा? हम लोगों के पास व्यवसाय की कोई पृष्ठभूमि तो है नहीं।'

'इससे कोई मतलब नहीं है। मैंने एक रास्ते पर चलने का निर्णय कर लिया है और कुछ भी मुझे इससे डिगा नहीं सकता।'

'पर यदि ईश्वर ने तुम्हारे बारे में कोई दूसरी ही योजना बना रखी हो, तब क्या होगा? मैंने किसी को तीस वर्षों की उम्र में काम से निवृत्त होते हुए नहीं देखा है।'

मैं हंस पड़ा। 'यह भगवान का मेन्यू हो सकता है, पर यहां मैं ग्राहक हूं और मैं ही यह फैसला करूंगा कि मैं क्या खाना चाहता हूं।'

'किंतु काम से निवृत्ति के बाद तुम क्या करोगे?'

'मैं सिरजनहार से मिलना चाहता हूं। मैं यह देखना चाहूंगा कि मेरे लिए यह मेन्यू किसने तैयार किया।'

'और इसका मतलब?'

'इसका मतलब वही है, जो मैंने अभी कहा। मैं ईश्वर से मिलना चाहूंगा।'

'कौन ईश्वर? तुम किस विषय में बातें कर रहे हो? अमित, मुझे यातना देना बंद करो। मेहरबानी कर इसे साफ कहो।'

'मैं सत्य की अपनी खोज में अपना जीवन लगाना चाहता हूं।'

'क्या अपना पूरा जीवन?'

'इसमें जितना भी लगे।'

'यदि कल को तुम्हारा विचार बदल जाए, तो?'

'यह तो स्वाभाविक ही है क्योंकि विचार तो हमेशा बदलते ही रहते हैं। यह तो पशु मात्र की प्रकृति है। जो कुछ नहीं बदलेगा, वह मेरा संकल्प है। मैं पूरी गंभीरता से यह घोषणा करता हूं कि मैं तीस की उम्र में काम से निवृत्ति ले लूंगा, आज से ठीक दस वर्षों बाद।'

'तीस का होने में ऐसी क्या खास बात है?'

‘तब तक, मुझे यह पता है कि, मैं अपनी जरूरत के पैसे कमा चुका रहूंगा। और मैं आगे बढ़ने के लिए तैयार हो जाऊंगा। इसके अलावा, यदि मैं दस वर्षों में भी अपना व्यवसाय खड़ा नहीं कर पाया, तो इसका अर्थ यह होगा कि मैं व्यवसाय के योग्य नहीं हूं। किसी भी चीज में सफलता हासिल करने के लिए दस वर्ष बहुत होते हैं।’

राजन स्तब्ध बैठ रहे। मैंने उनसे खाने का आग्रह किया और यह कह कर सांत्वना देने की कोशिश की कि अभी दस वर्षों का वक्त बाकी है और फिर मैं बराबर आपकी मदद के लिए मौजूद रहूंगा। भोजन परोसा जा चुका था और कई वर्षों की अवधि में पहली बार मैंने कोई हड़बड़ी महसूस नहीं की। मुलायम मगर कुरकुरे ब्रेड, अपने पास्ता में पड़े ताजे मोजारेला की रस भरी गोलियां, ताजा हरे सब्जियों का स्वाद, काली मिर्च की सनसनाहट तथा डिल की अनोखी महक - मैंने उन्हें भरपूर लुत्फ लेते हुए खाया। वे एक के बाद एक बारी-बारी से आए और मेरी जीभ पर एक संग होकर उन्होंने आह्लाद और अनुभूति का एक अनोखा समां बांध दिया, मैंने जिसके कतरे-कतरे का मजा लिया। मैं अपना भोजन केवल खा नहीं रहा था; निश्चित रूप से मैं उसे निगलता नहीं जा रहा था। मैं उसकी अनुभूति बटोर रहा था।

मैंने एक-एक घूंट कर स्पार्कलिंग वाटर का मजा लिया। इसमें उठते बुलबुलों ने मुझे मानवीय मस्तिष्क में होती विचारों की आपाधापी की याद दिलाई। जब तक जलस्तर शांत न हो जाए, बुलबुले तो उठते ही रहते हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं था कि मैं अपना पेय जल्दबाजी में पी लूं। महत्वाकांक्षाओं तथा इच्छाओं के बुलबुले, स्थितियों, परिस्थितियों, विचारों एवं भावनाओं के बुलबुले उठते ही रहेंगे, मगर मेरे पास इच्छित गति से अपने पेय का घूंट-घूंट आनंद उठाने का विकल्प मौजूद था। वे बुलबुले अच्छे थे, वे जरूरी भी थे। उनसे विमुख होने की बजाए उनका आनंद लेना चाहिए था। क्योंकि उन्होंने ही शांत जलस्तर में एक अनोखी चमक पैदा कर दी थी।

अध्याय छह
पोर्श और उससे आगे

यही सही समय था कि मैं एक अपनी आईटी कंसल्टिंग कंपनी का व्यवसाय आरंभ करूं। चूंकि मैं कोई ऑफिस अथवा सहयोगियों की टीम के खर्चे नहीं उठा सकता था, अतः मैंने अपने ही अपार्टमेंट में बगैर किसी पूंजी के इसकी शुरुआत कर दी। मैं निश्चित था कि इसे एक बड़ी चीज का रूप दूंगा, किंतु तब मेरी योजनाओं को एक झटका सा लगा, जब मैं इधर-उधर बहुत हाथ-पांव चलाकर भी अपने मौजूदा संपर्क सूत्रों से कोई भी काम हासिल करने में विफल रहा। इसकी वजह यह थी कि ठीक उसी वक्त इन्टरनेट का बुलबुला फूट चुका था, वित्तीय बाजार अनिश्चय की स्थिति में थे, उपभोक्ताओं का उत्साह ठंडा पड़ गया था और कॉरपोरेट द्वारा किए जानेवाले व्यय हमेशा के निम्नतम स्तर पर आ चुके थे।

मुझे एक नया व्यवसाय आरंभ करने और उसे खड़ा करने का कोई व्यावहारिक अनुभव न था। मैंने गलती से यह समझ लिया था कि मेरी तकनीकी दक्षता ही व्यवसाय को शुरु करने के लिए पर्याप्त होगी। मगर यह हकीकत से कोसों दूर था। अपने व्यावसायिक कौशल की कमी दूर करने तथा कारोबार के कुछ गुर सीखने के लिए मैंने यूनिवर्सिटी ऑफ टेक्नोलॉजी, सिडनी के एक एमबीए पाठ्यक्रम के लिए आवेदन कर दिया।

इसके चार माह बाद मैंने एक्लिप्स समूह के साथ एक अनुबंध की संभावना देखी, जो वेब डिजाइन करनेवाला एक उद्यम था और यह विश्व के पांच सबसे बड़े परामर्शी फर्मों में एक, डिलॉयट कंसल्टिंग के पूरे स्वामित्व में स्थित उसकी एक अधीनस्थ कंपनी थी। उनके सीईओ माइकल कीन के साथ एक मीटिंग तय हुई, जिसमें मुझे पता चला कि एक्लिप्स समूह वेब डिजाइनिंग के बजाए सॉफ्टवेयर से अधिक आय हासिल करना चाहता था, क्योंकि सॉफ्टवेयर में ज्यादा पैसा था। सॉफ्टवेयर ही मेरी विशेषज्ञता का क्षेत्र था। उन्होंने मेरे साथ 1,000 डॉलर प्रतिदिन की दर से अनुबंध कर मुझे अपने सॉफ्टवेयर कार्यक्रम को विकसित करने तथा उसका नेतृत्व करने की जिम्मेदारी दे दी।

मैंने ज्यादातर एक्जीक्यूटिव मीटिंग तथा प्रेजेंटेशन में माइक के साथ जाना शुरू किया।

ग्राहकों द्वारा मुझे पसंद किये जाने की वजह लोगों ने यह बताई कि मैं निर्भीक भाव से अपने विचार व्यक्त किया करता था। मैं सामान्यतः अपनाए जानेवाले तरीके का सहारा नहीं लिया करता, जिसमें क्लायंट द्वारा लिए गए निर्णयों को ही सलाहकार अपना समर्थन दे दिया करते थे। जनरल मोटर्स तथा डेयरी फार्मर्स से ज्यादा कारोबार हासिल करने में मेरी भूमिका अहम रही, वे दोनों अरबों डॉलर की कंपनियां थीं। पहली कंपनी तो बहुत ही बड़ी थी। जब मैंने दोनों कंपनियों द्वारा अपनाई जानेवाली तकनीकों की समीक्षा की, तो मैंने दोनों संगठनों से यह कहा कि वे एक खास सॉफ्टवेयर (कॉन्टेंट मैनेजमेंट सल्यूशन) को खरीद कर अपने पैसे व्यर्थ गंवा रहे थे।

कुछ महीने बाद, माइक ने मेलबोर्न के क्राउन प्लाजा में मुझे कॉफी के लिए आमंत्रित किया। वहां बातचीत के दौरान उसने कहा वे मुझे एक बड़ी भूमिका में आते हुए देखना चाहते थे, जो डिलॉयट में अधिक स्थाई हो। उन्होंने कहा कि वे सेवानिवृत्ति ले रहे थे और एक्लिप्स समूह का नेतृत्व करने के लिए उन्हें एक उत्तराधिकारी की तलाश थी। यह साफ था कि वे मुझे वहां पद भार संभालने की ओर संकेत कर रहे थे परंतु मैं अब नौकरी करना नहीं चाहता था। मैं चुप रहा। उन्होंने आगे कहा, 'क्या तुम्हें यह पता है कि हमारी सबसे बड़ी चुनौती क्या है?'

मैंने पूछा, 'ग्राहकों के संदर्भ में?'

'नहीं, तुम्हारे संदर्भ में।'

मैं मुस्कुराया।

'देखो, हमारी सबसे बड़ी चुनौती तुम्हारे लिए एक चुनौती की तलाश करना है।'

मैं उनके विश्लेषण से गहरे रूप से प्रभावित हुआ। यह सच था। जब भी कोई चीज मेरे सामने चुनौती पेश करना बंद कर देती, तो मैं आगे बढ़ जाता।

'और क्या तुम यह जानते हो कि खुद तुम्हारे लिए सबसे बड़ी चुनौती क्या है?'

'प्रेरित बने रहना,' मैंने कहा।

'संभव है। मगर तुम्हारे लिए वास्तविक चुनौती सही विकल्प का चुनाव करना है। जीवन तुम्हारे सामने बहत सारे विकल्प पेश करेगा, और यह साफ है कि तुम्हारा भविष्य तुम्हारे द्वारा उनके चुनाव पर निर्भर होगा।'

आज भी उनके गहन बुध्दिमता से भरे वचन मेरे स्मृति-पटल पर अंकित हैं।

इस बीच, मेरा कंसल्टिंग पेशा विकसित होता रहा। मैंने एक टीम की नियुक्ति की और अपने मुनाफे का एक-एक पैसा एक एंटरप्राइज सर्च इंजन विकसित करने में लगा दिया। यह गूगल की ही तरह की चीज थी, मगर यह केवल कंपनियों के लिए थी।

अगले दो वर्षों की अवधि में मैंने ऑस्ट्रेलिया में अपनी स्थायी रिहायशी हैसियत हासिल कर ली, अपना एमबीए पूरा कर लिया, भारत में एक सॉफ्टवेयर विकास केंद्र स्थापित कर लिया और न्यूयॉर्क जाकर वहां अपना एक शाखा कार्यालय स्थापित किया। किंतु न्यूयॉर्क का काम उतना अच्छा नहीं चल सका, जितनी मेरी उम्मीद थी और दूसरी ओर सिडनी में मुझे ध्यान देने की जरूरत थी। इसलिए मैंने अपनी महत्वाकांक्षा पर रोक लगाई और अपनी

ऑस्ट्रेलियाई गतिविधियों पर अधिक ध्यान देना शुरू किया।

मेरे ऑस्ट्रेलियाई व्यवसाय से आय होने लगी। यह मेरी तीव्र इच्छा थी कि मैं उसका निवेश प्रोडक्ट डेवलपमेंट से अलग किसी और क्षेत्र में भी करूं। एक वर्ष बाद 2003 में मैंने सिलिकॉन वैली में एक कार्यालय खोलने का फैसला किया। अपने उत्पाद को बाजार के ज्यादा बड़े हिस्से तक ले जाने के लिए मुझे संस्थागत पूंजी की जरूरत थी। मेरी ऑस्ट्रेलियाई गतिविधियों के प्रबंधन के लिए भी मुझे किसी उपयुक्त व्यक्ति की तलाश थी।

एंडी से मेरी मुलाकात अपनी एक ग्राहक मीटिंग के दौरान हुई थी और हम मित्र बन चुके थे। प्रायः हम बैठकर शतरंज खेला करते। मैंने उन्हें अपने लिए काम करने हेतु नियुक्त कर लिया। वे अपनी कंपनी भी खड़ी करना चाहते थे। इसलिए हम इसपर सहमत हुए कि मेरे व्यवसाय की देखभाल करते हुए वे अपने उत्पाद पर भी काम कर सकते थे बशर्ते कि वो हमारी पेशकश से बिलकुल अलग होगा। ताकि किसी भी तरह हितों के टकराव का मामला खड़ा न हो। आखिर डिलॉयट ने भी मुझे इसी तरह सहयोग किया था।

अपने ऑस्ट्रेलियाई व्यवसाय की बागडोर एंडी के हाथों में सौंपकर मैं अस्थायी रूप से कैलिफोर्निया चला गया। वहां कुछ सप्ताहों तक एक अपार्टमेंट में रुकने के बाद मैं रिश्ते में अपने एक दूर के भाई, अश्विनी वर्मा और उनकी पत्नी मोनिका के साथ ठहरने के लिए उनके घर चला गया। उन्होंने मेरे लिए अपने घर के साथ अपने दिलों के दरवाजे भी खोल दिये और मेरे मन को काम की व्यस्तताओं से अलग हटाने में मेरी सहायता कर मुझे बहुत राहत दी।

मैंने कैलिफोर्निया में विभिन्न वेंचर पूंजीपतियों के पास अपनी कंपनी को 'प्रोमोट' करने में कुछ महीने व्यतीत किए। किंतु उधर ऑस्ट्रेलिया में भी हमने मेरी अनुपस्थिति में किसी बड़े सौदे से हाथ नहीं खींचे। भारत और कैलिफोर्निया में अपने बढ़ते खर्चों के बीच मैंने पाया कि मेरे पास अचानक नकद घनराशि समाप्त हो गई थी, मैंने कभी ऐसी स्थिती की कल्पना तक नहीं की थी। अंततः डीएफजे नामक सिलिकॉन वैली की प्रथम स्तरीय वेंचर पूंजी कंपनी ने निवेश में कुछ रुचि दिखाई। जब मैंने उस फर्म के सभी साझीदारों के सामने अपना प्रेजेंटेशन पूरा कर लिया, तो मुझे इसका पूरा यकीन हो चुका था कि हमें सत्तर लाख डॉलर का फंड अब मिलने ही वाला था।

मेरे प्रेजेंटेशन के दो दिनों बाद मेरे फोन की घंटी बजी। फोन की दूसरी ओर जोश स्टाइन थे, जो डीएफजे में मेरे संपर्क सूत्र थे। मेरा मुंह सूख गया। मुझे यह पता था कि वे शर्तों के विषय में बातें करनेवाले थे। ईश्वर ने मेरे लिए धन की व्यवस्था कर दी थी। जोश कुछ मिनटों तक बोलते रहे, पर मेरे जेहन में उनकी वे सब बातें नहीं समा सकीं, मैं तो केवल शुभ समाचार का इंतजार कर रहा था। अंत में उन्होंने ये शब्द कहेः 'दुर्भाग्य से दूसरे साझीदार इस वक्त इसके लिए इच्छुक नहीं हैं, पर मैं समझता हूं कि आपके पास एक बहुत अच्छा प्रोडक्ट है और आपको दूसरे निवेशकों को राजी करने के प्रयास करने चाहिए।' उन्होंने कुछ और भी चीजें कहीं, जो अब मुझे याद नहीं रहीं।

मैं टूट चुका था। अब मेरे पास दूसरा कोई ठोस सूत्र नहीं था। मैंने सांत्वना के लिए कीथ को फोन किया। कीथ टेलर, जो अपनी उम्र के पांचवें दशक के अंत में पहुंच चुके थे, मेरे एक

अच्छे मित्र थे और सिलिकॉन वैली में अभी-अभी शुरू हुई एक कंपनी के मुख्य वित्तीय अधिकारी (सीएफओ) थे। मैंने अमेरिका पहुंचने के तुरंत बाद एक ऑनलाइन संपर्क के जरिए उनसे मुलाकात की थी। उन्होंने वेंचर पूंजी के लिए प्रयास करने के साथ ही इक्विटी बढ़ाने के लिए वित्तीय मॉडल खड़ा करने में मदद की। जल्दी ही हम हर रविवार को कॉफी और सैंडविच के साथ मिलने लगे। उन्होंने मुझसे चिंता न करने को कहा और यह भी कहा कि मुझे कुछ और सूत्र मिल जाएंगे। लेकिन मैं पूरी तरह निराश था।

मैंने अश्विनी से बात कीं और उन्होंने यह सलाह दी कि मैं कुछ दिनों की छुट्टी ले लूं। मैं पिछले कई महीनों से समय के तीन जोन में दिन-रात काम करता रहता था। मैंने अरुण भैया से भी बातें कीं, जो दो वर्षों पहले सिडनी से टोरंटो चले गए थे। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं कुछ दिनों के लिए उनके पास आऊं। मैंने टोरंटो के लिए अगली ही उड़ान पकड़ ली।

उस शहर में जाना मेरे लिए एक अच्छा परिवर्तन रहा। हम शुक्रवार की शाम घूमने के लिए बाहर चले गए और शनिवार को पूरे दिन बाहर रहे। शनिवार की शाम में मैंने अपनी ईमेल चेक की, तो एंडी का एक मेल था। यह उनका त्यागपत्र था, जिसमें उन्होंने लिखा था कि वे सोमवार से काम पर नहीं आएंगे। सोमवार? उन्हें तो मुझे एक महीने की नोटिस देनी चाहिए थी। मैंने एंडी को फोन किया, किंतु मुझे केवल उनका वॉइस मेल मिला। मैंने उन्हें अपना संदेश भेज दिया, किंतु मुझे उनका कॉल नहीं मिला। उन्होंने नोटिस की अवधि का अनुपालन क्यों नहीं किया?

तब मुझे यह याद आया कि उन्होंने ठीक उसी तरह मुझे छोड़ा, जिस तरह मैंने 1998 में टीटीए छोड़ा था। यह मेरे ही कर्म का हिसाब था। मुझे तुरंत ही अपने ग्राहक और अपने कर्मचारियों की याद आई। मैं उन्हें किस तरह वेतन दे सकूंगा? मुझे तुरंत ही सिडनी जाना होगा। वहां के लिए कोई सीधी उड़ान उपलब्ध न थी, इसलिए मैं तीन बार विमान बदल कर वहां पहुंचा।

यह अक्तूबर 2004 था और इस तरह मैं पिछले सात महीनों से सिडनी से बाहर था। सिडनी पहुंचकर मैंने पाया कि वहां की स्थिति मेरी अनुमान से बहुत ज्यादा बुरी थी। एंडी का त्यागपत्र तो अंतिम चीज थी, मेरी अनुपस्थिति में और भी बहुत कुछ घट हो चुका था। हितों के सीधे टकराव में एंडी ने मेरे ग्राहकों को वही सेवाएं अपनी कंपनी से देने की पेशकश कर दी थी। यह अफवाह फैल चुकी थी कि मेरी कंपनी दिवालिया हो चुकी है। यह सोचकर मेरे प्रमुख ग्राहकों ने तुरंत ही अपनी कंपनी बदल ली कि अब उन्हें मेरी कंपनी से तकनीकी समर्थन नहीं मिल सकेगा। कुछ कंपनियों ने तो सीधे एंडी की कंपनी से अनुबंध कर लिए और सभी संभावित ग्राहक हमारे पास आने से कट गए।

जब मैं इन सबसे अनजान अमेरिका में इक्विटी पूंजी बढ़ाने पर लगा था, तो इधर ऑस्ट्रेलिया में चुपचाप एक तूफान सा चल रहा था। मैंने नुकसान को कम से कम करने की कोशिश करते हुए अपने ग्राहकों से मिला, किंतु उन्हें वापस ला पाना बहुत कठिन था। इस इंटरनेट युग में सात महीनों तक अनुपस्थित रहना सत्तर वर्षों तक बाहर रहने के बराबर था और मेरे ग्राहकों ने मुझमें अपना भरोसा खो दिया था।

मेरे एक ग्राहक, बेगा चीज नामक एक डेरी कंपनी, ने मेरा साथ दिया और उन्होंने मुझे काम जारी रखने को कहा। हालांकि वे एक छोटे ग्राहक थे, पर मैं खुश था कि मेरे पास दूसरों को बताने के लिए एक सक्रिय ग्राहक तो था। मुझे यह भी पता था कि देर-सवेर मुझे और भी प्रोजेक्ट मिल जाएंगे, पर भारत में अपना कार्यालय कार्यरत रखने के लिए मुझे तत्काल पैसों की जरूरत थी। मेरी तकनीकी टीम इसी कार्यालय में गठित थी, जिनके बगैर मैं काम नहीं कर सकता था। इसलिए मैंने यह तय किया कि मैं अपने घर समेत अपनी परिसंपत्तियां बेच दूंगा।

वैसे भी, मैं अपने परिदृश्य में परिवर्तन की तलाश में था और मैंने पाया कि यह इस दृश्य से अलोप होने का अच्छा अवसर था। कनाडा मेरी अगली मंजिल था। मैं अपना व्यवसाय एक बड़ी अर्थव्यवस्था में खड़ा करना चाहता था। इस समय तक राजन भैया की शादी हुए एक वर्ष से ज्यादा समय बीत चुका था। उनकी पत्नी एक कमाल की महिला थी, जिनका नाम पूजा था। मैं उन्हें पीबी कहा करता, जो पूजा भाभी का छोटा रूप था। पीबी मेरे लिए एक मां जैसी थीं, 'जो हर कदम पर मेरा खयाल रखतीं।' राजन भैया और पीबी मिलकर मेरे लिए रीढ़ की हड्डी जैसे थे। ऑस्ट्रेलिया में हम तीनों एक साथ रह चुके थे। जब मैंने यह तय किया कि मैं अब कनाडा में रहूंगा, तो उन्होंने कहा कि वे भी मेरे साथ आएंगे।

'आप लोग मेरे कारण वहां मत जाइए,' मैंने विरोध किया, 'आप लोगों के लिए यहां सब कुछ कितना ठीक चल रहा है।'

'नहीं, अमित। जहां तुम रहोगे, हम भी वहीं रहेंगे। हम सभी साथ रहेंगे,' पीबी ने स्नेह से कहा।

'मेरी चिंता मत कीजिए। मैं ठीक हूं। मैं मजाक नहीं कर रहा। यह भी कोई तय नहीं है कि मैं कनाडा में ही रहूंगा। ज्यादा संभावना है कि मैं अमेरिका चला जाऊंगा।'

'कोई बात नहीं। फिर भी हम लोग वहां तुम्हारे निकट तो होंगे।'

'मगर आप लोग अपनी नौकरी छोड़कर ऐसा बड़ा फैसला क्यों ले रहे हैं?'

'देखो, अमित, हालांकि तुम्हारे लिए मेरे दिल में सम्मान है, फिर भी तुम मेरे छोटे भाई हो। मैं तुम्हारी देखभाल के लिए चिंतित हुए बगैर नहीं रह सकता। मुझे पता है कि तुम अपना व्यवसाय फिर से खड़ा कर सकते हो। मैं इसमें तुम्हारा सहयोग करना चाहता हूं। मैं रहने के सारे खर्चे उठाऊंगा।'

'क्या आप दोनों ने तय कर लिया है कि आप कनाडा चलना चाहते हैं?'

'हां,' उन्होंने एक स्वर में कहा। 'जहां तुम हो, वहीं हम हैं। दूसरी कोई चीज अहम नहीं है।'

मैं दिल खोलकर हंसा। 'तब ठीक है, आप लोग भी अपनी कमर कस लीजिए। हम लोग कनाडा में बहुत मज़ा करने वाले हैं।'

तब पीबी ने पूछा, 'मुझे ईमानदारी से बताओ, इन दिनों तुम तनाव में हो, है न?'

'क्या आप सच जानना चाहती हैं? क्या आप मुझ पर यकीन करेंगी?'

'बिलकुल।'

'तो गौर से सुनिए। सच्चाई यह है कि मैं बहुत राहत महसूस कर रहा हूं। सिडनी की वापसी उड़ान में मैंने तनाव भरी बातों पर सोचना छोड़ दिया और जो कुछ अतीत में हो चुका, उससे मैं चिंतित नहीं हो सकता। मैं खुश हूं, क्योंकि मैं एक बार फिर आजाद हूं और मैं फिर से कुछ खड़ा करने को तैयार हूं। मैंने हमेशा ही कुछ बनाने में उसे चलाने से ज्यादा आनंद महसूस किया है। मुझे ठीक-ठीक पता है कि अब मुझे क्या करने की जरूरत है। सच तो यह है कि मैं अगले साल जो कार खरीदने जा रहा हूं, मैंने उसके विषय में भी सोचा है।'

'अरे, क्या सच में!' मैं जो भी कहूं या करूं, उसे लेकर पीबी हमेशा बहुत उत्साहित रहती थीं। भैया ने अविश्वास से अपना सिर हिलाया।

'बोलो, बोलो, अगले साल तुम कौन-सी कार खरीदोगे?'

'मैंने अपना लैपटॉप उन दोनों की ओर घुमा दिया।

'वाह, क्या बात है! एक पोर्श!' पीबी ने उत्साह से ताली बजाई।

'हां, मैं तो उसका मॉडल भी चुन रहा था।'

'हां, मैं जानती हूं कि तुम उसे ले लोगे,' पीबी ने कहा।

'अगर तुम बुरा न मानो, अमित, तो क्या हम हकीकत पर वापस लौटें?' भैया ने कहा। 'अभी-अभी हमने अपना घर और वैसी सारी चीजें बेची हैं, जिनका कुछ अस्थायी मोल था। हमलोग यहां एक गंभीर परिस्थिति में हैं। क्या तुम्हें ऐसा नहीं लगता कि हमें थोड़ा व्यावहारिक होना चाहिए?'

मैं फिर हंसा। 'बस मुझ पर नजरें जमाए रखिए, भैया, मेरे एक्शन में आने तक इंतजार कीजिए। अगले साल के अंत के पहले, मेरा यह वादा रहा कि सील जैसे धूसर रंग वाली यह आलीशान कार मेरे पास आ चुकी होगी। ऐसी कार नहीं, जिसे फाइनेंस, किराए अथवा लीज पर लिया गया हो, बल्कि यह पूरी तरह अपनी कार होगी।'

'मुझे पता है। यह इसे करके रहेगा।,' पीबी ने एक बार फिर चहक कर कहा।

'तुम दोनों अविश्वसनीय हो,' राजन भैया हतप्रभ से बुदबुदाए।

'ठीक है, हम लोग अगले साल फिर इस विषय पर आएंगे, तब आप मुझसे बात कीजिएगा,' मैंने कहा।

'सिंह घायल जरूर हुआ है, मगर शिकार करना भूला नहीं है,' भैया ने कहा।

'पोर्श, भैया, पोर्श। अगले साल। हम लोगों के घर में पार्क की हुई पोर्श। चलो ठीक है, मैं इस वादे का जश्न मनाना चाहता हूं। मैं हमारी कार और नए घर का अग्रिम जश्न मनाना चाहता हूं। पीबी, आप अपना वह काला लिबास पहन लीजिए। हम इस शहर में उपलब्ध सबसे लजीज इतालवी व्यंजन खाने चलेंगे।'

पहले राजन और पीबी कनाडा गए। मुझे चीजों को समेटने के लिए कम से कम छह सप्ताहों तक रुके रहना था। मैंने एक छोटे, कम अवधि के अनुबंध की तलाश शुरू की, ताकि अपने वक्त का बेहतर इस्तेमाल कर सकूं। छह सप्ताह एक काफी छोटी अवधि थी, पर मैं अब एक

भी क्षण व्यर्थ नहीं गवाना चाहता था। मुझे एक बार फिर से अपने पैरों पर खड़े हो अपनी आजीविका कमानी थी। यह एक दूसरा अवसर था, जिसे जिंदगी ने मेरी राह में डाल दिया था और तब मैं आसानी से इस संसार से संन्यास ले सकता था। सच तो यह है कि एक बार तो मुझे इसका लालच भी हो आया। मगर मन ही मन मुझे इसकी साफ समझ थी कि इस वक्त ऐसा करना पलायन होगा। फिर यह एक सच्चा संन्यास भी नहीं होता, क्योंकि जब मेरे पास कुछ भी पैसा न हो, तो फिर मेरे पास त्यागने को था ही क्या? मैं इसलिए भी एक बार फिर शून्य से शुरुआत करना चाहता था, ताकि मैं स्वयं को यह सिद्ध कर सकूं कि मेरी पहली बार की कामयाबी कोई संयोग न थी। मैं यह निश्चित करना चाहता था कि मेरे पास अपनी तकदीर स्वयं लिखने की क्षमता और आत्मविश्वास वास्तव में मौजूद था।

कुछ ही दिनों बाद, न्यू साउथवेल्स पुलिस (एनएसडब्ल्यूपी) ने पुलिस अनुसंधान प्रणाली पर बन रहे एक सॉफ्टवेयर निर्माता टीम के नेतृत्वकर्ता के एक वरीय पद की पेशकश की। यह तीन महीनों का एक अनुबंध था, जिसका तीन अतिरिक्त महीने तक विस्तार हो सकता था। इसका यह अर्थ था कि मुझे छह महीनों तक वहां रुके रहना था।

उन अतिरिक्त महीनों तक रुकने से मेरी ऑस्ट्रेलियाई नागरिकता की शर्त भी पूरी हो गयी। मुझे ऑस्ट्रेलिया के प्रति एक वफादारी का अनुभव होता था, क्योंकि इस देश ने मुझे अपना विकास करने, अपनी पांखें तोलने और ऊंची उड़ान भरने के मौके दिए थे। इसने मुझे गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और उपयुक्त सामाजिक तथा पेशेवर माहौल भी दिया।

यह मेरे व्यवसाय को एक नए सिरे से जमाने, नए ग्राहकों से अनुबंध करने तथा एक बार फिर से अपना आत्मविश्वास हासिल करने का भी मौका था। मैंने एनएसडब्ल्यूपी द्वारा मुझे पेश की गई भूमिका स्वीकार कर ली। अपनी डायरी के पन्ने पलटते हुए मैंने जिस किसी भी परिचित का संपर्क सूत्र पाया, उसे फोन किया और उनसे मुझे कई हजार डॉलर मूल्य के मौके मिले। मैंने कुछ अन्य ग्राहकों से भी अनुबंध किए।

सात ही महीने बाद, जुलाई 2005 में मैं फिर से एक करोड़पति होकर कनाडा चला गया। एक ही सप्ताह बाद कनाडा के हमारे चार कमरों के घर के गेराज में सील जैसे धूसर रंग की पोर्श के एक सर्वोत्तम कारेर्रा 4एस मॉडल की कार खड़ी थी। मैंने अपने व्यवसाय के विकास के लिए एक मार्केटिंग मुहिम शुरू की और पांच सप्ताह के अंदर सात नए ग्राहकों से अनुबंध किए। ऑस्ट्रेलिया में मेरे ग्राहकों को अब मेरी एक एसोसिएट कंपनी देख रही थी। मैंने भारत में अपने ग्राहकों का एक आधार तैयार किया और अमेरिका में भी कुछ छोटे-छोटे ग्राहक तैयार किए। नकदी आ रही थी, अच्छा मुनाफा हो रहा था और मैं एक बार फिर व्यवसाय में मजबूती से पैर जमा रहा था।

अब मैंने एक अवकाश लेने की सोची और इसके लिए अपनी पोर्श लेकर निकल जाने से बेहतर और कोई उपाय नहीं हो सकता था। मैंने पूर्वी तट के विस्तार में फैले चार सप्ताहों के एक भ्रमण मार्ग पर जाने का फैसला किया। मैंने अपना फोन बंद किया और बस गाड़ी चलाता रहता और वहीं रुकता, जहां रुकने की तबीयत होती। ओंटारियो के गोल्फ रिसोर्ट से लेकर पूर्वी शहर क्यूबेक के स्पा रिसोर्ट तक, फिर बोस्टन और वहां से वापसी की यात्रा के

दौरान मैंने बहुत सारी जगहों के भ्रमण किए। किंतु ये इस भ्रमण के मुख्य बिंदु न थे। न्यूयॉर्क के अपने रास्ते में मुझे सीमा से ज्यादा रफ्तार में ड्राइव करने की वजह से दंड की पर्ची भी मिली और मैंने खुद से यह वादा किया कि बाकी यात्रा के दौरान मैं अनुशासित व्यवहार करूंगा। मगर यह एक ऐसा वादा था, जो तुरंत ही टूट गया। किंतु इस यात्रा ने मुझे जीवन भर का एक अनुभव दिया, जिसे मैं कभी भी भुला नहीं पाऊंगा।

यह वरमोंट के एक हाइवे पर हुआ। नहीं, यह कोई दुर्घटना नहीं थी, पर मुझे ऐसा लगा कि मैंने एक मिनट के लिए अपना होशोहवास खो दिया, एक्सेलरेटर पर अपना पांव दबाया और 280 किमी प्रति घंटे की रफ्तार पर पहुंच गया। मेरी आंखें सामने के रोड पर जमी थीं और बगल से गुजर रही धुंधली सी दृश्यावलियों पर नजर डालने का अवकाश न था। मुझे याद है कि अपनी रफ्तार कम कर उसे वापस वैधानिक सीमा के अंदर लाने के बाद मैं आइंस्टाइन के विषय में सोच रहा था। तब समय वस्तुतः सापेक्ष हो गया था। हालांकि 280 किमी प्रति घंटे की उस रफ्तार पर मैं तीस सेकेंड से ज्यादा नहीं रहा होऊंगा, पर मुझे ऐसा महसूस हुआ जैसे उस दौरान मैं एक पूरी जीवन अवधि से गुजर गया। उस रोमांच के केंद्र में एक गहरा भय भी छिपा था। यदि एक क्षण के लिए भी मेरी एकाग्रता भंग होती, तो उसका नतीजा भयावह हो सकता था। मगर उस रोमांच की आशा मेरी विचारशक्ति पर पूरी तरह हावी हो चुकी थी। मुझे स्मरण है कि मैंने एक्सेलरेटर को पूरी तरह दबा देने के लिए बाध्य जैसा महसूस किया था।

दिलचस्प बात यह थी कि उस तीव्र तथा अवैधानिक रफ्तार पर मुझे एक शाश्वत और सच्ची अनुभूति हुई - असाधारण शांति तथा उल्लेखनीय सचेतनता की अनुभूति। यही वजह थी कि हर एक क्षण मुझे उतना लंबा लगा। वे पल अत्यंत सघन शांति से भरे थे। मैंने जितनी ही ज्यादा गति पकड़ी, मुझे उतनी ही शांति की अनुभूति हुई।

दो सप्ताह बाद मैंने भैया को यह बताने के लिए अपना फोन ऑन किया कि मैं ठीक हूं और यह पाया कि कई वॉइस मेल मेरी प्रतीक्षा कर रहे थे। उनमें से एक में मेरी बहन के गंभीर रूप से अस्वस्थ होने की चिंताजनक खबर भी थी। वे मुझसे मिलना चाह रही थीं। मुझे यह जानकर बहुत बुरा लगा। मैंने अपना फोन ऑफ कर रखा था कि मेरे आनंद में बाधा न आए और उधर मेरी बहन को जब मेरी जरूरत थी, तो मैं उपलब्ध नहीं था।

मैंने पहले मां से बातें कीं और फिर दीदी को फोन किया। वे अस्पताल में भरती थीं। एमआरआइ की जांच से यह पता चला था कि उनके मस्तिष्क में कैंसर था। मैंने अपनी बाकी छुट्टी रद्द की, सारे काम ताक पर रखे और भारत के लिए अगली उड़ान पकड़ ली। जैसे ही मैं दिल्ली पंहुचा, तुरंत पटियाला के लिए प्रस्थान कर गया।

दीदी ने मुझे कसकर चिपटा लिया और रो पड़ीं, 'मुझे बराबर तुम्हारी याद आती रही। मैं हर पल तुम्हारे ही बारे में सोचती रही। मैं केवल एक बार तुम्हारी आवाज सुनने के लिए बेचैन थी।'

'मुझे बहुत अफसोस है, दीदी, मैंने कुछ दिनों के लिए अपना मोबाइल ऑफ कर दिया था।'

‘क्या मैं ठीक हो जाऊंगी?’

‘सिर्फ ठीक? मेरा वादा है कि आप पहले से भी बेहतर हो जाएंगी।’

‘मुझे बस दक्ष की चिंता है, वह अभी सिर्फ आठ वर्ष का है। उसे मेरी जरूरत है,’ वे सिसकने लगीं।

‘आप ऐसी बातें क्यों कह रही हो, दीदी? मैं आपको वचन देता हूं कि सब बिलकुल सही हो जाएगा। आपको कुछ भी नहीं होगा। आखिर मैं यहां हूं किसलिए? मैंने उनका माथा चूमा, उसके ललाट और कपोल चूमे और उससे तब तक कसकर जप्फी दी, जब तक वे शांत न हो गईं। मैंने उन्हें वचन दिया कि जब तक वे पूरी तरह ठीक नहीं हो जाएगीं, मैं भारत नहीं छोड़ूंगा।

मेरे जीजाजी, सुवी, के साथ उन्हें लेकर मैं दिल्ली गया। वहां पर मुख्य न्यूरोसर्जन ने तुरंत ऑपरेशन करने की सलाह दी। ‘इसमें जीवन से हाथ धोने की 1 प्रतिशत आशंका, याददाश्त खो देने की 2 प्रतिशत और दृष्टि खोने की आशंका 13 प्रतिशत होती है,’ सर्जन ने कहा। ‘आपको यहां अपने दस्तखत करने की जरूरत है, ताकि आप यह प्रमाणित करें कि आपने यह बात समझ ली है और आपको यह स्वीकार है।’

सर्जन के चेहरे पर आत्मविश्वास था, परंतु वहां कोई दिलासा अथवा भावना न थी। सुवी की आंखों में भय तथा चिंता व्याप्त थी। जीवन में पहली बार मुझे अपने पेट में एक अजीब-सी खलबली महसूस हुई। मैंने पहले भी असहाय महसूस किया था, पर यह कुछ अलग था। यदि अभी कुछ गड़बड़ हुआ, तो फिर स्वस्थ होने की, सब कुछ सही होने की कोई संभावना न थी। इस स्थिति पर मेरा कोई बस नहीं था और न मेरे पास कोई चिकित्सकीय अंतर्दृष्टि थी। पर मेरे पास एक चीज थी, जिसने मुझे इसका साहस दिया कि उस सहमति पत्र पर सुवी द्वारा दस्तखत करते वक्त मैं उनके कंधे पर अपना हाथ रखकर उन्हें हिम्मत बंधा सकूं। आस्था। मेरे पास केवल यह आस्था थी, क्योंकि मुझे यह पता था कि अभी दीदी का वक्त नहीं आया था।

मुझे याद है कि जब ऑपरेशन थियेटर में जाते समय दीदी ने मुझे अपने से लिपटाया तो मैं किस तरह भीतर ही भीतर टूट गया था। जब उन्होंने मेरी ओर देखते हुए चुपचाप अपने हाथ हिलाए, तो उसकी आंख के कोने से आंसू की एक बूंद लुढ़क पड़ी। बाद में, आइसीयू में, उसके मुंडे हुए सिर और उनके पीले पड़े गोल चेहरे पर बड़ी-बड़ी आंखों के साथ वे एक सुंदर बौद्ध भिक्षुणी की तरह दिखती थी। मैं नहीं भूल सकता कि अस्पताल के अपने कमरे में लाए जाने पर फूलों से भरे उस कमरे को देखकर वे कैसे एक शिशु की तरह मुस्करा उठी थीं। लेकिन एक स्मृति जो आज भी मेरे मन में बसी है, वह उस समय की है, जब दीदी स्वस्थ होकर वापस घर आ गईं और एक बार फिर उसके जीवंत ठहाकों से घर गूंज उठा।

तीन महीने बाद मैं वापस कनाडा लौटा। एक बार फिर वहां की गतिविधियों में योगदान कर कई नए ग्राहकों से अनुबंध किए। उसके बाद मैं एक बार फिर सिलीकॉन वैली चला गया, ताकि अपने पुराने संपर्क सूत्र ताजा कर नए ग्राहक हासिल कर सकूं और अपने नए व्यवसाय के लिए निवेशक ढूंढ़ सकूं। मुझे कई कमाल के लोगों से मिलने और प्रतिभाशाली

मस्तिष्क के लोगों के साथ प्रेरक बातचीत करने के मौके मिले। कीथ और मैंने हर रविवार को मिलना जारी रखा।

एक दिन मुझे अतुल शर्मा नामक एक व्यक्ति से एक मेल मिला। पेशेवर संदर्भ में मैं अतुल को उन दिनों से जानता था, जब मैं न्यूयॉर्क में था और वे लेहमन ब्रदर्स में वाइस प्रेसिडेंट थे। अभी वे लंदन के बार्कलेज बैंक में एक वरीय एक्जीक्यूटिव थे। अतुल ने अपनी एक आगामी योजना के विषय में लिखा था, जिसमें अग्रणी वेब टेक्नोलॉजी के साथ बड़े बैंकिंग प्रोजेक्ट शामिल थे। उनके एजेंडे में सबसे ऊपर इनोवेशन इंजीनियरिंग थी। वे एक ऐसा सॉफ्टवेयर चाहते थे, जो विभिन्न अंशधारकों के बीच आतंरिक तथा बाहरी संवाद संभव बना सके। हमने उन्हें अपने सर्च प्रोडक्ट का एक ऑनलाइन नमूना दिया और उन्हें तुरंत ही उसकी संभावनाएं नजर आ गईं। यह प्रोडक्ट डाटा भंडारण तथा व्यावसायिक बुद्धिमत्ता को एक बिलकुल नए स्तर तक ले जा सकता था।

अतुल ने मुझे लंदन में अपना एक ठिकाना स्थापित करने को कहा। वे एक तीव्र बुद्धि और अविश्वसनीय लगन के व्यक्ति थे और उनकी तरह के ग्राहक हमारे जैसी कंपनी के लिए बहुत अहम थे। लंदन में रहने का एक फायदा यह भी था कि मैं यूरोपीय बाजारों की भी पड़ताल कर सकता था, क्योंकि मेरे पास डेनमार्क, नॉर्वे और हॉलैंड में पहले से ही कुछ छोटे ग्राहक मौजूद थे। दिसंबर 2006 में मैं लंदन चला गया। बार्कलेज हमारा एक प्रमुख ग्राहक सिद्ध हुआ, किंतु यह संबंध ज्यादा दिनों तक नहीं चल सका, जिसकी वजह बार्कलेज के प्रबंधन में अचानक आए एक परिवर्तन के साथ वित्तीय बाजार में छाया संकट था। यह जून 2007 की घड़ी थी।

अब जाकर मैंने विराम लिया और अपनी परिस्थिति का एक सिंहावलोकन किया। मुझे अब भी अपने अस्तित्व की सच्चाइयों की पड़ताल करनी थी। ईश्वर से मिलन की मेरी इच्छा पूरी होनी शेष थी। अभी मैं जो जीवन जी रहा था, वह अच्छा था, वह सत्य भी था, पर केवल यही एक सत्य नहीं था और वह शाश्वत सत्य तो निश्चित रूप से नहीं था, जिसे पाने की मुझे लालसा थी। अब भारत लौटने की घड़ी आ गई थी। ईश्वर को पाने की घड़ी आ गई थी।

मैंने अपनी पोर्श बेच दी और उसके पैसे ऑस्ट्रेलिया के अपने कुछ परिचित इस्कॉन भक्तों को दे दिया। जिस तरह मैंने अपनी अन्य चीजों के आनंद उठाए, उसी तरह इसका भी आनंद उठा चुका था। मैं इससे इनकार नहीं करूंगा कि मैं अपने धन तथा अपनी विलासितापूर्ण जीवनशैली का पूरा लाभ उठा चुका था। न्यूयॉर्क के डब्ल्यू होटल के सुइट तथा दुबई के रॉयल मिराज में ठहरने, लंदन के रिज कार्लटन में 'हाई टी' लेने, सन फ्रांसिस्को के शाकाहारी व्यंजनों, वेनिस के पास्ता और पेरिस में मिठाइयों के स्वाद लेने का अपना एक अलग ही आनंद था।

बिजनेस क्लास में सफर का कुछ वैसा ही मजा था, जैसा स्विट्जरलैंड के पर्यटन स्थलों, कैलिफोर्निया के स्पा रिसॉर्ट, ऑस्ट्रेलिया के सागर तट और न्यूजीलैंड के पहाड़ों का। मुझे अपने लिए एक रसोइया, एक सफाईकर्मी तथा मेरे डिजाइनर कपड़ों की धुलाई करनेवाले को रखना पसंद आता था। मैं अपने कस्टमाइज्ड बिजनेस सूटों को अत्यंत ऊंचे किस्म के

सूती शर्टों के साथ पहनता, जिनके साथ ग्रेफाइट मेटल और सफायर ग्लास की मेरी शानदार घड़ियां मिलकर मेरे पहनावे को सुरुचिपूर्ण बनातीं। मेरे 'वार्डरोब' में वर्सेस, अरमानी, प्रादा, वल्गरी, टैग ह्यूर, लोंगींस, मॉन्ट ब्लांक... की नवीनतम पोशाकें सजी होतीं।

फिर भी संपदा कभी मेरी प्राथमिकता नहीं रही। चाहे वह बड़ा हो अथवा छोटा, एक बार उपलब्ध हो जाने पर एक लक्ष्य सिर्फ एक अनुभव में और फिर केवल एक स्मृति में बदल कर रह जाता है। मेरी विलासितापूर्ण जीवनशैली मेरी यात्रा में केवल एक साधन थी। मैं अच्छी तरह जानता था कि भौतिक सफलता ने मुझे वह नहीं बनाया था, जो मैं वस्तुतः था। यह किसी भी तरह मेरा अस्तित्व तय नहीं करती थी। और मैं अब इन सबको छोड़ देने को तैयार था।

किंतु शायद प्रकृति अब भी इसके लिए तैयार न थी। भारत लौटने से पूर्व मैं लंदन से एक छोटे अवकाश के लिए कनाडा गया। वहां विवेक धूमे नामक एक व्यक्ति से मेरी मुलाकात हुई, जो राजन के परिचित थे। वे एक नजर में ही मुझे पसंद आ गए।

'यह मेरा सपना है कि मैं भारत में कुछ करूं,' उन्होंने हमारी पहली ही मीटिंग में कहा।

मैंने कहा, 'अच्छा, मैं तो अब स्थाई रूप से भारत जा रहा हूं।'

'क्या आप वहां कोई व्यवसाय करोगे?'

'वैसी कोई योजना नहीं है। मैं बस एक अवकाश लेना चाहता हूं। खुद को व्यस्त रखने के लिए शायद मैं कुछ स्टॉक ट्रेडिंग करूं।'

'अच्छा, क्या यह बेहतर नहीं होगा कि हम भारत के लिए कुछ करें?' उन्होंने कहा।

'हां, पर मेरा लक्ष्य कुछ अलग है।'

'क्या आप उसे मुझे बता सकते हो?'

'हम कल भोजन पर मिलें, तो कैसा रहेगा?'

अगले दिन हम जेन गार्डन नामक एक शांत रेस्तरां में मिले, जहां अत्यंत स्वादिष्ट शाकाहारी व्यंजन मिला करते थे।

'देखो, विवेक, मैं वित्तीय रूप से सुरक्षित हूं और मुझ पर अपनी आजीविका के लिए काम करने का दबाव नहीं है। भौतिक सुख-सुविधा के मामले में मैं जो कुछ भी पाना चाहता था, वह सब पा चुका हूं और उस दिशा में मेरी और कोई इच्छा शेष नहीं है। अब मैं अपना जीवन स्वयं की खोज तथा आत्मसाक्षात्कार में लगाना चाहता हूं। मैं अब सब कुछ त्याग कर एक संन्यासी बन जाना चाहता हूं।'

विवेक ने खाना रोक दिया। रेस्तरां में केवल हम दो ही ग्राहक थे। वहां पूरी तरह से शांति छा गई।

'आपका मतलब है कि आप कुछ उसी तरह सारी चीजें त्याग दोगे, जिस तरह संन्यास लेने में किया जाता है और एक साधु हो जाएंगे?'

'जी हां।'

एक लंबी चुप्पी के बाद उन्होंने पूछा, 'आप ऐसा कब करोगे?'

मैं प्रसन्न था की उन्होंने कोई कारण नहीं पूछा, क्योंकि उसका कोई उत्तर न था।

'मैं इसकी तिथि तो नहीं बता सकता, पर इतना जरूर कह सकता हूं कि यह तीन वर्षों के भीतर होगा।'

'आपका मतलब है कि तुम वस्तुतः सारी चीजें छोड़कर गेरुए वस्त्र धारण कर लेंगे?'

'जी।'

'परंतु अगले तीन वर्षों में क्या करेंगे?'

'मैं अपने माता पिता के साथ कुछ समय बिताने भारत जा रहा हूं।'

'तो, आप कोई काम नहीं करोगे?'

'जल्दी ही मैं अट्ठाइस वर्षों का हो जाऊंगा और मैं तीस वर्षों तक काम करने को स्वतंत्र हूं। वास्तविकता यह है कि मैंने अब तक एक खासी बचत कर ली है और मुझे इसे किसी नए व्यवसाय में लगाने में कोई ऐतराज नहीं है, क्योंकि वैसे भी मुझे तो इसे छोड़ ही देना है। बेहतर होगा कि मैं इसे दूसरों के लिए रोजगार का सृजन करने के किसी उद्यम में लगा दूं, बजाए इसके कि इसे ऐसे ही छोड़ दूं।'

'किंतु आपने इसे अर्जित ही क्यों किया, यदि आपको यह पता था कि एक दिन तुम्हें इसे छोड़ ही देना है?'

'मैं इसे अर्जित करने पर कभी एकाग्र नहीं हुआ, विवेक। मैं केवल अपना कर्म कर रहा था, अपना व्यवसाय बढ़ा रहा था और मुझे इसमें आनंद आ रहा था। पैसा मेरा लक्ष्य नहीं था, यह तो बुद्धिमत्ता से लिए गए फैसलों का परिणाम मात्र था। अब मैं एकांत में जाना और सघन साधना करना चाहता हूं।'

'क्या आप कभी अपनी साधना से वापस नहीं लौटोगे?'

'मैं लौटूंगा। परंतु मुझे यह नहीं मालूम कि ऐसा कब होगा। यह इसपर निर्भर होगा कि मुझे अपनी भावातीत दशा प्राप्त करने में कितना लंबा समय लगता है।'

'जब आप वापस आओगे, तो क्या आपको रहने के लिए एक स्थान की जरूरत नहीं होगी?'

'हां, होगी।'

'जब आप लौटेंगे तो रहने आदि पर भी व्यय होगा?'

'जी, सही कहा।'

'तो, क्यों नहीं हम भारत में कुछ खड़ा करें? हम बराबर-बराबर निवेश करें। आप अपनी योजना के मुताबिक संन्यास लो, किंतु आप वापस आते हो, तो आपके व्यवसाय से आपको एक निश्चित धनराशि मिलती रहे,' उसने प्रस्ताव किया। 'हम पहाड़ों में आपके लिए एक छोटी-सी जगह बना दें।'

यह विचार अच्छा लगा। इस तरह मैं हमेशा स्वतंत्र रह सकता था। मैंने पूछा, 'व्यवसाय कौन संभालेगा? मैं इसे स्थापित कर मुनाफा कमानेवाला तो बन सकता हूं, पर इसे चलाने के लिए तो मैं वहां रहूंगा नहीं।'

'मैं इसे चलाऊंगा।'

'आपका मतलब है कि आप भारत चले जाओगे?'

‘हां।’
‘अपने परिवार के साथ?’
‘बिलकुल।’
मैं अपने विचारों में खोया टोफू खाता रहा, जबकि विवेक मुझे गौर से देखता रहे। कुछ देर तक हममें से किसी ने भी कुछ नहीं कहा।
मैंने कहा, ‘आप यह समझ लो कि मैं कहीं चला जाऊंगा और तभी वापस लौटूंगा, जब मुझे अपने लक्ष्य की प्राप्ति हो जाएगी।’
‘मुझे आप पर पूरा विश्वास है।’
‘हम एक दूसरे के प्रति स्पष्ट रहें, तो यह बेहतर होगा,’ मैंने कहा। ‘जैसे ही व्यवसाय मुनाफा देने लगेगा, मैं इसे छोड़ दूंगा।’
‘ठीक है।’
‘मैं अपनी दौलत आपको उपहार के रुप में दे दूंगा।’
वे अवाक हो गए। अंततः जब वे कुछ कहने की स्थिति में आए, तो उन्होंने कहा, ‘मुझे क्यों, अमित? क्यों नहीं इसे अपने परिवार के लिए छोड़ जाओ?’
‘मैं समझता हूं कि आपसे एक दिन इसका उत्तर मिल जाएगा।’
‘नहीं। मैं आपसे इतना ज्यादा नहीं ले सकता।’
‘मैं यह निर्णय कर चुका हूं, विवेक।’
‘खैर, हम इसे बाद में देखेंगे।’
‘नहीं, मैं गंभीरता से कह रहा हूं। मैं उचित रूप से त्याग करना चाहता हूं। इसे हमें अभी तय करना होगा। जब एक बार मैं चला जाऊं, तो कृपया मुझे इस व्यवसाय का एक हिस्सा मत समझना।’
वे फिर मौन हो गए। मुझे पता था कि न तो मेरी कोई ऐसी योजना थी, न ही विवेक की। काम करने का यह प्रकृति का अपना तरीका था। और किस तरह से इसकी व्याख्या की जा सकती थी कि दो व्यक्ति पहली बार मिल रहे हों और न केवल अपनी वित्तीय स्थिति साझा कर रहे हों, बल्कि अपनी पूरी बचत भी दे देने का संकल्प व्यक्त कर रहे हों? हमने मुख्य भोजन करते समय अपनी बातें शुरू की थीं और, अंत में, मिठाइयों का ऑर्डर देने के पहले हर चीज तय हो चुकी थी।

अध्यय सात
संन्यास

अगले ही दिन विवेक और मैं अपने काम की बारीकियां तय करने के लिए मिले। हम दोनों ने यह फैसला तो कर लिया था कि हम साथ-साथ कुछ करेंगे, पर दोनों में किसी को यह पता न था कि आखिर हम करने क्या जा रहे थे। उनकी सलाह थी कि सॉफ्टवेयर के मेरे व्यवसाय को आगे बढ़ाया जाए, किंतु पिछले दस वर्षों से यही करते हुए मैं सॉफ्टवेयर से ऊब चुका था।

हम जिस कैफे में बैठे थे, वह ग्राहकों से भरा था और वहां काफी शोरगुल हो रहा था। हमने सोचा कि क्यों न बाहर निकल टहलते हुए कोई शांत सी जगह तलाशी जाए। कुछ ही आगे एक जूसबार मिला, जहां कोई ग्राहक न था। हम वहीं बैठ गए और हमने दो पेय लाने का ऑर्डर किया।

विवेक ने अपनी नजरें चारों ओर फिराईं और वे एकाएक बोल पड़े, 'जानते हैं, भारत में इस तरह का जूसबार कहीं भी नहीं है।'

'मैं तो समझता हूं कि ऐसे जूसबार हैं तो जरूर, मगर केवल बड़े शहरों में।'

'मगर मैंने जूसबार का कोई चेन नहीं देखा है।'

'सड़कों के किनारे तो जूस बेचनेवाले बहुत से ठेले हुआ करते हैं।'

'हां, पर जिन्हें सेहत और सफाई का खास खयाल होता है, उनके लिए ऊंची किस्म के जूसबार की पेशकश कैसी रहेगी?'

'कोई बुरा खयाल नहीं है।'

हम लगभग एक घंटे तक माथापच्ची करते रहे और बगैर कोई मार्केट रिसर्च किए हमने यह फैसला ले लिया कि हमें भारत में जूसबार के एक चेन की शुरुआत करनी है। मुझे नहीं मालूम कि यह पैसे के प्रति हमारा एक लापरवाह नजरिया था या फिर एक दूसरे में हमारा यकीन, जिससे प्रेरित हो हम एक ऐसे व्यवसाय में दांव लगाने चले, जिसके विषय में हमें कोई जानकारी न थी। हम इस पर भी राजी हुए कि मैं भारत में इसकी शुरुआत कर अपनी

टीम खड़ी करूंगा और विवेक इसमें दो वर्ष बाद आ कर शामिल होंगे।

सितंबर, 2007 में मैं वापस भारत आ गया। मेरे माता-पिता उसी पुराने से घर में रह रहे थे और पिताजी अपने उसी पुराने स्कूटर की सवारी कर रहे थे। टीवी, साउंड सिस्टम, फर्नीचर... सभी चीजें पुरानी और कुछ खस्ता हालत में दिख रही थीं। पिछले वर्षों में भी मैं भारत आता रहा था, किंतु इसपर जरा भी गौर नहीं कर सका कि मेरे माता-पिता अपना जीवन किस तरह बिता रहे थे। मैं एक गहरे अपराधबोध से भर उठा। अपनी इतनी सारी संपत्ति के बावजूद मैं अपने माता-पिता के लिए किसी काम का न था।

अब अतीत की भरपाई संभव न थी, पर वर्तमान की खबर तो मैं ले ही सकता था। मैंने उनके लिए एक नया घर, नए फर्नीचर, गैजेट्स और वैसी सभी चीजें खरीद डालीं, जो उन्हें पसंद आ सकती थीं। मैंने उनके लिए दो नई कारें खरीदीं और एक ड्राइवर भी रख दिया। अब उन्हें स्कूटर की सवारी करते हुए देखना मुझे गवारा न था। मगर इन सबके साथ मुझे एक बोध भी हुआ कि कुछ वस्तुएं उन चीजों की भरपाई नहीं कर सकतीं, जिनकी भरपाई करने में वे असमर्थ होती हैं। मेरे पिता एक सीधे-सरल व्यक्ति थे और उन्होंने उन कारों तथा गैजेट्स के प्रति कोई लगाव ना था। वे और मेरी मां अपनी सादी जीवन शैली के अभ्यस्त हो चुके थे। आखिर वे हमेशा उसी तरह से जीते जो रहे थे। उनके लिए मेरे सारे इंतजाम काफी देर से आए और मेरे पिता ने ज्यादातर अपने उसी पुराने स्कूटर का इस्तेमाल जारी रखा। जब मैंने उनसे इस बारे में बात की, तो उनका सरल सा उत्तर था, ‘तुम भारत में रहने वापस आ गए। हमें अब और क्या चाहिए?’

मां ने तो बार-बार यह जताया कि मुझे वापस पाकर और फिर से मुझे अपने हाथों भोजन कराने का अवसर पा कर ही मानो उन्हें सब मिल गया। अपने माता-पिता की इतनी खुशी देख मुझे उनसे यह बताने की हिम्मत नहीं होती कि यह ज्यादा दिन नहीं टिक सकेगी और जल्दी ही एक बार फिर मैं उन्हें छोड़ जाने वाला हूं। मैं उन्हें सिर्फ व्यवसाय की अपनी योजना ही बता सका। हालांकि मेरी मां ने कभी मेरा विरोध नहीं किया और मेरे पिता ने भी हमेशा मेरा समर्थन ही किया था, किंतु मेरी समझ में यह नहीं आ रहा था कि मैं उनके साथ अपनी बात किस तरह शुरू करूं। इसके अलावा, मैं अपने इस नए व्यवसाय को जमाते हुए बहुत व्यस्त भी रहता और कोई ऐसा अवसर ढूंढ़ नहीं पा रहा था, जब उनके साथ यह मुद्दा छेड़ सकूं।

मेरे सॉफ्टवेयर व्यवसाय को कनाडा, ऑस्ट्रेलिया, हॉलैंड तथा यू.एस. के अपने ग्राहकों के साथ अपने वर्तमान तथा सक्रिय अनुबंध पूरे करने थे। मैं अपने नए व्यवसाय पर भी ध्यान देना चाहता था क्योंकि इस बार इसमें सिर्फ मेरी ही नहीं, बल्कि विवेक की भी पूंजी लगी थी। मैं जमकर काम करना और कामयाब होना चाहता था। इस उद्देश्य से मैं उत्तरी अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया और भारत में अपना सॉफ्टवेयर व्यवसाय समेटने में लग गया, जिस प्रक्रिया में अपने ग्राहकों के साथ जारी विभिन्न अनुबंधों की वजह से अठारह महीने का समय लगने

वाला था।

इसी बीच, विवेक और मैंने एक आयुर्वेदिक कंपनी का भी अधिग्रहण कर लिया। इस क्षेत्र के सात शीर्ष चिकित्सकों की टीम बनाकर हमने सात अनूठे स्वास्थ्यवर्धक उत्पादन निकाले। पहले ही अठारह महीनों में कंपनी का नफा-नुकसान बराबरी पर आ गया।

2009 की तीसरी तिमाही में विवेक अपने परिवार के साथ भारत वापस आ गया। कंपनी तेजी से आगे बढ़ रही थी। उस साल के अंत तक यह मुनाफे में भी आ गई। सच तो यह था कि हमारे पास कई मौजूदा ऑर्डर थे और दसियों लाख डॉलर के अनेक ऑर्डर प्रक्रिया में थे। मैंने विवेक को हलके से यह याद दिलाया कि अब मैं जल्दी ही विदा लूंगा।

दो महीने बाद हमने पहाड़ों में ज़मीन का टुकड़ा देखा। विवेक और मैं जमीन के उस टुकड़े पर खड़ा हो सोचने लगा कि अपनी साधना से लौटने के बाद मेरे रहने के लिए यह जगह ठीक रहेगी। मैंने उसे बताया कि अधिक से अधिक मुझे दस छोटे कमरे, एक किचन और एक छोटे कॉटेज के साथ ध्यान के लिए एक हॉल चाहिए होगा। किंतु उन्होंने मुझे एक बड़ा सपना दिखाया।

'हम यहां एक सुंदर सा पैदल रास्ता बनाएंगे, जिसकी दोनों ओर सुगंधित लताएं होंगी। उस रास्ते पर दोनों ओर से वृक्षों के मेहराब होंगे। तेज हवाओं को रोकने के लिए हम चारों ओर पेड़ लगाएंगे और बीच में एक तालाब भी खुदेगा। मैं एक खास तरह का चारा लाऊंगा, जिसे बरतनों में रखकर जब पेड़ों से लटका दिया जाएगा, तो उससे आकृष्ट होकर कई तरह की रंग-बिरंगी चिड़ियाँ यहां आएंगी। ध्यान करने के लिए घास-फूसों की छतों वाली विशिष्ट कुटियां होंगी। यदि यहां हिरण भी इधर-उधर विचरण करते रहें, तो यह और भी सुंदर होगा। यह जगह पृथ्वी पर स्वर्ग सरीखी बन जाएगी।'

हमने उस जमीन का सौदा पक्का कर लिया। पहाड़ों से वापस लौटते वक्त मैंने विवेक से चर्चा की कि कंपनी मुझे कितनी धनराशि मासिक रुप से देगी। हमने इसे 10,000 रुपए मासिक तय किया। टर्म डिपोजिट जैसी किसी कम ब्याज की सुरक्षित योजना में अपनी पूंजी का निवेश करने पर मुझे जो आय हुई होती, यह उसका बस जरा सा हिस्सा, उसके 2 प्रतिशत से भी कम, था। पर यह मेरी जरूरतों के लिए काफी था।

2009 के अंतिम हिस्से में मैं अपने मित्रों तथा परिवार से मिलने ऑस्ट्रेलिया और कनाडा की यात्रा पर चला गया। उस वक्त मां राजन से मिलने के लिए कनाडा में ही थीं। मैं इस भौतिक जगत से विदा लेने के पहले एक बार सबसे मिल लेना चाहता था। मुझे नहीं पता था कि वे फिर कब मुझे देख सकेंगे। एक दिन मैं मां के साथ अकेला बैठा था। 'जानती हैं, मां, मैं जल्दी ही साधना के लिए चला जाऊंगा?' यह सुनते ही उनका चेहरा पीला पड़ गया।

'तुम तो पहले से साधना करते रहे हो, बेटा। तुम सब समय ध्यानस्थ बैठते रहते हो। तुम्हारे पास तो सब कुछ है। फिर तुम बाहर क्यों जाना चाहते हो?'

'तुम ठीक कह रही हो, मां। मगर, ईश्वर न करे, तुम्हें अथवा मेरे किसी अन्य प्रियजन के साथ कुछ अनिष्ट हो जाने पर मुझे जो पीड़ा होगी, वह मेरे लिए बगैर किसी लगाव के अथवा किसी अनजान व्यक्ति के बिछोह से उपजे दुख से कहीं गहरी होगी। इसका अर्थ यह है कि मैं

अब भी आसक्त हूं, अब भी पक्षपात से ग्रस्त हूं। सभी प्राणियों के लिए वही पीड़ा, वही प्रेम महसूस करने के लिए, सबके लिए पक्षपात से रहित होने, या दूसरे शब्दों में, सबके लिए शर्तविहीन प्रेम से भरे होने के लिए मुझे कुछ समय एकांत में रहने की जरूरत है। इसके अलावा, ईश्वर की जो झलक मुझे पहले दिखी, वह एक सपने जैसी ही थी, मां। मैं कुछ अधिक ठोस, कुछ ज्यादा वास्तविक देखना चाहता हूं।'

'हमेशा की तरह, मुझे तुम्हारी बातों पर कुछ नहीं कहना है। मुझे तो बस यह यकीन है कि तुम अपने कदम चाहे जिधर भी उठाओ, वह हमेशा सही दिशा में ही उठा होगा।'

मैंने उनकी गोद में अपना सिर धर दिया। मुझे यह पता था कि मां का प्यार अनुभव करने का यह मेरे लिए आखिरी अवसर है। संन्यास लेने के बाद यह संभव नहीं हो सकेगा। मेरे फैसले के लिए उसके अविश्वसनीय स्वीकार में मैंने एक गहरी पीड़ा भी देखी। किंतु मेरा निश्चय नहीं डिगा। मैंने वही किया, जो मुझे करना था, क्योंकि मुझे अपनी आत्मा की प्यास बुझाने का केवल यही एक मार्ग दिखता था। आखिरकार, प्रो. शर्मा शायद बिलकुल सही थेः मेरे पास केवल मस्तिष्क था, हृदय तो मानो था ही नहीं।

मैं भारत वापस आया। मेरे ईमेल के ड्राफ्ट फोल्डर में अपने प्रियजनों के लिए लिखे मेरे दुखभरे विदाई संदेश चुपचाप से पड़े थे, जो मैंने कनाडा में रहने के दौरान लिख लिए थे। हर संदेश में मूल रूप से यही था कि मैं उन्हें इस तरह छोड़ना नहीं चाहता था। किंतु मुझे यह पग उठाना ही था। मैं लंबे समय से ऐसा करना चाहता था। अपने जीवन से मुझे बस यही अपेक्षा थी।

मैंने अपनी व्यक्तिगत तथा कंपनी की संपत्तियों के लिए पॉवर ऑफ अटॉर्नी के मसौदे तैयार कराए। मैंने पूरी नियंत्रण शक्ति विवेक के लिए छोड़ दी और अपनी संपत्ति भी उसी के नाम कर दी। मेरे वकील की सलाह इसके विरुद्ध थी, पर मैंने उनसे कहा कि आपका काम इसे कार्यरूप देना है, सलाह देना नहीं। मैं अपनी संपत्ति अपने प्रिय परिजनों को दे सकता था, पर मैंने यह महसूस किया कि तब यह सच्चा संन्यास न होता।

15 मार्च 2010 को अपना घर छोड़ने के पहले मैं अपने पिता से कस कर लिपट गया। मैंने अपनी बहन के यहां नाश्ता किया और उन्हें शुभविदा कहा। फिर अपने काम पर मैंने एक सामान्य सा दिन बिताया। कुछ पत्र तैयार किए और लिफाफे बंद किए। मैंने हस्तांतरण के नोट लिखे। मैंने कुछ लोगों के लिए अपने बैंक अकाउंट में बचे पड़े पैसों के चेक काटे। मैं अपना एक-एक पैसा दे देना चाहता था और केवल अपने लिए निर्धारित धनराशि से गुजारा करना चाहता था। मेरे कुछ निवेश लॉकइन अवधि में थे, सो मैं उन्हें समाप्त नहीं कर सकता था। मैंने अपने बैंकरों को दो महीने पूर्व ही अपने फैसले से अवगत करा दिया था। मेरे मातापिता वित्तीय रूप से सुरक्षित थे, क्योंकि दोनों को पेंशन मिलती थी। मेरे भाई-बहन भी आराम से थे। विवेक मेरे कर्मियों की देखभाल करने के लिए हामी दे चुके थे।

मैंने मानिक के साथ एक अच्छा सा लंच लिया, जो हमारी कंपनी में एक सीनियर प्रबंधक होने के साथ-साथ एक अच्छे मित्र भी थे। मैंने उनसे कहा कि मैं आज के दिन का पूरा आनंद उठाना चाहता हूं। फिर हम कॉफी पीने गए। ग्राहकों के साथ एक मीटिंग के लिए

विवेक शहर से बाहर थे। शाम को मैंने अपने ड्राइवर, संदीप को बुलाया। वह कार लेकर आ गया।

‘रेलवे स्टेशन,’ मैंने उससे कहा।

संदीप बहुत ही विश्वासपात्र व्यक्ति था। मुझसे उसका खास लगाव था। पिछले तीस महीनों में हमने कई बार साथ-साथ खुलकर ठहाके लगाए थे। किंतु आज वह जब ड्राइव कर रहा था, तो हम दोनों चुप थे। मैं वर्तमान अथवा भविष्य के बारे में नहीं सोच रहा था; दरअसल मैं कुछ सोच ही नहीं रहा था। मैं बस शांत था, ठीक वैसे ही, जैसे मैं ऑस्ट्रेलिया के लिए प्रस्थान करते समय था। ऐसे पल, जब आप जागरूक तो होते हैं, पर सोचते नहीं, बड़े शांतिपूर्ण होते हैं।

कुछ समय बाद मैंने विचार अंदर आने दिए। मैंने उन लोगों के विषय में सोचा, जिन्हें मैं छोड़ने जा रहा था और जिन्हें मैं पीछे छोड़ चुका था। लड़कियों के साथ मेरे अपने हिस्से के संबंध थे, जो आत्मिक और अंतरंग दोनों ही किस्मों के थे। जब तक मैं पच्चीस वर्षों का न हो गया, मेरे पास अपनी सबसे बड़ी प्राथमिकताओं - मेरा अपना काम और ध्यान - को छोड़कर किसी अन्य चीज के लिए बिलकुल ही समय न था। धीरे-धीरे यह मेरी समझ में आने लगा कि कोई बहुत महत्वपूर्ण चीज मुझसे छूट गई; मैंने खुद को पूर्ण रूप से अनुभूत नहीं किया था। मैंने पुरुष और प्रकृति, शिव और शक्ति, यिन और यांग के बारे में अध्ययन किया था। मैंने तंत्र का अध्ययन किया और तांत्रिक अभ्यास भी किए। पर तंत्र के अंतर्गत संसर्ग के विषय में मेरी समझ उथली ही थी; मुझे उसका कोई व्यावहारिक अनुभव नहीं था।

हमेशा धार्मिक सिद्धांतों से प्रभावित रहने की वजह से मैं यह सोचा करता कि आत्मानुभूति के लिए ब्रह्मचर्य जरूरी था। पर बाद में मैंने इस विचार को आधारहीन और अनुचित पाया। मैं बहुत सी लड़कियों को जानता था, जिनमें से कुछ मुझे चाहती भी थीं। मगर मुझ पर तो बस मेरी अपनी आस्थाएं हावी थीं और मैं उनके साथ किसी भी किस्म की घनिष्ठता के लिए तैयार न था। और फिर यह भी सच था कि वस्तुतः मुझे ऐसे किसी संबंध की जरूरत भी महसूस नहीं होती। मैंने उनका प्रत्युत्तर देने की कोशिश की, मैंने कुछ लोगों का खयाल भी रखा, यहां तक कि उनसे प्रेम भी किया, मगर उनके प्रति कभी कोई लगाव महसूस नहीं किया। उनकी उपस्थिति अथवा अनुपस्थिति से मेरे मन की स्थिति पर कोई अंतर नहीं पड़ता।

‘मुश्किल यह है कि,’ एक लड़की ने कहा, ‘आपको देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं है, क्योंकि आपकी कोई आवश्यकता ही नहीं है।’

और वह पूरी तरह गलत नहीं थी। मेरा मन तो हमेशा हिमालय में ही रहा करता था। मैं उस स्थिति का अनुभव करना चाहता, जिसे बुद्ध ने प्राप्त किया; जिसकी चर्चा योगशास्त्रों में थी; वह भावातीत स्थिति, वेदों ने जिसके उपदेश दिए; वह समाधि, जिसके विषय में प्राचीन ऋषियों ने बताया। मेरे संस्कार, मेरी सहज वृत्तियां मुझे बराबर उस स्थिति की ओर खींचतीं। मैंने जितनी ज्यादा संपत्ति बनाई, यह इच्छा उतनी ही बलवती होती गई। मैं कभी यह नहीं समझ पाया कि पैसे के लिए इतनी हाय-तौबा क्यों मची रहती है। मैंने पैसे, ध्यानाकर्षण,

ख्याति तथा संबंधों के स्वाद चखे और मेरे लिए यह स्पष्ट हो गया कि इनमें से कोई भी चीज अंतर की शून्यता को नहीं भर सकती।

विवाह कभी भी मेरी योजना या फिर मेरे सपनों का हिस्सा नहीं रहा। मुझे यह पता था कि मैं एक दिन संन्यास लूंगा और इसलिए मैं सोचता कि एक संबंध को उसके इस अंतिम स्वरूप तक ले जाना अनैतिक होगा। शायद मेरी इस सोच में कदाचित बचपना ही था। अपवादविहीन परिभाषाओं में यकीन करते हुए मैंने जीवन को हमेशा स्याह या सफेद में ही देखा किया - यह अच्छा था और वह बुरा था, यह नैतिक था और वह अनैतिक था, यह सही था और वह गलत था। जब तक मैंने देवी काली की पहली तांत्रिक साधना कर इसका प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त नहीं कर लिया, तब तक मैं इसे वस्तुतः नहीं समझ पाया कि तंत्र किस तरह कामभावना का प्रयोग स्व को रूपांतरित करने तथा उससे परे उठने में करता है। और फिर मैंने यह जाना कि जीवन स्याह-सफेद नहीं बल्कि धुंए जैसे धुन्दले रंग का एक अगाध सागर है।

मैंने मां काली की एक लघु किन्तु वशिष्ट साधना की। ऐसा कहा जाता था कि इस साधना को करने से साधक को काली की स्पष्ट झलक मिलती है। यह तीन रातों की एक प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत अपनी संगिनी में काली की शक्ति के साथ-साथ एक मंत्र का आवाहन किया जाता है। सच तो यह है कि मैं बिलकुल ही निश्चित नहीं था कि एक संक्षिप्त साधना का कोई महत्वपूर्ण परिणाम निकल सकेगा। पर मैं कितना गलत था। मुझे न केवल काली का स्वरूप दिखा, बल्कि इस साधना की सिद्धि के समय मुझे यह अनुभूति हुई कि मैं ही वह हूं, जो पूरे ब्रह्माण्ड में व्याप्त है अथवा यह कि मैं ही ब्रह्मांड हूं।

यह एक अतुलनीय अनुभूति थी। शारीरिक अंतरंगता ने मेरी अंतरात्मा अथवा मेरी साधना को कोई हानि नहीं पहुंचाई। इसके विपरीत वह अविश्वसनीय रूप से सुंदर तथा मुक्त करनेवाली महसूस हुई। मेरे मन में संसर्ग तथा कामभावना को लेकर जो भी धारणा थी, वह प्रेम की एक अभिव्यक्ति, एकत्व महसूस करने के एक रुप में रूपांतरित हो गई। इसे लेकर यदि मुझमें पहले कोई वर्जना थी, तो अब वह वह समाप्त हो चुकी थी।

मुझे यहां तक याद है कि बाद में मैंने यह विश्लेषण किया कि क्यों प्रमुख धर्मों में अंतरंग प्रेम को एक पाप की कोटि में रखा गया। यदि आप एक सामाजिक अथवा धार्मिक चौखटे के अंदर यौनक्रिया करते हैं, तो वह स्वीकार्य थी, किंतु यदि आप उसके बाहर जाने का दुस्साहस करते हैं, तो वह ‘पाप’ थी। ये नियम किसने बनाए? हालांकि कुछ हिंदू धर्मशास्त्रों ने यौनक्रिया को इतने नकारात्मक रूप में नहीं देखा। फिर भी उन्होंने इसे किसी के आध्यात्मिक विकास की एक बड़ी बाधा माना, क्योंकि वासना किसी की बुद्धि तथा संकल्प पर आसानी से हावी हो जा सकती है। उनका यह तर्क है कि इस मार्ग के पथिक को पवित्र रहना ही चाहिए, उसे ब्रह्मचर्यं का अटूट पालन करना ही चाहिए, ताकि वह आकर्षणों का शिकार न बन जाए।

मैं इसमें तो कुछ अर्थ देख सकता हूं, पर जो साधक दूसरे किनारे पर पहुंच चुका है, उसे क्या करना चाहिए? मैं संयम का एक आजीवन संकल्प लेने में कोई सार नहीं पा सका। और

फिर मुझे यह भी लगा कि ऐसा संकल्प लेना अप्राकृतिक तथा अनावश्यक था। तंत्र ने यौनक्रिया को एक दिव्य उपहार में रूपांतरित कर देने का एक अद्भुत मार्ग बताया। साधारण यौनक्रिया तथा तांत्रिक पद्धति की यौनक्रिया के बीच केवल जागरूकता का अंतर है।

तंत्र जागरूकता पर जोर देता है: एक-एक श्वास, विचार तथा भावना की जागरूकता। कामवासना जागरूकता को अनायास नष्ट कर दे सकती है। कामुकता के वशीभूत हो जाने पर सही और गलत, अच्छे और बुरे के बीच की सीमा रेखा बहुत तेजी से धुंधली हो जाती है। किंतु तांत्रिक जागरूकता कामुकता को भी एक भाव-जागरूकता की ओर मोड़ देती है, वह इसे प्रेम में रूपांतरित कर देती है। यह एक सूक्ष्म किंतु शक्तिशाली रूपांतरण है, क्योंकि अगली बार जब कोई काम विचार पैदा होता है, तो आप कामुकता का ज्वार नहीं, बल्कि प्रेम की एक तरंग का अनुभव करते हैं। और यह कोई साधारण चीज नहीं, एक असाधारण रूपांतरण है, जिसके अंतर्गत आप सबसे शक्तिशाली तथा सबसे सहज मानवीय इच्छाओं में शामिल इस कामना को एक दिव्य भावना में बदल देते हैं।

मेरे अनुभव ने मुझमें यह समझ पैदा की कि प्रेम निस्संदेह सबसे शक्तिशाली भावना, किसी के भी अस्तित्वमात्र की स्वस्थ अभिव्यक्ति है। प्रेम जैसी पूर्ण तथा आश्वस्तिदायक दूसरी कोई भावना नहीं है। यहां तक कि करुणा भी सचेतन रूप में चयनित एक भावना हो सकती है, पर प्रेम हमारे अस्तित्व का आधार होने की वजह से हमारे अंतरतम का स्पर्श करता है।

यही वजह है कि वेदों ने आत्मानुभूति के लिए एक अचानक मिलने वाले या प्रारंभिक संन्यास की अपेक्षा धीमे व सतत मार्ग की अनुशंसा की। उन्होंने विवाह की संस्था, संतुलन के जीवन तथा मध्य मार्ग को बेहतर बताया। अब यह सब मेरी समझ में आने लगा था। मैंने यह समझा कि क्यों महानतम ऋषि विवाहित थे। क्यों कृष्ण, शिव, विष्णु तथा ब्रह्मा की अर्धान्गिनियां हैं। यहां संदेश यह नहीं है कि विवाह से आत्मानुभूति हो जाएगी, बल्कि यह है कि विवाह आध्यात्मिक रूपांतरण की प्रक्रिया के लिए सहायक हो सकता है। यह वह तथ्य है, जिसे महानतम द्रष्टाओं तथा योगियों ने समझा था।

एक गृहस्थ सच्चा जीवन जीते और जीवन के विभिन्न रंगों का संयमित अनुभव प्राप्त करते हुए आत्मानुभूति की उच्चतम अवस्था तक, उस अविवाहित की तुलना में कहीं तेजी से पहुंच सकता है, जो किसी धार्मिक पंथ के नियमों के भीतर हमेशा अपनी भावनाओं से संघर्ष करता रहता है। यौनक्रिया ऐसा अनुभव है, जिससे संघर्ष तथा घृणा करने के बजाए उसे समझा तथा स्वीकार करना बेहतर है। किंतु विवाह के विषय में मेरी धारणा नहीं बदली। प्रेम अच्छा था, शारीरिक अंतरंगता अच्छी थी, पर मैं विवाह नहीं चाहता था। मैं इस तथ्य से भी अवगत था कि तंत्र में एक सफल साधना का अर्थ यह नहीं था कि मैं ध्यान में प्रवीण अर्थात उसका विशेषज्ञ हो चुका हूं। काली की एक झलक मेरे लिए पर्याप्त नहीं थी। मैं वह दिव्य झलक बार-बार देखना चाहता था। और अब तक मैं मन की परम शांत अवस्था भी प्राप्त नहीं कर सका था। अपने ध्यान के दौरान मेरा मन अब भी भटक जाया करता। मुझे ध्यान करते हुए उन्नीस वर्ष पूरे हो चुके थे और अभी भी मैं उसमें पूर्ण दक्षता नहीं प्राप्त कर सका

था।

गुजरते समय के साथ यह भरोसा हो चला था कि मुझे एक गुरु की आवश्यकता थी। शायद एक गुरु के प्रति समर्पण से ही आगे का पथ मिल सके। शायद एक गुरु ही मेरे लिए दिशा निर्देशन कर मुझे उस परम अवस्था तक पहुंचा सके, जहां तक पहुंचने की इतनी उत्कट लालसा मेरे अंदर थी। मुझे पूरी तरह से यह विश्वास था कि संन्यास के मार्ग में दीक्षित नहीं होने की वजह से मैं अपनी साधना में आगे नहीं बढ़ पा रहा हूं।

'सरजी?'

'सरजी?' संदीप ने मुझे एक बार फिर पुकारा।

मैंने संदीप को देखा।

'हम लोग रेलवे स्टेशन पहुंच चुके हैं, सरजी।'

मैंने अपना बैकपैक उठाया, जिसे मैं आज सुबह घर से ले आया था और संदीप को शुभविदा कहा। फिर मैं वाराणसी की यात्रा पर चल पड़ा। वाराणसी को चुनने की इसके अलावा दूसरी कोई खास वजह नहीं थी कि मेरी समझ से वहां महान तांत्रिक रहा करते थे और मैं वहां एक गुरु ढूंढ़ सकता था।

मैंने पहले दिल्ली के लिए ट्रेन पकड़ी, क्योंकि वाराणसी की ट्रेन मुझे वहीं मिलने वाली थी। दिल्ली में रात्रिविश्राम के लिए मैं एक होटल में ठहर गया, क्योंकि वाराणसी की ट्रेन अगले दिन तड़के सवेरे खुलने वाली थी। होटल के अपने कमरे से मैंने कनाडा फोन मिलाया और मां तथा पीबी से एक बार फिर बातें कीं। स्वभावतः, उन दोनों को मेरे विषय में कोई शंका न थी।

वाराणसी पहुंचकर मैं एक लॉज में ठहर गया और सीधा बिस्तर पर जा पड़ा। अगली सुबह मैं एक साइबर कैफे गया। कुछ लोगों को व्यक्तिगत मेल भेजने के अलावा मैंने अपनी संपर्क सूची के प्रायः सभी लोगों को एक जैसा संदेश भेज दिया, जो इस तरह थाः

मेरे सभी प्रियजन,

> मुझे जहां तक स्मरण है, मैं हमेशा ही एक ऐसे ऊंचे उद्देश्य के प्रति अपना जीवन समर्पित करना चाहा है, जो केवल भौतिक संपत्ति खड़ी करने से भिन्न हो। अपने मन की इस भावना के साथ मैं हमेशा से एक आध्यात्मिक तलाश, अपने आंतरिक स्व की तलाश में निकलना चाहता था। मेरे लिए अपने इस उद्देश्य में लगने का समय आ चुका है। मेरी इस तलाश का उद्देश्य सत्य को स्वयं समझना और उसका सत्यापन करना है। यह आत्मानुभूति का सत्य है।
>
> क्या मैं सफल हो पाऊंगा? मुझे नहीं मालूम और यह बात बहुत महत्व भी नहीं रखती। फिर भी मैं अपनी योजना के अनुसार आगे बढ़ूंगा। क्या यही वह चीज है, जिसे मैं वास्तव में करना चाहता था? मैं इस संबंध में पूरी तरह निश्चिंत हूं। क्या यह इस योग्य है कि मैं इसके लिए अपने प्रियजनों को अपने वियोग की पीड़ा पहुंचाऊं? ईमानदारी से

कहूं, तो मेरे पास इस प्रश्न का उत्तर नहीं है। हममें से हर व्यक्ति अनोखा है और भिन्न-भिन्न उद्देश्य लेकर पैदा हुआ है। हालांकि अंतिम लक्ष्य एक जैसा हो सकता है, मगर सामान्यतः उद्देश्य एक जैसे नहीं होते।

वह घड़ी आ गई है, जब मुझे अपने जीवन की आध्यात्मिक यात्रा पर निकलना ही चाहिए। पिछले अठारह वर्षों से मैं हर दिन इसी पल की प्रतीक्षा की है। कृपया अपना और एक दूसरे का ध्यान रखें और यह जानें कि यह केवल मेरी भौतिक उपस्थिति ही अपना घोंसला किसी दूसरी जगह तलाश रही है। बाकी सभी चीजें अपरिवर्तित हैं।

इस पल के बाद इक्कीसवीं सदी के किसी भी माध्यम द्वारा एक अनिश्चित काल तक के लिए मुझसे संपर्क नहीं किया जा सकेगा। मैं अपना फोन अपने पीछे छोड़े जा रहा हूं। मेरे सभी ईमेल अकाउंट्स का अस्तित्व समाप्त हो जाएगा। मेरा कोई स्थायी पता भी नहीं रहेगा। इस ईमेल को दिया गया कोई जवाब वापिस लौट जाएगा।

पिछले वर्षों में आप सबने मुझे जो असाधारण प्रेम और स्नेह दिया, उसके लिए मैं आप सबके प्रति गहरे रूप से कृतज्ञ हूं। और मैं अपने दिल की गहराई से आपके प्रति क्षमाप्रार्थी हूं, क्योंकि कभी-कभी मैंने आपको अपने विचारों, शब्दों अथवा क्रियाओं से चोट पहुंचाई होगी। यदि आप मुझे क्षमा कर देंगे, तो इससे मेरी यात्रा सरल हो जाएगी।

आपके अंतर में स्थित दिव्यसत्ता के प्रति अत्यंत श्रद्धा से मेरा नमन।

अमित

अध्याय आठ
सिद्ध

सारा दिन घाटों की खाक छानने के बाद शरीर में पानी की कमी और थकान महसूस हो रही थी, मैं सारी रात सो नहीं पाया। जहां तक अतीत का प्रश्न था, मेरे सोचने के लिए कुछ विशेष नहीं बचा था। मैं केवल रात के गुजर जाने की प्रतीक्षा करता रहा। अंततः मैं पांच बजे उठा, एक लंबा स्नान किया और नाश्ते के लिए रेस्तरां की ओर गया, मगर वह बंद था। अगले दो घंटों में मैंने उसके कई चक्कर लगाए, किंतु नतीजा वही मिला। बेचैनी में मैं स्वागत कक्ष में पहुंचा, तो पाया कि वहां सारे कर्मी सोए पड़े थे, कुछ फर्श पर, और दूसरे चौकी पर सो रहे थे।

नाश्ता देना शुरू करते हुए उन्होंने नौ बजा दिए। सूरज तेज चमक रहा था और गरमी बढ़ रही थी। आज का दिन जल्दी शुरू करने का मेरा सपना उतना ही अवास्तविक रहा, जितने कि पिछले चौबीस घंटे। मनीष लगभग दस बजे पहुंचा। अंततः, हम गेस्टहाउस से बाहर निकले।

हम नदी किनारे श्री मठ नामक एक छोटे से आश्रम में पहुंचे। एक वयभार से झुके हुए वृद्ध बाहर निकले और उन्होंने पूछा कि मैं कौन हूं और क्या चाहता हूं। मैंने उनसे कहा कि मैं एक गुरु की तलाश में हूं, जो आध्यात्मिक मार्ग पर मेरा पथप्रदर्शन कर सकें। उन्होंने मनीष को बाहर रुकने और मुझे अपने पीछे आने को कहा।

मुझे एक कमरे में ले जाया गया, जिसमें दो व्यक्ति बैठे थे। उनमें से एक तो खाते और हिसाब-किताब में लगा था तथा सफेद वस्त्र पहने दूसरा व्यक्ति वह सब देख रहा था। मैंने इस दूसरे व्यक्ति के सामने झुककर नमन किया। उन्होंने पूछना प्रारंभ किया कि आप क्यों संन्यास लेना चाहते हैं और क्या आपके मातापिता को यह पता है। वे यह जानना चाहते थे कि मेरे मातापिता कहां रहते हैं, हम कितने भाई-बहन हैं, क्या मेरी कोई नौकरी अथवा व्यवसाय है, उसे मैंने क्यों छोड़ा और मैं क्या पाना चाहता हूं... उनके कुछ अन्य प्रश्न भी थे, जो मुझे अब स्मरण नहीं रहे।

लगभग दस मिनटों तक मुझसे सवाल-जवाब करने के बाद उन्होंने कहा, 'गुरुजी इन दिनों हरिद्वार के कुंभ मेले में हैं,' प्रारंभ से ही मुझे उनमें रंचमात्र आध्यात्मिकता न दिखी, किंतु मैंने सोचा कि शायद मेरी दोषपूर्ण दृष्टि तथा दुर्बलताओं की वजह से मुझे ऐसा लग रहा है। वहां बैठे दूसरे व्यक्ति ने मेरी शैक्षिक पृष्ठभूमि के विषय में कुछ प्रश्न किए और कहा कि उन्हें मुझसे मिल कर प्रसन्नता हुई। उन्होंने आगे कहा कि वस्तुतः अभी आपको हरिद्वार में होना चाहिए था, क्योंकि सारे संत वहां एकत्र हैं। मैं हरिद्वार या और कहीं जाने को इच्छुक न था। मैं निश्चित था कि ईश्वर मुझे एक खास कारण से वाराणसी ले आए हैं।

उसी समय सफेद वस्त्रों में ही नाटे कद के एक मोटे से व्यक्ति ने कमरे में प्रवेश किया। उन्होंने एक चौकी पर बैठ जोरों की डकार ली। मुझे उनके सामने झुकने की इच्छा न हुई, हालांकि मेरे संस्कारों की यह मांग थी कि साधुओं की वेशभूषा में किसी व्यक्ति के लिए सम्मान प्रकट करना ही चाहिए, क्योंकि वे धर्म का प्रतीक होते हैं। मैंने उनकी ओर न देखकर उनके तौर-तरीकों के प्रति अपनी असहजता प्रकट कर दी।

'कहां से आये हो तुम?'

'जी, दिल्ली से।'

'क्या इन दिनों ट्रेनें समय से चल रही हैं?'

'मेरी गाड़ी तो चार घंटे देरी से थी।'

'ये दुष्ट कभी भी समय पालन नहीं कर सकते, ये जन्मे भी देर से ही थे।' और उन्होंने फिर डकार ली। 'मैंने कुछ ज्यादा ही खा लिया है।'

'छोटू! ओ छोटू!' उन्होंने किसी को पुकारा।

एक मिनट बीता।

'ओ छोटू!' इस बार उसकी आवाज काफी तेज थी।

'जी, बाबाजी।' एक छोटा लड़का आया।

'तुम पहली बार पुकारने पर क्यों नहीं सुन पाते हो? तुम्हारे आने से पहले तो भगवान ही आ जाएंगे। चार कप चाय बनाओ।'

'मेरे लिए नहीं। धन्यवाद। मैं चाय नहीं पीता,' मैंने कहा।

'अरे तुम्हारे लिए दूध मंगा देते हैं।'

'बहुत धन्यवाद, पर मैं ठीक हूं। मैंने अभी-अभी नाश्ता लिया है।'

'अच्छा, तो तीन कप बनाओ,' उसने छोटू को कहा।

'तो तुम नाश्ता कर चुके हो। कहां ठहरे हो?'

'मैं बता चुका हूं,' मैंने कहा। मैं यहां अब और ज्यादा समय बरबाद नहीं करना चाहता था।

मैंने उन लोगों को नमस्कार किया, सौ रुपए का एक नोट वहां छोड़ दिया और जितनी तेजी से संभव हो, वहां से बाहर निकल आया, जहां मनीष मेरी प्रतीक्षा कर रहा था। हम उस स्थान के बारे में चर्चा कर, हंसने लगे। फिर मनीष ने निकट ही एक दूसरी जगह के बारे में बताया, जहां मैं अपनी तलाश कर सकता था। यह एक पुरानी जैसी इमारत थी और मैं

तत्काल ही उसकी ओर आकृष्ट हो गया। हालांकि इस इलाके की सभी इमारतें पुरानी ही थीं, पर यह तो खास बदहाली में थी। इसे देखते हुए मुझे यह यकीन हो आया कि यहां किसी सिद्ध पुरुष, एक महान योगी से मेरी भेंट हो सकेगी, जो सार्वजनिक दृष्टि से बचने के लिए इसकी दीवारों के पीछे रह रहे होंगे।

मुख्य द्वार खुला था। मैंने दस्तक दी, पर कोई उत्तर न मिला। मनीष ने दरवाजे को ठेलकर खोला और हम एक आंगन जैसी जगह में प्रविष्ट हुए जिसके केंद्र में एक विशाल पीपल वृक्ष था, जिसने ऊपर आकाश का एक हिस्सा ढांप रखा था। सूखे और भूरे पत्तों के साथ-साथ नरम तथा हरे पत्ते भी चारों ओर फैले थे। दीवारों से परतें उघड़ रही थीं और वर्तमान सफेदी के अंदर से बाहर निकल आई पिछले रंग की परतें भी साफ दिख रही थीं।

प्रवेश द्वार के पास ही एक छोटा स्नानघर था। वहां का फ़र्श गीला था, जैसे वहां किसी ने अभी-अभी स्नान किया हो। नल से पानी रिसकर वहां रखी एल्युमीनियम की एक पुरानी बाल्टी में इकट्ठा हो रहा था, जिसके निकट पानी से भरा हुआ टूटे हैंडलवाला मग रखा था।

निकट ही, एक कमरा दिखा, जिसके दरवाजे खुले थे। इसमें तीन बिस्तर लगे थे, जबकि एक वृद्ध नागा साधु फर्श पर बिछी एक दरी पर लेटे थे। वे अपने माहौल की तरह ही जर्जर वृद्ध दिख रहे थे, शायद अस्सी की उम्र के आसपास। मुझे महसूस हुआ कि उन्हें सांसें लेने में परेशानी हो रही थी। वे लगातार मुख व छाती की ओर संकेत कर बता रहे थे कि उन्हें साँस लेने में कठिनाई हो रही थी। मैं स्वयं सारी जिंदगी दमे का मरीज रहा था, इसलिए मैं यह समझ सकता था कि सांसें लेने के लिए संघर्ष करना कैसा महसूस होता है।

मैंने मनीष से कहा कि हमें उन्हें अस्पताल ले जाना चाहिए और मैं उपचार का सारा व्यय देने को तैयार था। मनीष ने अपनी असहमति जताते हुए कहा कि साधु महाराज को पिछले सप्ताह ही अस्पताल से लाया गया था; वे वहां अकेले नहीं थे, कुछ दूसरे साधु भी वहीं रहते थे।

‘आप यह सब कैसे जानते हो?’ मैंने मनीष से पूछा।

‘मैं इसी जगह के आसपास रहता हूं, सर। मैं इस घाट और इस बाबाजी को जानता हूं। क्या आपको यह लगता है कि इतने मुख्य स्थल पर स्थित इस इमारत को कोई खाली छोड़ सकता है?’

दूसरे बिस्तर ऐसे दिख रहे थे, जैसे उन्हें कुछ ही देर पहले ठीक किया गया हो और मैं यह तो देख ही रहा था कि किसी ने स्नान के कमरे को भी तुरंत ही इस्तेमाल किया था। मुझे मनीष के कथन में सच्चाई महसूस हुई; वे साधु बाबा अकेले नहीं थे परंतु मुझे उनके लिए दुःख हुआ।

‘वे कोई दवा क्यों नहीं ले रहे?’

‘उनके पास दवा लेने के पैसे नहीं हैं और सरकारी अस्पताल में उनके लिए कोई भी सुविधा उपलब्ध नहीं है।

‘तो क्यों नहीं हम इन्हें किसी निजी अस्पताल में ले चलें। इसके व्यय मैं उठाऊंगा।’

‘और यदि ये रास्ते में ही मर गए, तो? पुलिस यह कहेगी कि हमने इन्हें इस आश्रम पर

कब्जे की नीयत से मार डाला और हम कानूनी पचड़े में पड़ जाएंगे।

कुछ विचित्र किंतु क्रूर रूप से मुझे संदीप की बातों में दम दिखाई दिया।

जब हमने वह इमारत छोड़ी, तो मैंने मनीष से कहा कि मुझे थोड़े आराम की जरूरत है और मैं बाहर सीढ़ियों पर बैठ गया। मेरे मन से उस साधु की तसवीर नहीं हट रही थी। खुद मेरे जीवन का भी ऐसा ही अंत संभव था और मुझे लगा कि मुझे भी ऐसी संभावना के लिए मानसिक रूप से तैयार रहना चाहिए। सांस लेने की जद्दोजहद करते इस साधु से मैं किस तरह भिन्न हूं? उन्होंने भी तो मेरी ही भांति अपने अतीत का त्याग किया था।

मेरे मन में सवालों की झड़ी लगी थी। युवा अथवा वृद्ध, संन्यासी अथवा गृहस्थ, मेरे आसपास के किसी व्यक्ति ने भी भगवान को नहीं देखा है। यदि वह हो ही नहीं, तो? यदि कोई भी हमारा सृजनकर्ता न हो और हम समय पा कर अन्य प्रजातियों के साथ विकसित हो गए हों, तब? शायद एक दिव्य सत्ता की मेरी खोज व्यर्थ सिद्ध हो और मेरा भी इस साधु की ही तरह अंत आ जाए, जब मुझे मरने को यों ही छोड़ दिया जाए।

'एक साधु की ऐसी मौत कैसे हो सकती है?' मैंने मनीष से पूछा।

'ये सब असली साधु नहीं हैं, सर। ये दिनभर गांजा पीते रहते हैं। उनमें से कुछ तो कानून के डर से भागे हुए भगोड़े हैं।'

मनीष के इस आश्वासन के बावजूद, मैं महीनों तक बूढ़े साधु बाबा का चेहरा अपने स्मृति पटल से हटा नहीं सका।

उसके बाद हम एक दूसरे घाट पर गए। वहां मनीष मुझे पीले तिरपाल से बने एक अस्थाई ढांचे के निकट ले गए। उसका दरवाजा खुला था और मैंने एक नागा साधु को बिलकुल नग्न अवस्था में अपने घुटनों पर बैठा देखा। उनके निकट उनका एक शिष्य बैठा था। उस साधु से भेंट की इच्छा से मैं उस प्रवेश द्वार के निकट चला गया, किंतु वह शिष्य उठ खड़ा हुआ और उसने मुझे दूर रहने को कहा। फिर भी, मैंने अंदर झांका। एक ओर लगभग अठारह इंच ऊंचा एक बिस्तर था, जिसपर शेर की एक बड़ी सी खाल बिछी थी। इस कुटिया में खाद्य और अन्य सामग्रियों के बहुत से ड्रम और डिब्बे बेतरतीब रखे थे और कुल मिलाकर यह एक बड़ी अस्तव्यस्त संकीर्ण सी जगह लग रही थी।

मैंने शिष्य को पचास रुपए का एक नोट थमाया। वे मुस्कुराए।

'आप बाबाजी के दर्शन करना चाहते हैं? वे सर्वज्ञाता हैं। आपके यहां आने की पूर्व ही वे आपके विषय में सब कुछ जानते थे,' उसने उत्साह से कहा।

यह देखकर कि मनीष एक स्थानीय व्यक्ति था, उन्होंने उस पर एक तिरस्कारपूर्ण दृष्टि डाली। मैं भीतर जाने लगा तो अचानक बाबा ने चीखना शुरू कर दिया। शिष्य ने जल्दबाजी में बताया कि चूंकि बाबा ने मुझे अपनी एक झलक की ही अनुमति दी थी, सो अब वे अकेला छोड़ दिया जाना चाहते हैं। मुझे वहां से तुरंत चले जाने को कहा गया। मैंने सौ रुपए का एक नोट निकाला, जिसे शिष्य ने तुरंत ही ले लिया। 'बाबाजी, ये आपके भक्त हैं और आपका आशीर्वाद चाहते हैं।' उन्होंने घूमकर साधु की ओर देखा और उन्हें वे रुपए दिखाए।

'क्या अब मैं अंदर आ सकता हूं?'

‘नहीं, इसकी अनुमति नहीं है।’

मैंने सौ रुपए का एक और नोट निकाला और उन्होंने मुझे अंदर आने को कहा।

उसी क्षण मैं वहां से चल दिया। अब तक मैं इस संभावना के प्रति आग्रही था कि वे एक पहुंचे हुए साधु हो सकते थे जो किसी से भी भेंट की इच्छा न होने के कारण, मुझे दूर रखना चाह रहे थे। किंतु जब ज्यादा पैसों ने अंततः मेरे लिए दरवाजा खोल दिया, तो मैं समझ गया कि यह मेरी मंजिल नहीं है। मेरे लिए दोनों ही व्यक्ति नग्न थेः एक ने जहां अपना शरीर नग्न कर रखा था, वहीं दूसरे ने अपनी आत्मा को नग्न कर रखा था।

मुझे कबीर का एक दोहा याद आ गयाः

गुरु जाका आंधरा, चेला है जाचंद।
अंधा अंधे ठेलिए, दोनों कूप परंत॥

मैं मनीष के साथ घूमता रहा। यह तो नहीं जानता था कि कहां जाना है; परंतु यह जानता था कि किसे तलाश रहा हूं। कुछ समय बाद, एक इमारत पर मेरी दृष्टि गई और मैं उसकी ओर एक विचित्र सा खिंचाव महसूस किया। हम जहां खड़े थे, वहां से मैं केवल उसका पिछला हिस्सा ही देखा सकता था। मैंने मनीष से कहा कि मैं वहां जाना चाहता हूं।

हम सीढ़ियों से होकर घाट के ऊपर की सड़क पर आए और तब कई सड़कों की भूलभुलैया से होते हुए मनीष मुझे उस इमारत के प्रवेश द्वार तक ले गए। उसमें ग्रिल लगा हुआ लोहे का एक विशाल दरवाजा था, जिसके अंदर एक छोटा दरवाजा भी था। हालांकि इसके अंदर से आवाजें आ रही थीं, पर जब हमने उस पर दस्तक दी, तो किसी ने भी उसे नहीं खोला। हमने कुछ ठहरकर एक बार फिर उसे खटखटाया। अंततः, मनीष ने ग्रिल के भीतर अपना हाथ उसके अंदर डालकर उसकी कुंडी खोली। हम झुक कर उसमें प्रविष्ट हुए और स्वयं को एक प्रांगण में पाया। हम लोगों की दाहिनी ओर एक कमरा था, जिसमें चार युवक ऊंची आवाज में बातें कर रहे थे। प्रांगण के पार एक छोटा मंदिर था, जिसमें एक अधेड़ व्यक्ति बैठे था।

‘आप कहां से आए हैं?’ उन्होंने पूछा। उनका मुंह पान से भरा था और वे उसे कठिनाई से ही खोल पा रहे थे। अब फिर वैसी ही पूछताछ से गुजरना होगा, मैंने सोचा। कुछ सवालों के उत्तर देने के बाद मैंने कहा, ‘मैं बाबाजी से मिलना चाहता हूं।’

किसी ने भी मुझे यह नहीं बताया था कि वहां कोई बाबाजी रहते हैं, किंतु किसी तरह मुझे यह पता था। इसे सहजानुभूति कह लीजिए या फिर एक आशा। मेरे प्रश्न का उत्तर देने के बजाए, उस व्यक्ति ने मनीष की ओर देखा और पूछा, ‘यह लड़का कौन है?’ उसने उसे सिर से पांव तक गहरी नजरों से देखा। मैंने पुरुषों द्वारा महिलाओं को कुदृष्टि से देखते हुए पाया था, पर यह पहली ही बार था, जब मैंने एक पुरुष को दूसरे पुरुष पर पर इस तरह से आंखें फिराते हुए देख रहा था। किंतु उसकी आंखें हिकारत से भरी थीं।

‘ये मेरे गाइड हैं।’

‘हूं।’

‘मैं बाबाजी से मिलना चाहता हूं,’ मैंने दोहराया।

तब तक वे सारे युवक, जो सब बीस के आसपास की आयु के रहे होंगे, हमारे चारों ओर इकट्ठा हो चुके थे। उस व्यक्ति ने, जिसे मिश्राजी कहा जाता था, दूसरों को कुछ कहते हुए अपनी भौंहें सिकोड़ीं। उनमें से दो ने पुकारना शुरू किया, 'ओ दिनेश मुनिजी, दिनेश मुनिजी! ओ बाबाजी, बाबाजी! दिनेश मुनिजी!' वे तब तक पुकारते ही रहे, जब तक एक दरवाजा खोल एक व्यक्ति ने प्रांगण में कदम न रख दिया।

दिनेश मुनि नाटे कद के एक सांवले व्यक्ति थे, जिनकी दाढ़ी बहुत कम थी। उनके एकदम से काले और जरा घुंघराले बाल सिर के पीछे बांधे हुए थे। उन्होंने मेरी ओर इतनी तिरस्कारपूर्ण दृष्टि से देखा कि एक बार तो मुझे भी संदेह हो गया कि मेरी वेशभूषा में कोई कमी तो नहीं थी।

सभी एकसाथ बोल पड़े, 'ये ही बाबा हैं।' मैंने मिश्राजी को देखा, जिन्होंने सिर हिलाकर हामी भरी।

'आप क्या चाहते हैं?' उसने अपने सवाल पर जोर देने के लिए अपना सिर हिलाते हुए पूछा।

'आपसे नहीं, मैं बाबाजी से मिलना चाहता हूं,' मैंने कहा।

अब मैंने सबका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था, क्योंकि उन्होंने समझ लिया कि असली बाबाजी कौन हैं, यह मैं जानता हूं, क्योंकि मैंने दिनेश मुनि के दावे को स्वीकार करने से इनकार कर दिया था। मगर मेरा निष्कर्ष उससे निकलती ऊर्जा तथा प्रवृत्ति पर आधारित था। यह देख पाना कठिन नहीं था कि वे कोई उन्नत जीव न थे। उनके व्यक्तित्व में कोई आभा न थी और न ही उनकी वाणी में गहराई। मुझे मेरे विचारों को चीरती हुई सी उसकी आवाज सुन पड़ी कि बाबाजी यहां नहीं हैं। दिनेश मुनि ने उन लड़को को डपटा और वहां से चले गए।

मैं मिश्राजी के साथ बैठ गया, ताकि बाबाजी के बारे में कुछ और जान सकूं। उन्होंने बताया कि बाबाजी अपना ज्यादातर वक्त वाराणसी से 80 किमी दूर एक दूसरे आश्रम में गुजारते हैं। मैंने उनसे वहां का पता मांगा, पर वे उसे देने के अनिच्छुक लगे। शायद वे मुझे इसके लिए अनुरोध कराना चाहते थे। मैंने जोर दिया। अंततः, उन्होंने मोटे तौर पर यह बताया कि वे कसवढ़ नामक एक गांव में रहते हैं। 'बस वहां चले जाइए और किसी से भी पूछ लीजिए, वे आपको बता देंगे,' उन्होंने कहा।

पर, वे मुझे यह बताना न भूले कि मुझे बाबाजी के लिए क्या-क्या चीजें खरीदनी थीं। मुझे वहां खाली हाथ नहीं जाना था, बल्कि चढ़ावे के रूप में कुछ चीजें ले जानी थीं। उन्होंने एक सूची ही बताई, जिनमें दो भिन्न तरह की मिठाइयां, सूखे मेवे, पान का एक खास पैक, उस दिन का अखबार, फूल और इनके अलावा और कुछ जो मैं चढ़ाना चाहूं, शामिल थे।

मैं अगले ही दिन जाकर बाबाजी से मिलने के लिए तैयार था। मनीष ने कहा कि वे भी बाबाजी के दर्शन करना चाहते थे। मैं राजी हो गया। वे पिछले दो दिनों से मेरे साथ थे और इस अवसर के पूरे हक़ दार थे। छह बजे सुबह मैंने रिसेप्शन के लोगों को हिलाकर जगाया, ताकि वे मेरे लिए गेस्ट हाउस के मुख्य द्वार का ताला खोल दें। उस वक्त कोई भी दुकान न

खुली थी, जहां से मैं वे सामग्रियां खरीद सकूं, जो मुझे लेनी चाहिए थीं।

हमने एक ऑटोरिक्शावाले से यह पूछा कि क्या वे हमें उस पते तक ले जाएंगे।

'एकदम से वहां तक?'

'हां, और वापस भी,' मैंने जोड़ा।

'यह तो बड़ी दूरी हो जाएगी। नहीं, मैं नहीं जा सकता हूं। यह महंगा पड़ जाएगा।'

'मुझे बताएं तो सही कि कितना?शायद मैं उतना दे सकूं।'

'नहीं... इसमें बहुत ज्यादा पैसे लगेंगे।'

'आप जाना चाहते हो या नहीं?'

'हां, मैं जाना चाहता हूं।'

'तो कितने पैसे?'

'परंतु यह बहुत दूर है!'

अब मैं अपना धैर्य खोने लगा था।

'मैं आपसे आखिरी बार पूछ रहा हूं। अगर आप भाड़ा बताओगे, तो मैं सोचूंगा।'

'और वापस भी आना है?'

'हां, मुझे वहां बस एक अथवा दो घंटे रुकना है और उसके बाद वापस आना है।'

'कितने आदमी?'

'बस, हमदोनों।'

'क्या आप निश्चित हैं कि आज ही वापस आ जाएंगे?'

मैंने मनीष की ओर देखा। 'इनके साथ कोई परेशानी है क्या?'

अभी एकदम सवेरा था और मैं खाली पेट था। मैं अपने गुरु से मिलने जा रहा था और एक ऑटोरिक्शावाले ने कुछ ही पलों में मेरे आनंद तथा उत्साह पर पानी फेर दिया। कभी-कभी छोटी-छोटी बातों का भी किसी पर ऐसा ही प्रभाव होता है।

मैंने चारों ओर देखा कि क्या कोई दूसरा ऑटोरिक्शावाला भी वहां मौजूद था। तभी, उन्होंने कहा, 'मैं छह सौ रुपए लूंगा।'

मैं मोलतोल की मनःस्थिति में न था। मैंने स्वीकृति में अपना सिर हिलाया और उसमें बैठ गया। मेरी बगल में मनीष आ बैठे। ऑटोरिक्शा धीमी रफ्तार में चलने लगा और जबतक हम उस गांव में पहुंचे, सुबह के 9.30 से भी ज्यादा बज रहे थे। हमारा गंतव्य एक स्कूल की इमारत था, जिसके बाहर ऑटो पार्क किया गया। इस छोटे से गांव के लिए यह स्कूल जाहिर तौर पर बड़ा दिख रहा था। उसके द्वार पर खड़े कुछ पुलिसकर्मियों को देख मुझे विस्मय हुआ। फिर पता चला कि आज उस स्कूल में बीएड की परीक्षा का केंद्र था, जिसमें नकल रोकने के लिए पुलिस की तैनाती की गई थी। ऐसा लगता था कि नकल धड़ल्ले से चल रही थी। शिक्षक भी छात्रों को उत्तर लिखी पर्चियां देकर बढ़ावा दे रहे थे। कभी-कभी तो वे ब्लैकबोर्ड पर ही उत्तर लिख दे रहे थे। मैं यह नहीं समझ पा रहा था कि पुलिसकर्मी राइफलों से लैस क्यों थे। किससे मुकाबला करने को? क्या वे पर्चियां लाने वालों से मुकाबला कर रहे थे।

स्कूल की इस बड़ी इमारत से सटा एक छोटा मकान था। मुझे बताया गया कि यह एक अंग्रेजी माध्यम का स्कूल था, जो छात्रों को आठवीं तक की शिक्षा देता है। बच्चे सुरीली आवाज में अपनी सुबह की प्रार्थना गा रहे थे, जो मां सरस्वती की एक सुप्रसिद्ध वंदना थी:

वीणावादिनी वर दे,
वर दे, वीणावादिनी वर दे,
प्रिय स्वतंत्र रव, अमृत मंत्र नव,
भारत में भर दे,
वर दे, वीणावादिनी वर दे

मैंने एक पुलिसकर्मी से कहा कि मैं बाबाजी से मिलने आया हूं। उन्होंने मुझे स्कूल के पीछे के एक छोटे से घर में जाने को कहा। मैं उस मकान तक गया और दरवाजे पर ठहर गया, जो खुला था। अंदर एक साधु जैसे व्यक्ति किसी दिव्य आनंद में राग आलाप गाते हुए बैठे थे। मैं वहां पूरी तरह सम्मोहित हो खड़ा रहा। उनके जैसा साधु मैंने पहले नहीं देखा था। वर्षों की साधना ने धूप से उनकी त्वचा सांवली कर दी थी। उनके सांवले चेहरे के विपरीत उनकी दाढ़ी-मूंछें पूरी तरह सफेद थीं और मैंने ऐसा महसूस किया जैसे मैं कोई सुंदर सूर्यग्रहण देख रहा होऊं। उनकी लंबी, उजली जटाएं उनके सिर के ऊपर एक असाधारण जूड़े में बंधी थीं। उनका ललाट असाधारण रूप से बड़ा था, जैसा आमतौर पर तपस्वियों का होता है। उनका पेट भी गोल था, मानों वे प्राचीन काल के योगियों की भांति हमेशा कुंभक (सांसों को थामे रहने की एक यौगिक क्रिया) करते रहे हों। वे पालथी लगाकर एक जीवनमुक्त निर्लिप्तता के साथ बैठे थे। एक वस्त्र से उनकी जंघाएं ढकी थीं।

उन्होंने गाना रोककर मुझे देखा। उनकी छोटी किंतु स्थिर आंखों में एक सम्मोहक खिंचाव था और वे एक ही साथ भय तथा भक्ति उत्पन्न करती थीं। मेरी ओर अपनी पहली दृष्टि डाल उन्होंने केवल मुझे ही नहीं देखा, बल्कि मेरे आरपार भी देख लिया, जिसने मुझे कैद सा कर लिया। मैंने तत्काल वहीं उनके प्रति आत्मसमर्पण कर दिया। उनकी दृष्टि में एक अधिकार भावना थी, जो यह बता रही थी कि वे ही उस स्थान के स्वामी थे। वस्तुतः, वे ऐसे दिखते थे, मानो अपनी चीजों समेत यह ब्रह्मांड ही उनका था। मुझे लगा मैं एक सिद्ध को पा गया हूं।

जब मैंने उनके समक्ष दण्डवत् किया, तो पीछे से मनीष आ पहुंचे।

'यह कौन है? बाबा ने पूछा।

'ये मेरे गाइड हैं, बाबा।

मैंने मनीष की ओर देखा और कहा, 'आप मेहरबानी करके ऑटोरिक्शा के पास ही इंतजार करो।' मुझे यह भान हुआ कि बाबा को वहां उनकी मौजूदगी पसंद न थी।

'क्या तुम कोई शोध कर रहे हो?' कुछ परिचयात्मक प्रश्नों के बाद बाबा ने मुझसे पूछा।

'नहीं, बाबा, मैं संन्यास में दीक्षित होना चाहता हूं।'

‘तुम क्यों संन्यास लेना चाहते हो?’

‘मैंने कई साधनाएं की हैं। मैं बीस वर्षों से प्रयोग और कड़े प्रयास करता रहा हूं। किंतु मैं उस अंतिम लक्ष्य तक नहीं पहुंच पा रहा हूं, जिसकी चर्चा शास्त्रों में है।’

‘तुमने कौन सी साधनाएं की हैं?’

मैंने कुछ के नाम लिए।

‘क्या तुम ब्राह्मण हो?’

‘जी, बाबा। मैं गौतम गोत्र का एक सारस्वत ब्राह्मण हूं।’ मैंने उन्हें अपना पूरा नाम भी बताया।

‘तब मैं तुम्हें शिक्षा दूंगा।’

‘उन्होंने कुछ और प्रश्न किए और मुझे वाराणसी के अपने आश्रम में रुकने को कहा।

‘मैं दो दिनों में उस आश्रम में तुमसे मिलूंगा।’

मैंने एक बार फिर उन्हें साष्टांग किया और उन्हें कुछ रुपए चढ़ाए।

‘जब तुमने स्वयं का समर्पण कर दिया, तो फिर इन रुपयों का क्या प्रयोजन है?’ उन्होंने कहा। अपने चढ़ावे को उनके पैरों के पास ही छोड़कर मैं धन्य और तृप्त अनुभव हुआ उनकी कुटिया से बाहर आ गया।

अध्याय नौ
मुक्त होना

जब हम वापस वाराणसी पहुंचे, तो लगभग दोपहर हो चुकी थी। मैंने गेस्ट हाउस का हिसाब चुकता किया और मनीष से विदा ली, जो पिछले दो दिनों से मेरे मार्गदर्शक की भूमिका निभा रहे थे। 'कृपया मुझे फिर कॉल कीजिएगा,' उन्होंने मधुरता से कहा। यदि आपको यह आश्रम पसंद न आए, तो मैं कोई दूसरा आश्रम पाने में आपकी मदद कर सकता हूं।' मैंने फिर उनका धन्यवाद किया और बाबा के कहे अनुसार मैं उनके आश्रम की ओर बढ़ गया।

आश्रम में दिनेश मुनि ने मेरे लिए एक कमरा खोल दिया। मैं उस कमरे के अंदर गया और चारों ओर देखा, हालांकि वहां देखने के लिए ज्यादा कुछ नहीं था। उसमें कोई भी बिस्तर अथवा बिस्तर की सामग्री नहीं थी, बस केवल नंगा फर्श था और एक पुरानी अलमारी थी। पर वह कमरा अच्छा और ठंडा था। मैं फर्श पर लेट गया और ऊपर पंखे की ओर देखा। यह धीरे-धीरे घूम रहा था और उससे आवाज भी आ रही थी, मानो वह कह रहा हो कि आत्मसाक्षात्कार के पथ पर तुम्हारा स्वागत है।

फर्श की कठोरता असुविधाजनक थी। मैंने दिनेश मुनि से पूछा कि क्या एक गद्दा अथवा चादर पाना संभव हैं। वे कोई उत्तर दिए बिना ऊपर चले गए। मैं नीचे प्रांगण में ही प्रतीक्षा करता रहा। कुछ देर बाद उन्होंने मेरा नाम लेकर पुकारा और जब मैंने ऊपर देखा, तो उसने वहीं से एक पतली और गंदी सी दरी मेरी ओर फेंकी। वह मेरी बगल में आकर धूल का एक बादल सी उड़ाती गिर पड़ी, जिससे मुझे खांसी का दौरा पड़ गया। सांस लेने को हांफते हुए मैंने अपना इनहेलर निकाला और उससे दोहरी खुराक ली।

अपनी खांसी के रुकने का इंतजार करते हुए मैं दिनेश मुनि के ऐसे व्यवहार के विषय में सोचने लगा। मुझे बहुत बाद में जाकर यह भान हुआ कि वे मुझसे पैसा चाहते थे। यदि मैं इसे उस वक्त जानता, तो उन्हें कुछ पैसे दे देता। इस तरह हम दोनों का जीवन थोड़ा सरल हो जाता। मुझे यह जान कर भी विस्मय हुआ कि हालांकि वे अशिक्षित की तरह दिखते और

बरताव करते थे, परंतु वस्तुतः वे बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से पीएचडी कर रहे थे। इससे मेरा यह यकीन और पक्का हो गया कि पुस्तकीय ज्ञान किसी व्यक्ति को केवल यहीं तक ला सकता है। बस यही उसकी वास्तविकता थी, संस्कृत में डॉक्टरेट करते हुए भी मानवता अथवा मानववाद से पूरी तरह रहित, जबकि संस्कृत का अर्थ ही है, 'वह जिसमें संस्कृति की छाप हो।'

आश्रम में चार अन्य लोग भी रहते थे और वे सब विभिन्न कॉलेजों में पढ़नेवाले छात्र थे। वे आश्रम के कार्यों में मदद करते और इसके बदले उन्हें निःशुल्क भोजन तथा आवास प्राप्त था। बाद में, मैं बाजार गया। बाबा की प्रतीक्षा करते हुए अपना समय व्यर्थ गंवाने के बजाए मैंने यह सोचा कि एक-दो पुस्तकें खरीद लूं। मैंने कुछ अध्यात्मिक पुस्तकें खरीदीं, जो अगले कुछ महीने तक बाबा के पास रहते हुए मुझे काम देतीं: वे मुझे दिन में व्यस्त रखतीं, जबकि रात में मेरे लिए तकिए का काम करतीं।

बाबा की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा करते हुए चार दिन बीत गए। मैं अपनी पहली मुलाकात के बाद से ही उन्हें देखने को लालायित था। सच तो यह है कि ऐसा कोई भी पल नहीं गुजरा, जब मैं उनके विषय में न सोच रहा होऊं। इसी बीच मैं दूसरी बार बाजार गया और इस बार छात्रों में से एक, पवन, को साथ लेता गया। मैंने अपने साथ उनके लिए ठंडी लस्सी खरीदने की पेशकश की। उन्होंने थोड़ी सकुचाहट के बाद तीन गिलास लस्सी पी और बताया कि उनके पिता गांव में चाय की एक दुकान चलाते थे। ब्राह्मण होने के नाते पवन के पिता का एक सपना था कि पवन एक हिंदू पंडित बनें।

'क्या आप भी यही करना चाहते हो?' मैंने पूछा।

'हां, पर काम करने के साथ पढ़ना बहुत मुश्किल है,' उन्होंने निराशा से कहा। 'जब तक मैं आश्रम के काम पूरे करता हूं, इतना थक जाता हूं कि उसके बाद सो जाने की इच्छा होती है।'

'क्या आपने बाबा से इस बारे में बात की है?'

'मैं बाबा से बातें नहीं कर सकता। वे मुझ पर गुस्से से पागल हो जाते हैं।'

'क्या वास्तव में?'

'हां, वास्तव में। मैं यह जानने के लिए उत्सुक हूं कि आपको बाबाजी के विषय में जानकारी कैसे मिली?'

'मैं उनके विषय में कुछ नहीं जानता था। मेरे जीवन ने मुझे उन तक पहुंचा दिया और मैं यह निश्चित रूप से जानता हूं कि वे मेरे गुरु हैं।'

'मैं समझता हूं कि यदि आप उन्हें केवल बाबा कहकर पुकारेंगे, तो बाबाजी बहुत क्रुद्ध हो जाएंगे।'

'उनकी इच्छा मेरे लिए आदेश है, पवन। वे जैसे चाहेंगे, मैं उन्हें वैसे ही पुकारूंगा।'

पवन गलत नहीं थे, क्योंकि हर कोई उन्हें बाबाजी के नाम से ही पुकारता था। पर किसी कारण से मैं उन्हें पहले ही दिन से बाबा कहकर पुकारता था। उन्हें इस तरह संबोधित कर मैं उनसे निकटता महसूस करता, पर मैं ऐसा अत्यंत प्रेम तथा श्रद्धा के साथ किया करता था।

पुस्तकों की दुकान पर मैंने पवन से पूछा कि क्या वे अपने लिए कोई पुस्तक खरीदना चाहते हैं, तो उन्होंने इनकार में सिर हिलाया। जब मैंने इस पर जोर दिया कि मैं उनके लिए कुछ खरीदना चाहता हूं, तो उन्होंने कोक के एक बोतल की फरमाइश की। मैंने सोचा कि आश्रम में सबके लिए कुछ ले जाना ठीक रहेगा। हमने सॉफ्टड्रिंक की एक बड़ी बोतल के साथ आम का एक मीठा पेय और दो पैकेट बिस्किट लिए।

सभी छात्र ये चीजें देख खुशी से उछल पड़े। दिनेश मुनि थोड़ा नरम पड़े और उन्होंने कोक की एक लीटर की बोतल पी। उनके लिए मेरी यह खातिरदारी अब एक नियमित चीज बन गई। जब भी मैं पुस्तकें खरीदने जाता, तो उनके लिए कोक की दो बोतलें तथा बिस्किट लेता आता। मैं अपने लिए भी बिस्किट तथा ठंडा पानी लेता। वह ठंडा पानी पीना एक शुद्ध आनंद की चीज थी। दिनेश मुनि के कमरे में एक फ्रिज था, पर मैं वहां कभी नहीं गया और वे उसका ठंडा पानी केवल स्वयं के लिए ही रखते। इसके अलावा, वे सीधे बोतल से ही पानी पीया करता थे; सो, मैं उस पानी को पीने का अनिच्छुक था।

बिस्किटों के साथ बोतलबंद पानी मेरे लिए पसंदीदा नाश्ता बन गया, क्योंकि आश्रम में वे 11 बजे तक नाश्ता नहीं बनाते थे। बाहर ढाबे में केवल पूरी और समोसे का ही नाश्ता उपलब्ध था, वे दोनों ज्यादा तली हुई सामग्रियां थीं। मैं 4 बजे सुबह उठ जाता और उतनी देर तक इंतजार करना अथवा पूरी खाना कोई अच्छा विकल्प नहीं था। निश्चित रूप से बिस्किट भी कोई आदर्श चीज न था, पर मुझे जीवित तो रहना ही था।

शाम होते ही पाकशाला में कीट-पतंगे भर जाते। तब मुझे बहुत आश्चर्य होता, जब मैं देखता कि छात्रों तथा दिनेश मुनि को उनसे कोई फर्क नहीं पड़ता और वे खाने की चीजों को रात में ढककर रखने की चेष्टा नहीं करते। यहां तक कि गेहूं के आटे को भी रात में खुला ही रखा जाता और अगली सुबह आप आटे में ढेर सारे मृत कीड़े देख सकते थे। पहली बार जब मैंने यह दृश्य देखा, तो दंग रह गया और इसे उचित नहीं समझा कि हर सुबह आटे को सिर्फ इसलिए फेंक दिया जाए कि हम उसे रात में ढक नहीं सके थे। किंतु उनका तरीका अलग था। वे आटे को बस छान कर मृत कीड़े फेंक देते और फिर उस आटे को गूंथ देते। मैंने कई बार रात में उसे ढकने की कोशिश की, किंतु दिनेश मुनि ने इसे मेरा हस्तक्षेप माना। इसलिए, मैंने यह कोशिश छोड़ दी। उस भोजन को बाकी सब लोगों की तरह खाते हुए मैंने इसे वहां के अनुभवों का एक हिस्सा मान लिया।

वहां रहने के कुछ अन्य पहलू भी ऐसे थे, जिनका अभ्यस्त होने की जरूरत थी। आश्रम में चप्पलें पहनने की अनुमति नहीं थी, स्नान के कमरे में भी नहीं, जो अविश्वसनीय रूप से गंदे थे। भारतीय शैली के शौचालय में नंगे पांव बैठना सबसे बड़ी यंत्रणा थी, मैं स्वयं को फिर ऐसी यंत्रणा कभी नहीं देना चाहूंगा। दरअसल मैं पिछले दस वर्षों से ऐसे वातावरण व असुविधाओं का अभयस्त नहीं रहा था। हालांकि बाद में अनुभव हुआ, इस अभ्यास ने मुझे हिमालय के वनों में रहने योग्य बनने में मदद की, जहां मैं अनायास शौच से निवृत्त हो जाया करता।

आश्रम के शुरुआती दिनों में ही मेरे पांव अत्यंत रूखे होकर फट गए। अब तक के

जीवन में कभी भी मैं कुछ मिनटों से ज्यादा नंगे पांव न रहा था, जबकि यहां मैं हर समय नंगे पांव ही रहता था। मैं हर दो घंटे बाद अपने पैर धो लिया करता, पर उससे कोई लाभ न हुआ।

मैं शारीरिक कष्टों से उतना परेशान नहीं था, जितना बाबा की प्रतीक्षा करने से कष्ट हो रहा था। मैं बराबर उनके बारे में सोचता रहता था। उन्होंने कहा था कि वे दो दिनों में ही आ जाएंगे, पर अब तक उनका पता न था। मैं गांव जाकर उनसे मिलना चाहता था, पर हर किसी ने मुझे ऐसा करने से रोका। आपको यहीं प्रतीक्षा करनी चाहिए, क्योंकि आपको बाबाजी का यही आदेश है।

अंत में, अब और अधिक प्रतीक्षा करना मेरे लिए असंभव हो उठा। मैंने निर्णय लिया कि मैं बाबा से मिलने उनके आश्रम ही जाऊंगा। अगले दिन, मैंने अपने कुछ कपड़े और स्नान वगैरह करने के कुछ सामान एक थैली में समेटे। मैं सुबह थोड़ी देर से निकला, ताकि रास्ते में मैं उनकी पसंदीदा मिठाइयां, पान और अखबार खरीद सकूं। जब मैं उस गांव में बाबा के आश्रम के पास पहुंचा, तो सुबह के 11 बजे से थोड़ा ही ज्यादा समय हो रहा था। मैं ऑटोरिक्शा से उनकी कुटिया तक लगभग दौड़ता गया, क्योंकि मैं उनके दर्शनों की अब और ज्यादा प्रतीक्षा नहीं कर सकता था। उनके कमरे में पहुंचकर मैं उनके सम्मुख दण्डवत प्रणिपात किया और अपनी भेंट-सामग्रियां उनके चरणों में रख दी।

मैंने सोचा था कि बाबा मुझे देखकर प्रसन्न होंगे, पर उन्होंने मुझसे इस तरह बातें कीं, मानों उन्हें हमारी पहली मुलाकात की कोई स्मृति न थी और न ही यह पता था कि मैं वाराणसी के आश्रम में उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। मैं जितना ही भ्रमित हुआ, उतना ही निराश भी, पर यह सोचते हुए अपनी भावनाएं परे झटक दीं कि शायद यह मेरी परीक्षा लेने का बाबा का अपना ही तरीका हो। कुछ समय बाद, उन्होंने कहा, 'तो आज बात हो ही जाए।'

उन्होंने मुझसे मेरी शिक्षा तथा पृष्ठभूमि के बारे में पूछा और यह जानकर प्रसन्न हुए कि मेरी एक सॉफ्टवेयर कंपनी तथा अन्य व्यवसाय थे और मैं कई देशों में रह चुका था। किंतु इन सबसे ऊपर, वे यह जानकर ज्यादा खुश थे कि मैं अंगरेजी बोलता था और मैंने अपनी उच्च शिक्षा विदेश में हासिल की थी। उसके बाद वे वहां आनेवाले हर आगंतुक से यह कहा करते कि ये ऑस्ट्रेलिया से एमबीए हैं। मैंने बाबा से यह प्रार्थना की कि वे मुझे उस आश्रम में रहने तथा उनकी सेवा करने का अवसर दें, पर उन्होंने तुरंत कुछ न कहा। मैं उनके निकट चुपचाप बैठा रहा। कुछ समय बाद, एक लड़की उस कमरे में आई, जिससे उन्होंने कहा कि ये मेरे शिष्य बनना चाहते हैं और पूछा कि इससे तुम्हें कोई परेशानी तो नहीं है। उसने स्वीकृति में सिर हिलाया और फिर दोनों ने वहां की स्थानीय भाषा भोजपुरी में कुछ बातें कीं, जिसे मैं नहीं समझ सका। तब बाबा ने मुझसे कहा कि तुम यहां रह सकते हो। फिर मैंने ऑटोरिक्शा छोड़ दिया।

वह लड़की, निक्की, बाबा की सेवा करती और उनके लिए भोजन तैयार करती। वे केवल एक कुंवारी के हाथों बना भोजन ग्रहण करते तथा किसी दूसरे को उनके भोजन में हिस्सा बंटाने की अनुमति नहीं थी। शायद इसका संबंध उनकी तांत्रिक साधनाओं से था। वे

उसे अपनी बेटी की तरह मानते और वह उनके साथ उनके ही कमरे में रहती। उसका भाई भी वहां आकर उनके साथ ही सोया करता, क्योंकि यह बाबा का सिद्धांत था कि वे कभी भी निक्की के साथ अकेले नहीं रहते। आश्रम में रहनेवाले अन्य लोगों से भी मेरा परिचय कराया गया। उनमें बाबा से दो साल बड़े शेषमुनि बाबा के शिष्य थे। बाबा का ड्राइवर, जिसे सभी पांडेय ड्राइवर के नाम से पुकारते, वहीं रहा करता। उनका पूरा नाम-हरि ओम पांडेय था, मैं उन गिने-चुने लोगों में से था, जिन्होंने उनका नाम जानने की इच्छा प्रकट की थी।

जब मैं वहां पहुंचा था, उस वक्त मकान बनानेवाले दस मजदूरों ने आश्रम परिसर में अस्थाई बसेरा बना रखा था, क्योंकि बाबा ने एक तीसरे भवन का निर्माण शुरू कराया था, जो लड़कियों के लिए एक डिग्री कॉलेज था। बाबा ने मुझे एक निकटवर्ती झोपड़ी में जाकर आराम करने को कहा। उनके आदेश पर मैंने कहा, 'जी, बाबा।' मैं बाबा के साथ ज्यादातर ये ही शब्द कहा करता। चाहे उनका आदेश कैसा भी अटपटा क्यों न हो, मैं बस यही कहता, 'जी, बाबा,' और मैं तभी कुछ बोलता, जब वे मुझसे कोई उत्तर चाहते। बाकी समय मैं बस चुप रहता। मैं उन्हें अपने शरीर, हृदय, मन और आत्मा के साथ अपने वित्तीय संसाधनों सहित मेरे पास उपलब्ध हर वस्तु का समर्पण कर हर तरह से एक सच्चा शिष्य होना चाहता था।

धार्मिक ग्रंथ यह बताते है कि एक गुरु तथा एक शिष्य में केवल दो ही तरह की बातचीत होती हैः जब गुरु पूछते हैं और शिष्य उत्तर देता है। और जब शिष्य कुछ पूछता है और गुरु उसका उत्तर देना चाहते हैं। एक गुरु तथा उसके शिष्य के बीच कभी कोई वाद-विवाद अथवा एक दूसरे को प्रत्युत्तर देने का कोई अवकाश नहीं होता। यह पूर्व की संस्कृति है, जिसका मैं आदर करता और उसे महत्व देता था। बाबा ने मुझे जिस झोपड़ी में भेजा, वह टूटी-फूटी थी, उसके दीवारों पर मकड़े के जाले लगे थे और उसे मरम्मत की सख्त जरूरत थी। एक कोने में एक पतली तोशक रखी थी और जैसे ही मैंने उसे फैलाया, मकड़े तथा अन्य कीड़े उससे निकल इधर-उधर भागने लगे। यह गर्द से भरी थी। सच तो यह था कि यह गर्द से ही बनी भी लग रही थी।

कुछ ही मिनटों बाद पांडेय ड्राइवर पानी के एक पाइप के साथ वहां पहुंचे और उस झोपड़ी को पूरी तरह धो दिया। मैंने उनसे तोशक को झाड़ देने का भी अनुरोध किया, ताकि वह धूल से मुक्त हो जाए, क्योंकि मुझे दमे का रोग है। उन्होंने वैसा किया भी, किंतु वह तोशक गर्द से सनी लगती ही रही। मैंने अपना मुंह ढककर उसे एक बार और झाड़ा। फिर भी, धूल मेरे अंदर प्रवेश कर ही गई। मैंने अपनी सांसें सामान्य करने को अपने इनहेलर से दो बार दवा ली और आराम करने को वहीं बैठ गया। दोपहर के बाद बाबा ने मुझे शेषमुनि के कमरे में कुछ खा लेने का संदेश भेजा।

शेषमुनि का कमरा बिना प्लास्टर चढ़ाई ईंटों से बना था, जिस पर टिन की छत थी। एक कोने में एक गंदी टोकरी थी, जिसमें आलू रखे थे, जबकि दीवारों से लगे शेल्फ पर धातु और प्लास्टिक के पुराने डिब्बे पड़े थे। दिन के उजाले में भी बड़े-बड़े निर्भीक चूहे इन डिब्बों पर पूरी आजादी से कूद रहे थे। भगवान जाने, उन डिब्बों में क्या था, क्योंकि शेषमुनि एक खास

तरह की दाल के साथ आलू ही खाते थे। चूंकि वे एक हृदयरोगी थे, अतः उनके खाने में कोई मसाला, मिर्च अथवा तेल नहीं हुआ करता। वास्तविकता यह थी कि उनके भोजन में कोई भी सुगंध या स्वाद नहीं होता था।

उनका बिस्तर एक व्यक्ति का ही था, जिसमें केवल एक-दो तोशकें थीं, जिन पर चादर नहीं थी। तकिया कुछ इस तरह गर्दभरा था, जैसे उसे कभी साफ ही नहीं किया गया हो। तकिए के निकट चाबियों का एक गुच्छा, बिना ढक्कन के कुछ पुरानी टूटी कलमें और कुछ सिक्के पड़े थे। मेज़ पर पड़ा पुराना पंखा तकलीफदेह ढंग से शोर मचा रहा था।

कमरे के एक कोने में एक अधिक आधुनिक चीज-एक गैस चूल्हा-रखी थी, किंतु पता चला कि आपात स्थिति को छोड़कर किसी को भी इसे इस्तेमाल करने की अनुमति नहीं थी। वे अपना भोजन किरासन के स्टोव पर ही बनाया करते थे। जब मैं तीन-चार वर्षों का था, उस वक्त वैसा एक स्टोव देखने की धुंधली स्मृति मेरे मन में थी। जब उससे किरासन की एक पतली धार निकालने के लिए उसमें पंप किया जाता है, तो वह जोरों का शोर मचाता है। उसी वक्त उसे जलाया जाता है। शेषमुनि ने बाद में उस स्टोव को जलाने के क्रम में अपनी घनी और बड़ी सफेद दाढ़ी का एक हिस्सा खो दिया।

वहां आने के कुछ ही दिनों बाद मुझे पता चला कि बाबा अपने आवास का नवीकरण करा रहे थे। इसमें दो कमरे, एक स्नान का कमरा, एक रसोई और एक छोटा बैठका था। ऐसा लगा कि उन्हें उसके लिए पैसे कम पड़ गए थे। अपने छोटे-छोटे खर्चों की चिंता में उन्होंने उस नवीकरण में ज्यादा खर्च न करने का निर्णय किया। मैंने बाबा से यह कहने की हिम्मत बटोरी कि उन्होंने सारा जीवन कठोर तप है और अब उसे जारी रखने की कोई जरूरत नहीं है। मैंने उन्हें अपने कमरे के लिए एक एयरकंडीशनर ले लेने की सलाह दी। जब उन्होंने यह कहा कि उनके पास उसके लिए पैसे नहीं हैं, तो मैंने कहा कि मैं उनके लिए उसे खरीद दूंगा। उन्होंने कहा कि ज्यादातर वक्त वहां बिजली नहीं रहती है; सो, एयरकंडीशनर का ज्यादा उपयोग नहीं हो सकता। मैंने एक जेनरेटर भी खरीद देने की पेशकश की। उन्होंने मुझसे पूछा कि जेनरेटर के डीजल के लिए पैसे कौन देगा और मैंने कहा कि मैं इसे अपनी कंपनी द्वारा मुझे दिए जाने वाली धनराशि से वहन कर सकता हूं।

बाबा को मेरी पेशकश पसंद आई और उन्होंने मुझे इन्हें खरीदने की अनुमति दे दी। उन्होंने मुझे कमरों के लिए कुछ फैंसी लाइट तथा दो छोटे झाड़-फानूस भी लाने को कहा। मैं अपने गुरु की हर संभव तरीके से सेवा करना चाहता था। यदि उन्होंने मुझे अपना सिर काट अपने चरणों में चढ़ा देने को कहा होता, तो मैंने उसे भी बिना विचारे ही कर डाला होता।

बाबा ने मेरी बचत और बैंक में मेरे पैसे के विषय में भी पूछा। मैंने उन्हें सच्चाई बता दी। उन्हें यह भी बताया कि संन्यास के लिए चलने के पहले वस्तुतः मैंने अपने सारे पैसे दूसरों को दे दिए। मेरे अकाउंट में कुछ पैसे इसलिए रह गए कि कई लोगों ने संभवतः मेरे प्रति अपने प्रेम अथवा चिंता से अपने चेक कैश नहीं कराए।

अगले दिन एयरकंडीशनर तथा अन्य सामग्रियां खरीदने की योजना को कार्यरूप दिया गया। बाबा ने रंजय पांडेय नामक एक व्यक्ति को बुलवाया। वे एक भले व्यक्ति निकले,

जिन्होंने बाद में मेरे लिए एक अहम भूमिका अदा की। रंजय अपनी गाड़ी लेकर मुझे लेने आए। बाबा ने कुछ और व्यक्तियों को मेरे साथ भेज दिया। उन्होंने कहा कि तुम बहुत सीधे-सादे व्यक्ति हो और दुकानदार तुम्हें बहला देंगे। मैंने कहा, 'जी, बाबा।'

बाबा अपने घर के लिए एयर कंडीशनर, जेनेरेटर तथा अन्य साजो-सामान देख बड़े प्रसन्न हुए, किंतु जब तक घर का नवीकरण पूरा नहीं हो जाता, तब तक उसमें इनमें से कुछ भी लगाया नहीं जा सकता था। उन्होंने मुझसे नवीकरण के काम की देख-रेख कर उसे तेजी से संपन्न कराने को कहा। मैंने इसे खुशी-खुशी किया, हालांकि यह एक चुनौतीपूर्ण कार्य था। जब वहां काम भी चल रहा था, तो मुझे उस फर्श पर नंगे पांव ही चलना था, जो सीमेंट, बालू और दूसरी निर्माण सामग्रियों से पटा था। हालांकि, बाबा अभी वहां नहीं रह रहे थे और वहां निर्माण कार्य चल रहा था, किंतु यह उनका आवास था और किसी को भी जूते पहनकर वहां जाने की इजाजत नहीं थी।

मैं रोज अपने पैर साफ किया करता, पर अगले ही दिन उनकी फिर वही हालत हो जाती। मेरी एड़ियां बुरी तरह फट गईं और उनसे खून निकलने लगा। यह कष्ट सहज करने में विफल हो एक बार मैं वहां का काम देखने हाउस स्लीपर पहनकर चला गया, किंतु यह एक बुरा विचार सिद्ध हुआ, क्योंकि हर व्यक्ति ने यह सोचा कि मैं अपना अहंकार प्रदर्शित कर रहा हूं। निक्की ने बाबा से इसकी शिकायत की, हालांकि उन्होंने मुझसे इस संबंध में कुछ भी नहीं कहा।

मैंने आश्रम के कष्टों की परवाह नहीं की, क्योंकि मैं अपनी साधना के लिए वहां गया था और मैंने उन्हें अपने गुरु की सेवा करने के तरीके मान लिए थे। क्या बाबा के लिए मेरा समर्पण इतना कमजोर था कि वह उनका निर्माण कार्य देखने अथवा नंगे पांव चलने से ही टूट जाता? क्या मुझे अपने शरीर की गुलामी से ऊपर नहीं उठना चाहिए? क्या मैंने अपने जीवन के पहले तीस वर्ष अपने शरीर की ही देखभाल में नहीं लगाए थे? खाने-पीने का अभाव अथवा मेरे प्रति सम्मान की कमी साधना के रहस्य सीखने के लिए चुकाई गई छोटी कीमत थी।

मैंने सोचा कि मैं जो कुछ भी सह पाने का अभ्यस्त हूं, उसके आगे धकेलने वाली कोई भी चीज मुझे एक नए स्तर तक ले जाएगी। मैं ध्यानमग्न होने के लिए व्यग्र था, ताकि मैं जगन्माता के दर्शन और समाधि की अनुभूति कर सकूं। मैं बाबा से इस दिशा में आवश्यक निर्देश की अपेक्षा करता था, पर उनसे तो एकांत में मिल पाना भी मुश्किल था, क्योंकि निक्की हमेशा उनके आसपास ही रहा करती। वह बाबा के स्कूल में पढ़ती थी, पर चूंकि वह उनका स्कूल था, इसलिए उसके लिए उसके नियम ढीले कर दिए गए थे। जब भी मैं उनके साथ एकांत में रहने के अवसर पाता, वह मेरे दिन का सबसे अच्छा समय होता।

एक ऐसे ही विरल मौके पर मैंने उनसे पूछा, 'बाबा, दरअसल मैं भगवान को देखना चाहता हूं। क्या यह संभव है?'

'तप से क्या नहीं संभव है? मां जगदम्बा अपनी बांहें पसारे अपने बच्चे की पुकार की प्रतीक्षा करती रहती हैं।'

मेरी आंखों में आंसू आ गए। मैं जगन्माता को देखना चाहता था, मैं उसकी गोद में खेलना चाहता था।

'बाबा, यदि आप उस दैवीय सत्ता के साथ अपने अनुभवों में से कोई भी मुझे बता सकें, तो मैं आपके प्रति हमेशा कृतज्ञ रहूंगा।'

वे मुस्कुराए और उन्होंने एक घटना सुनानी शुरू की, जिसे मैं एकाग्र हो सुनने लगा।

'तब मैं काफी हट्टा-कट्टा और मजबूत था और बराबर कुश्ती प्रतियोगिताओं में भाग लिया करता था। एक बार, जब मैं उन्नीस वर्ष का था, तो हम तीन साधु एक कुश्ती प्रतियोगिता में भाग लेने एक गांव जा रहे थे। रास्ते में एक नदी किनारे रुककर हमने दिन का भोजन निकाला। थोड़ी दूर से हमने एक लंबे साधु को अपनी ओर आते देखा, जो तेजी से मगर शान से चल रहे थे। उनके चेहरे पर एक चमक थी।

'मैंने मजाक में उनसे कहा, "इतनी जल्दबाजी क्यों है, महाराज? क्या आप भिक्षा के लिए भागे जा रहे हैं? आइए, मैं आपको खिलाऊंगा।"

'इसने उन्हें क्रुद्ध कर दिया और उन्होंने मुझे झिड़का, "तुम साधु जरूर हो गए हो, पर तुममें एक साधु का कोई लक्षण नहीं है।"

'मैंने उन्हें फिर छेड़ा, "क्या सचमुच? तो फिर आप ही बताइए कि एक साधु को कैसा होना चाहिए?"

'उन्होंने कहा कि यदि तुम वास्तव में यह जानना चाहते हो, तो मेरे पीछे आओ। मैंने अपनी साईकल ली और अपने साथियों से कहा कि मैं उनसे बाद में प्रतियोगिता स्थल पर ही मिलूंगा। वे साधु मुझे एक श्मशान भूमि पर ले गए। वहां एक छोटा सा मंदिर था, जिसमें देवी की एक प्रतिमा थी। उन्होंने मुझे प्रतिमा के सामने बिठाया। "अब तुम सब कुछ अपनी आंखों देखोगे।" उन्होंने दरवाजा बंद कर दिया और उसके साथ ही अंदर अंधेरा हो गया। एक दीप जलाकर उन्होंने एक अस्पष्ट सा मंत्र जपना शुरू किया। जब उनका जप पूरा हो गया, तो उन्होंने कहा, "मैं बाहर तुम्हारी प्रतीक्षा करूंगा।" यह कहकर वे वह दरवाजा फिर बंद करते हुए बाहर चले गए।

'कुछ ही पल बाद, मूर्ति ने नृत्य करना शुरू किया। वह पत्थर की प्रतिमा थी और उसे नृत्य करते हुए देखकर मैं भयभीत हो गया। मुझे पसीना आने लगा और यदि वह मंदिर न होता, तो मैं भयवश मूत्रत्याग कर देता। मैं उठ कर खड़ा हो गया, पर उस प्रतिमा ने नृत्य नहीं रोका। मैंने कुछ विचित्र आवाजें भी सुननी शुरू कीं-स्यारों और कुत्तों का भूंकना, जलधारा की आवाज, बादलों की गरज-और मैं आतंकित हो उठा। मैं फिर बैठ गया, किंतु वहां निकलती शक्ति और भी ज्यादा तीव्र तथा असहनीय होती गई। अब इसे मैं और अधिक बर्दाश्त नहीं कर सकता था। मैं कूदकर खड़ा हुआ और बगैर मूर्ति को नमन किए दरवाजा खोल भाग खड़ा हुआ। महात्मा बाहर प्रतीक्षा कर रहे थे। "क्या हुआ? तुमने क्या देखा?" उन्होंने पूछा।

'अपने अहंकार में डूबा मैं यह स्वीकार करना नहीं चाहता था कि मैं भयातुर था। "मैंने कुछ नहीं देखा," मैंने कहा। "भाग यहां से, सूअर कहीं का, तेरा चेहरा बता रहा है कि तू झूठ

बोल रहा है," साधु ने कहा।

'मैंने उनके पांव पड़कर क्षमाप्रार्थना करते हुए उनसे अपना शिष्य स्वीकार करने का अनुरोध किया। किंतु झूठ बोलकर मैंने उन्हें खो दिया। "मैं तुम्हारे जैसे किसी व्यक्ति को शिक्षा नहीं दे सकता। बेहतर हो कि तू यहां से भाग जा," उन्होंने कहा।

'उसके बाद मैं उस श्मशान में कई बार गया, किंतु उन्हें फिर कभी नहीं पाया। मैं उस मंदिर में रात में बैठा, दिन के दौरान बैठा, कभी दरवाजा खोलकर, तो कभी दरवाजा बंदकर बैठा, किंतु उस प्रतिमा ने फिर कभी नृत्य नहीं किया, न ही फिर कभी वे आवाजें सुन पड़ीं।'

उसके बाद बाबा चुप हो गए। मुझे यह अनुभव बताने के लिए मैंने कृतज्ञता से उनके सामने नमन किया। मैं उनसे साधना के विषय में प्रश्न करना चाहता था, पर उनका वह भावभरा मौन भंग करने का साहस मुझमें न था।

'मैं आ गई हूं, बाऊजी,' निक्की के आगमन ने हमारी बातचीत की समाप्ति कर दी। गांव से दो भक्त भी आ गए, जो उनके पैर दबाने लगे। यह एक ऐसी चीज थी, जिसमें उन्हें वास्तविक आनंद आता। यह दोपहर के बाद का वक्त था और इस समय वे हमेशा झपकी लिया करते थे। उन्होंने मुझे जाने का संकेत किया।

बाबा मुझसे रोज ही यह प्रश्न किया करते कि क्या मैं वस्तुतः संन्यास दीक्षा लेने के लिए गंभीर हूं। 'मैं तो इसलिए साधु बन गया कि स्कूल में मेरे शिक्षक और घर में मेरे पिता मुझे पीटा करते थे। नौ वर्ष की आयु में मैं घर से भाग गया। मैं यह जानना चाहता हूं कि तुम आखिर क्यों संन्यास लेना चाहते हो। तुम शिक्षित हो, स्वस्थ हो, युवा और सुंदर हो। मैं इसकी वजह नहीं समझ पाता।'

मैं उनकी प्रशंसा पर मुस्कुराया। 'क्योंकि मैं ईश्वर को देखना चाहता हूं, बाबा। भौतिक जीवन में मेरी रुचि नहीं है।'

'यह तो ठीक है, पर मैं नहीं समझता कि तुम्हारे इस निर्णय से तुम्हारी मां प्रसन्न होगी।'

'कोई भी यह नहीं जानता कि मैं अभी कहां हूं। पर मैं अपनी मां से हमेशा यह कहता रहा कि मैं एक दिन अपनी साधना के लिए चला जाऊंगा।'

'गुरु, मैं तुम्हें तब तक दीक्षा नहीं दूंगा, जब तक मैं तुम्हारी मां से बात नहीं कर लेता।' कभी-कभी वे मुझे प्यार से 'गुरु' कहकर संबोधित करते। एक सुबह, मुझे याद आता है कि यह 31 मार्च की तारीख थी, बाबा ने मुझे मां को फोन लगाने को कहा। यह एक ऐसी चीज थी, जिसे मैं नहीं करना चाहता था, पर मैं उन्हें इनकार न कर सका। उस वक्त मां कनाडा में राजन भैया के पास थीं। मैंने बाबा के फोन से वहां फोन लगाया जिसे मां ने उठाया। वे मेरी आवाज सुनकर भावुक हो गई। मैंने उन्हें बताया कि मैं बिलकुल ठीक हूं और मेरे गुरु उनसे बात करना चाहते हैं।

बाबा ने उससे कहा, 'हां, बेटी, यह महात्मा बनने आयें है, बना दूं क्या?'

'बाबाजी,' मां ने कहा, 'इनका बचपन से ऐसा संस्कार है। इनको ऐसा महात्मा बनाईये

कि मैं समस्त विश्व को बोल सकूं कि एक महात्मा की मां हूं।'

बाबा ने उन्हें आशीष के कुछ शब्द कहे और फोन रख दिया। वे अत्यंत प्रसन्न हुए। 'मैं खुश हूं कि तुम्हारी मां ने तुम्हारी साधना को अपने आशीष और अपनी स्वीकृति दी है। अब मैं निश्चित रूप से तुम्हें संन्यास की दीक्षा दूंगा।' यह अंतिम बार था कि मैंने अपनी साधना के बीच मां से बात की।

वे भोजपुरी में एक गाना गाने लगे, जिसे मैं समझ नहीं पाया और निक्की हंसने लगी। स्कूल के कुछ शिक्षक कमरे में आ गए और मेरे गुरु उनसे कहने लगे, 'आज मैंने इसकी मां से बातें कीं।' बाबा ने उन्हें अपनी बातचीत की जानकारी दी और फिर रामचरितमानस से एक पंक्ति सुनाईः पुत्रवती जुबती जग सोई, रघुपति भगत जासु सुत होई।

'सर्वानंद। स्वामी सर्वानंद।' उन्होंने वहीं मेरा नामकरण कर दिया।

मैं उनके सामने साष्टांग हो गया।

'मैं तुम्हें एक सिद्ध बना दूंगा,' उन्होंने आगे कहा।

मैंने अपने हाथ जोड़े और कहा, 'जी, बाबा।'

'पूर्व से ही तुम्हें सब कुछ प्राप्त है, तुम्हें बस थोड़ी यात्रा करनी है। तुम इसे लेकर ही पैदा हुए हो।'

मुझे विनय का अनुभव हुआ।

किंतु मेरी दीक्षा का दिन दो बार स्थगित हुआ। अंततः, 11 अप्रैल को बाबा ने मुझे दीक्षा दी। मेरा मुंडन हुआ और मैंने पुराने कपड़े उतार दिए। मुझे संन्यासियों के वस्त्र और एक लंगोटी दी गई, मेरा गुप्त मंत्र और नया नाम दिया गया और, सबसे बढ़कर, मुझे वह शपथ लेने का विशिष्ट अधिकार मिला, जिसकी अनुमति केवल एक संन्यासी को ही है, 'मैं नश्वर संसार का त्याग कर अब सन्यस्त धर्म में प्रवेश करता हूं।'

जिस तरह गरम तवे पर रखा मक्खन पिघल जाता है, उसी तरह इन शब्दों ने मेरे अंदर कुछ पिघला दिया। जैसे सूर्य के उदित होने पर ओस की बूंदें विलीन हो जाया करती हैं, वैसे ही उथल-पुथल से मेरा मन कहीं अलोप हो गया और एक महान शांति की अनुभूति ने मानों मुझे अपने आगोश में समेट लिया। मेरा मन उस वृक्ष की भांति हो उठा; जो तीव्र वर्षा के बाद पुनर्जीवन व नूतनता का वरदान पा लेता है। अचानक, मुझे अपने जीवन का, इस जन्म का उद्देश्य स्पष्ट हो गया और अंतर में कोई भी भ्रम शेष न रहा। मैं गुरुओं के आशीष और सिद्धों की उस परंपरा का एक अंग बन चुका था, जिसके प्रकाश ने मेरे विकारों, मेरी नकारात्मक प्रवृत्तियों का अंधकार दूर कर दिया था।

अब मुझे केवल ईश्वर के, उस परम आत्मा के दर्शन की आवश्यकता थी। मैं उस शाश्वत तत्व के एक दर्शन के लिए लालायित था, किंतु लालसा तैयारी की बराबरी नहीं कर सकती। मैंने सोचा कि मैं तैयार हूं, पर देवी का मत कुछ दूसरा था। उन्हें यह पता था कि मुझे अभी लंबी राह तय करनी है और वे सही थीं।

अध्यय दस
जी, बाबा

दीक्षा के दूसरे दिन बाबा अपने काले चोगे में फर्श पर बैठे थे। उनके ललाट पर त्रिपुंड-तीन क्षैतिज रेखाओं के साथ एक लाल टीका-लगा था तथा उनकी सुंदर जटाएं उनकी पीठ पर फैली थीं।

दरवाजा खुला और निर्माण मजदूर अंदर आए। उन्हें अपने बाकी पैसे चाहिए थे। बाबा और उन मजदूरों के बीच मजदूरी पर मतभेद हो गया और बाबा ने एकाएक उन्हें गालियां देनी शुरू कीं। मैंने कभी किसी साधु को गालियां देते नहीं देखा था और जैसे-जैसे उनकी गालियां और ज्यादा सजीव और भद्दी होती गईं, मैं स्तब्ध रह गया। भय से कांपते मजदूर जल्दी से खिसक लिए। मैं नहीं जानता था कि मुझे क्या करना चाहिएः जब मुझे जाने के लिए न कहा गया हो, तब जाना चाहिए अथवा जब मेरे गुरु क्रुद्ध हों, तो बैठे रहना चाहिए।

किंतु तब मुझे राहत मिली, जब निक्की बाबा के लिए एक कप चाय लेकर कमरे में आई। जब वे उसे चुपचाप पी रहे थे, तो वह उनके पास बैठ गई। उन्होंने मुझे कमरे से चले जाने के लिए कहा। मैं बाहर चला आया और मन में एक बड़ी उथल-पुथल लिए एक छोटे पेड़ की छाया में बैठ गया। मैंने यह कभी नहीं सोचा था कि मेरे गुरु, मेरे सिद्ध ऐसे शब्द जानते भी होंगे, क्रोध में अपशब्द कहने का तो प्रश्न ही क्या। मुझे संदेह ने घेर लिया। मैं सोचने लगा कि मैं यहां क्या कर रहा हूं। क्या मैं एक सही स्थान पर हूं? कहीं मैंने भूल तो नहीं कर दी?

मैं यह नहीं समझ पाया कि बाबा ने अपनी पैंसठ वर्षों की साधना में क्या प्राप्त किया था, यदि अब भी वे एक सामान्य व्यक्ति की तरह इतना क्रुद्ध हो सकते हैं। तुरंत ही मैंने ऐसे विचारों के लिए दोषी भी महसूस किया। आध्यात्मिक ग्रंथ यह कहते हैं कि एक शिष्य को अपने गुरु के प्रति पूर्ण रूप से आज्ञाकारी होना चाहिए। मैंने स्वयं से कहा कि उनके उस व्यवहार के पीछे अवश्य कोई औचित्य होगा। संभवतः यह मेरे लिए एक परीक्षा हो।

'बाऊजी आपको बुला रहे हैं,' मैंने सिर उठाकर देखा, तो निक्की वहां खड़ी थी। मैं

उठकर बाबाजी के कमरे में गया और उनके निकट बैठ गया।

'आज की घटना की वजह से चिंतित मत होना,' बाबा ने कहा। 'कुछ लोग केवल डंडे की ही भाषा सुनते हैं। मैं एक वृद्ध व्यक्ति हूं और अब खुद को बदल नहीं सकता। जब मैं क्रुद्ध हो जाता हूं, उस वक्त बस मेरे निकट मत रहा करो, क्योंकि यह अत्यंत उग्र हो सकता है,' उन्होंने मुझे एक बार फिर बाहर भेजने के पूर्व कहा।

मैं वापिस आकर फिर उस पेड़ की छांव में बैठ गया। हालांकि मुझे सदमा लगा था, पर मैं बाबा को कोई कम नहीं आंक रहा था। वे पैंसठ वर्षों से भी ज्यादा समय से साधु थे, जबकि मैं अभी तीस वर्षों का था। मैं स्वयं को उनका मूल्यांकन करने योग्य नहीं समझता था। और यदि मैं उनपर संदेह ही करूं, तो फिर मेरा समर्पण कहां था? उन्होंने तो मुझे अपना शिष्य बनने को आमंत्रित नहीं किया था। यह एक ऐसा विकल्प था, जिसे स्वयं मैंने चुना था और मैं स्वयं से अपने द्वारा चुने विकल्पों की जिम्मेवारी स्वयं लेने की अपेक्षा रखता था। मैंने स्वयं कहा कि मुझे अपने मूल्यांकनों तथा शर्तों से ऊपर उठने की जरूरत है। इसके बजाए कि मैं अपने गुरु से यह अपेक्षा करूं कि उन्हें कैसा होना चाहिए, मुझे यह सीखना चाहिए कि वे जैसे हैं, मैं उन्हें उसी रूप में स्वीकार करूं और जिस तरह वे चाहते थे, उसी तरह रहूं।

मैं अपने मन को इस तरह सोचने की ओर प्रवृत्त कर सकता था, पर मेरा शरीर इतना कुछ सह पाने को तैयार न था। मैं वहां के भोजन, रहने की व्यवस्था तथा जलवायु से अपना तालमेल बिठा पाने में कठिनाई महसूस कर रहा था। इससे भी बदतर तो यह था कि आश्रम चारों ओर से गेहूं के खेतों से घिरा था और मुझे भूसे से एलर्जी थी। मेरी दवाएं प्रायः असरहीन साबित हो रही थीं। ज्यादातर वक्त मेरी सांसें उखड़ी रहतीं और मैं हांफता रहता। हवा में फैले परागकणों ने मेरी नाक बंद कर दी और अंततः जोरदार दमा उभर आया। मुझे प्रत्येक कुछ मिनटों पर उठकर बलगम को थूकने बाहर जाना पड़ता। सुबह और दोपहर के बाद जब मैं बाबा के निकट बैठा करता, मुझे थूकने के लिए खासी दूरी तय करनी पड़ती।

बाबा लकड़ी की चौकी पर बाहर सोया करते, जबकि मैं अपनी तोशक ईंटों की ऊबड़-खाबड़ सतह पर फैला उस पर सोता। वह तोशक भी बस रूई की पतली परत पर लिपटी सूती चादर के सिवा और कुछ न थी और उसपर सोने की आदत डालने में मुझे समय लग गया। सारी रात मैं एक छोटे से कीड़े से बचने की कोशिश करता रहता, जिसे स्थानीय लोग कुटकी कहा करते। मच्छर की तरह इसे रक्त चूसने के लिए मानव की रक्त शिराएं ढूंढ़ने की जरूरत नहीं होती। यह तो जहां भी चाहे, वहीं त्वचा में एक छिद्र कर डालता और वहां खुजलाहट भरे ददोरे निकल आते। बाबा के शरीर से ये कीड़े दूर रखने हेतु एक मच्छरदानी थी, पर मेरे पास कुछ भी नहीं था। मैं चाहे जिस तरह भी अपना शरीर ढक लूं, वे अंदर घुस ही आते और मैं अपने पूरे बदन में लाल ददोरे लिए जाग जाता था। एक सुबह बाबा को वे ददोरे दिखाते हुए मैंने पूछा कि क्या मैं भी आपकी जैसी एक मच्छरदानी ले सकता हूं। उन्होंने मुझे मजबूत बनने को कहा।

स्नान करना भी आसान न था। जब स्नान करता, तो मेरा बदन खुजाने लगता, क्योंकि मैं वहां के पानी का अभ्यस्त नहीं हो पाया। जमीन से पानी खींचने के लिए एक हैंडपंप का

इस्तेमाल करना पड़ता जिससे मुझे अनायास मेरे बचपन में घर के उस हैंडपंप की याद आ जाती, जिसका हम इस्तेमाल किया करते थे। यहां एक बिजली की मोटर भी थी, पर वह बाबा की पानी टंकी भरने के लिए सुरक्षित थी। बाकी सबको हैंडपंप ही इस्तेमाल करना था।

पानी निकालना मेरे लिए कोई समस्या न थी। मैं बाबा के लिए कुछ भी करने को तैयार था। मैं उन्हें किसी भी छोटे-बड़े मुद्दे से परेशान करना नहीं चाहता था। मैं उनके लिए आनंद का एक स्रोत होना चाहता था, तनाव का नहीं। फिर, उनके पास पहले से ही बहुत सारे मुद्दे थे और मैं उनमें कोई बढ़ोतरी नहीं करना चाहता था। उन्होंने सार्वजनिक रूप से यह घोषणा कर डाली थी कि वे एक मंदिर तथा लड़कियों के लिए एक कॉलेज का निर्माण कराने जा रहे हैं। कॉलेज का शिलान्यास लोकप्रिय योग संत बाबा रामदेव ने किया। निर्माण कार्य आरंभ हो गया, पर पैसों की कमी पड़ गई। गांव में यह खबर फैलने लगी कि जब तक बाबा अपनी जमीन का एक हिस्सा नहीं बेचेंगे, वे निर्माण कार्य पूरे नहीं करा सकेंगे।

जब मैं बाबा के आश्रम में तीन सप्ताह रह चुका, तो एक दिन उन्होंने मुझे बुलाया और मंदिर तथा कॉलेज के निर्माण से संबद्ध अपनी चिंता मुझे बताई। उन्होंने कहा कि हालांकि मैं निकट भविष्य में पैसों के आने की उम्मीद करता हूं, पर तत्काल तो मेरे हाथ एकदम से खाली हो चुके हैं।

मैंने उनसे चिंता न करने को कहा और उन्हें यह आश्वासन दिया कि जो कुछ भी मेरा पास है, सब आपका ही है। बाबा ने मुझे अपने खाते से 5 लाख रुपए निकालने को कहा। मैंने उनसे कहा कि यह रकम पूरी नहीं पड़ेगी, क्योंकि हमें निर्माण सामग्रियों के आदेश भी देने की जरूरत थी। उन्होंने मुझसे 6 लाख रुपए निकालने को कहा, मैंने ऐसा ही किया।

ये रुपए पाकर बाबा बड़े खुश हुए और कहा कि उनके सिर से एक बड़ा बोझ उतर गया, क्योंकि अब निर्माण कार्य आगे बढ़ सकता है। वे यह महसूस करते कि इस प्रोजेक्ट को पूरा करना उनकी प्रतिष्ठा का सवाल था। मैंने उनसे कहा कि जब तक मैं यहां हूं, मैं आपके सम्मान की जान देकर भी रक्षा करूंगा।

किंतु ऐसा प्रतीत हुआ कि बाबा की मेरे जीवन में कोई रुचि नहीं थी। जल्दी ही, ऐसी स्थिति हो गई कि मुझे प्रायः भूखा रहना पड़ता। जब मैंने उन्हें नोटों की ये गड्डियां दीं, उसके तीन दिन बाद ही कुछ विचित्र सा घटित हुआ। उन्होंने मुझसे कहा कि मैं उनके सुबह के दूध को हाथ नहीं लगाया करुं। मैने हमेशा की तरह 'जी, बाबाजी' तो कहा, पर चकित रह गया। अब तक उन्होंने हर सुबह अपने लिए आने वाले दूध से एक गिलास दूध मुझे देने की अनुमति दे रखी थी और यही मेरी सुबह की खुराक था। केवल दूध के साथ दमे की दवा लेना कठिन था, पर मेरे लिए कोई दूसरा चारा न था। संयोग से दूध के साथ लेने के लिए मैंने बिस्किट की नियमित आपूर्ति की व्यवस्था कर ली थी।

मैं यह सोचे बगैर न रह सका कि आखिर हो क्या रहा है? क्या बाबा एक बार फिर मेरी परीक्षा ले रहे हैं? दीक्षा के एक ही दिन बाद मैंने उन्हें गलियां देते देखा। पैसे लेने के तीन ही दिन बाद वे मुझसे कह रहे हैं कि मैं दूध न छूऊं। मैं समझ नहीं पा रहा था कि मैं फिर किस तरह जीवित रहूं अथवा सुबह की अपनी दवाएं लिया करूं। बाबा ऐसा क्यों कर रहे हैं? एक

बार फिर, इन प्रश्नों के कोई उत्तर न थे, केवल अपने गुरु पर संदेह करने का अपराधबोध था।

मैं सोचने लगा कि किस तरह अपने लिए दूध की व्यवस्था करूं और अचानक मुझे शेषमुनि की याद आई। गांव से एक कार्यकर्ता उनके लिए एक किलो दूध लाया करते थे। जब मैंने शेषमुनि से पूछा कि क्या मैं भी कुछ दूध खरीद सकता हूं, तो उन्होंने साफ इनकार कर दिया। 'तुम कठिनाईयों को सहना सीखो', उन्होंने कहा। मैं न तो चकित हुआ न ही उद्विग्न, क्योंकि यह जगह अब अजूबों से भरी महसूस होने लगी थी। यहां कुछ भी संभव था। मैंने खुद पर काबू पाया और यह तय किया कि मैं सुबह के समय केवल बिस्किट और पानी लूंगा। इस खुराक पर मैं मर तो नहीं जाऊंगा।

शेषमुनि की प्रतिक्रिया एक दूसरी वजह से भी चकित करने वाली नहीं थी। ग्रामीणों ने मुझे यह बताया था कि वे अब एक झक्की वृद्ध व्यक्ति होने के पहले एक क्रुद्ध युवा व्यक्ति हुआ करते थे। वे चार बच्चों के साथ कभी गृहस्थ जीवन में थे। जब वे पैंतीस वर्षों के थे, तो बाबा ने उन्हें संन्यास लेने का आदेश देकर उसमें दीक्षित कर दिया, ताकि वे पूर्णकालिक तौर पर बाबा की सेवा में रह सकें। वे कभी भी इस तरह का जीवन नहीं चाहते थे, किंतु उन्होंने अपना जीवन अपने गुरु को समर्पित कर दिया।

अब, जब वे सतहत्तर वर्षों के हो चुके थे, तो उनके पास उनकी देख-रेख करनेवाला कोई न था। वे अशक्त हो चुके थे और उनका लगभग परित्याग ही कर दिया गया था। मुझे उनके लिए दुख हुआ। उन्होंने एक बार मुझसे कहा था, ''सबने मुझे ठगा है और धोखा दिया है, मेरा जीवन तब इससे कहीं अच्छा था, जब मैं अपने परिवार के साथ एक गृहस्थ था।'' तब मैं समझा कि वे क्यों चाहते थे कि मैं कष्ट झेलूं। कष्टों के परिणाम से लोगों की दो किस्में विकसित होती हैं: वे, जो नरम और भले हो जाते हैं तथा वे इसकी भरसक कोशिश करते हैं कि किसी और को कष्ट नहीं झेलना पड़े; दूसरे वे, जो कठोर तथा कड़वे हो जाते हैं और दूसरों को भी उसका शिकार बनाते हैं।

शेषमुनि का स्वास्थ्य बदतर होने लगा। उन्होंने यह निर्णय किया कि वे कुछ दिनों के लिए अपनी पत्नी तथा बच्चों के पास जाकर आराम करेंगे। जाने के पहले उन्होंने अपना गैस सिलिंडर हटा लिया, मगर आटे और दाल रखने के बरतन मेरे लिए छोड़ दिए। अब मेरे लिए खाना पकाने का एक ही तरीका बचा था कि मैं किरासन स्टोव का इस्तेमाल करूं, जिसकी प्रक्रिया दुरूह और समयसाध्य थी। मुझे किसी की मदद लेनी थी। एक महिला, जो स्कूल में झाड़ू लगाती थीं, मेरे लिए बगैर प्याज और लहसुन का खाना बनाने को तैयार हो गईं।

प्याज और लहसुन को तामसिक माना जाता है, क्योंकि वे शरीर में उद्वेग और आलस्य का संचार करते हैं। जब तक मेरी साधना पूरी न हो जाए, मुझे इस तरह के भोजन से बचना था। महिला ने मुझसे कहा कि वह दिन में केवल एक बार ही आ सकती हैं, इसलिए मैंने यह तय किया कि मैं उनके पकाए भोजन को दो हिस्सों में बांट लिया करूंगाः एक दिन के भोजन के लिए, दूसरा रात के लिए। किंतु जब मैं चपातियां खाता, तो ऐसा महसूस होता कि मैं बालू खा रहा हूं। हमने जल्दी ही यह समझ लिया कि जो आटा शेषमुनि छोड़ गए थे, वह किसी पुराने गेहूं का था और उसे पीसने के पहले धोया नहीं गया था। इस वजह से आटे में

धूल थी। उसे छानने और साफ करने का कोई उपाय न था। मैं शेषमुनि की उदारता पर चिढ़ने से अधिक मुस्कुरा रहा था।

मैं इसी तरह एक माह तक सहन करता गया। मैं अपनी चपातियां बहुत धीरे-धीरे चबाता और उतना ही खाता कि जीवित रह सकूं। क्या मैं किसी से कहकर बाजार से आटा नहीं मंगा सकता था? मैंने इस बात को बाबा तक पहुंचाया था। पर उन्होंने मुझे शिकायत न करने को कहा। 'तुम उस आटे को खाने से मर नहीं जाओगे,' उन्होंने कहा।

एक माह बाद शेषमुनि वापिस आ गए और मुझसे कहा कि मैं अपने खाने की अपनी ही व्यवस्था करूं। वे नहीं चाहते थे कि मैं उनके कमरे में खाऊं। मुझे संदेह हुआ कि वे मेरे लिए चीजें इतनी कठिन बना देना चाहते थे कि मैं भाग जाऊं। किंतु मैं यहां जगन्माता के लिए था, अपने गुरु के लिए था और उसके सिवा बाकी किसी असुविधा का कोई महत्व न था।

अब चूंकि मैं उनकी रसोई में भोजन नहीं पका सकता था, तो मैं उसके किसी दूसरे उपाय की तलाश में लगा। मैंने निर्माणकार्य में लगे मजदूरों से पूछा, जो बड़ी प्रसन्नता से अपना खाना मेरे साथ साझा करने को तैयार थे। पर उनका खाना अत्यंत मसालेदार होता। यहां तक कि उसके एक ग्रास से भी मुझे सीने में जलन शुरू हो जाती, क्योंकि मैं हमेशा से बहुत कम अथवा बगैर मसाले के ही भोजन किया करता था। उनकी चपातियां, जिन्हें स्थानीय बोली में टिक्कर कहते हैं, विशालकाय हुआ करतीं। मेरी दस चपातियां उनकी एक के बराबर थीं। मैं उनसे उनकी एक चपाती का केवल पांचवां हिस्सा ही लिया करता और उसी को लगातार चबाता रहता। वे स्वयं सारा दिन के काम से खूब थक जाते थे और उनके लिए यह संभव न था कि वे मेरे लिए बगैर प्याज-लहसुन के विशिष्ट भोजन पका सकें। इसलिए कुछ दिनों बाद मैंने वहां से भोजन लेना बंद कर दिया।

अब मेरे लिए कोई भोजन न था और मुझे बिस्किट और पानी के अपने आहार पर ही वापस आना था। मैं बाबा से मिला और उनसे अनुरोध किया कि मुझे एक छोटी सी जगह की जरूरत है, जहां मैं अपना भोजन पका सकूं। उन्होंने कहा कि यह कोई समस्या नहीं है, तुम मेरी रसोई में भोजन पका सकते हो। उन्होंने पकाने की सभी जरूरी चीजें ले लेने को कहा, केवल यह कहा कि उन्हें मेरी चीजों से अलग रखना। मैं रंजय पांडेय के यहां गया और उन्होंने बड़ी खुशी से मेरे लिए गैस चूल्हा, गैस सिलिंडर, बरतन और दूसरी चीजों की व्यवस्था कर दी। मैं जब आश्रम लौटा, तो बहुत उत्साहित था। अंततः, मैं भोजन बना सकता था और अपने तेजी से बदतर होते शरीर को पोषण प्रदान कर सकता था। मेरा वज़न लगभग पंद्रह किलो कम हो चुका था।

जब मैं बाबा के सामने साष्टांग होते हुए उनसे कहा कि मैं रसोई की सभी चीजें और बरतन ले आया हूं, तो निक्की ने आपत्ति कर दी। बाबा मुकर गए और उन्होंने कहा कि अब तुम मेरी रसोई में भोजन नहीं पका सकते। तुम घर में अंदर प्रवेश करने के कमरे में अपनी रसोई लगा लो। असहाय महसूस करता हुआ मैं केवल इतना ही कह सका, 'जी, बाबा।' उन्होंने मुझसे आगे कहा, ''हम लोग एक सुप्रसिद्ध स्वामी से मिलने वृंदावन जा रहे हैं और तुम अपनी रसोई बाद में स्थापित कर सकते हो।'' हमारे चलने के पहले निक्की ने बाबा से

कहा कि उन लोगों का गैस सिलिंडर खाली हो चुका है। सो, बाबा ने उससे कहा कि जब तक भरा हुआ सिलिंडर नहीं आ जाता, वह मेरे नए सिलिंडर से काम करे। पर, मेरी रसोई कभी भी स्थापित नहीं हो सकी, क्योंकि बाद में बाबा ने मुझसे कहा कि तुम भोजन के किसी दूसरे उपाय की तलाश करो।

हमने वृंदावन के लिए अपना सामान बांध लिया। हम लोगों के साथ कई अन्य व्यक्ति भी वहां गए। वृंदावन में बाबा को एक अच्छा सा घर दिखा, जो सारी सुविधाओं से संपन्न था और उन्होंने अपना घर वैसा ही बनवाने की इच्छा व्यक्त की। उन्होंने मेरी ओर देखा और कहा कि मेरी इच्छा है कि तुम इसकी व्यवस्था करो। मैंने झुक कर नमन किया। बाबा ने उसकी एक लाख लागत का अनुमान किया, पर वे उसमें जिस तरह की चीजें लगवाना चाहते थे, उसे देखते हुए मैं यह जानता था कि लागत लगभग दूनी आएगी। जैसे ही हम वृंदावन से लौटे, बाबा ने मुझसे कहा, ''तुम इलाहाबाद जाकर कुछ ऐसे निपुण निर्माण मजदूरों की तलाश करो, जो फूस से स्थाई ढांचा खड़ा कर सकें।'' मैंने जाकर उनसे मुलाकात की और उन्होंने 2.5 लाख रुपयों के खर्च होने का अनुमान बताया। बाबा ने मुझे लगभग तीन लाख रुपए निकाल इसे पूरा कराने को कहा।

आधुनिक कुटिया के निर्माण की देखरेख करने के अतिरिक्त मुझे कुछ अन्य काम भी सौंपे गए। बाबा ने मुझे नियमित रूप से गांव के घर-घर जाकर अपने स्कूल का प्रचार करने का निर्देश किया। सौभाग्य से मैं किसी दूसरे के साथ मोटरसाइकिल से जाता था। उसके बाद बाबा ने मुझे अपने स्कूल के बच्चों को अंग्रेजी पढ़ाने को कहा। मैंने उन्हें दलों में बांटकर पढ़ाना शुरू किया, पर मुझे इसमें कठिनाई महसूस होने लगी, क्योंकि सिर्फ बिस्किट और पानी पर जीवित रहते हुए मैं हमेशा थका-हारा महसूस करता।

बाबा चाहते थे कि मैं कॉलेज तथा मंदिर के निर्माण की देखरेख भी करूं। इसके अलावा उन्होंने मुझे स्कूल के आय-व्यय के प्रबंधन की जिम्मेवारी सौंप दी। अंततः उन्होंने मुझे कॉलेज तथा स्कूल के पूरे संचालन का भार वहन करने को कहा। इनमें से प्रत्येक आदेश के उत्तर में मैं केवल इतना ही कहा करता, 'जी, बाबा।' मैं चाहता था कि एक सच्चे शिष्य की तरह अपने हृदय पर हाथ रखकर यह कह सकूं कि मैं बाबा के लिए जो भी कर सकता था, मैंने किया। मैं यह चाहता था कि मेरा समर्पण पूर्ण हो, अन्यथा इसका कोई अर्थ नहीं रहता।

इस बीच, आश्रम के भौतिक परिवेश ने मेरी परीक्षा लेना जारी रखा। एक रात, जब मैं फर्श पर सोया था, मैं अपने दाएं कंधे में एक तेज और जलनशील दर्द की वजह से उठ गया। मैं अपने साथ एक छोटा टॉर्च रखा करता था, क्योंकि वे भयानक गरमी के दिन थे और सभी तरह के सर्प तथा बिच्छू वहां घूमते रहते। मैंने अपने बिस्तर और उसके आसपास देखा, तो पाया कि एक बिच्छू भागा जा रहा है। दर्द अत्यंत ही तीव्र था और मुझे ऐसा महसूस हो रहा था जैसे किसी ने मेरी त्वचा पर एक दहकता अंगारा रख दिया हो। उसी समय, संभवतः विष के प्रभाव से, मुझे दस्त का अनुभव हुआ। मुझे मालूम था कि शेषमुनि के पास बिच्छू के विष की दवा रहती है। मुझे तुरंत ही वहां जाना था, मगर मुझे शौच के लिए भी तुरंत ही जाने की जरूरत थी। यह कुछ अजीब सी दुविधा की स्थिति थी।

सौभाग्य से मैं हमेशा अपने साथ पानी का एक बोतल लेकर सोता था, क्योंकि हैंडपंप थोड़ी दूरी पर था। जब से यहां आया, मैं शौच से निवृत्त होने खेतों में ही जाया करता था, और मैं एक बार फिर वहां दौड़ता चला गया। हालांकि स्कूल में शौचालय थे, पर मुझे उनके उपयोग की अनुमति नहीं थी। वैसे भी, रात में स्कूल का प्रवेशद्वार बंद रहा करता था। खेतों में जाने के रास्ते में मैं जमीन में बड़े-बड़े सुराग देखता, जो सांपों के बिल जैसे लगते।

वहां से वापस लौटकर मैंने पांडेय को जगाया, जो शेषमुनि के कमरे के बाहर सोते थे और उन्होंने मुझे वह दवा दी। यह एक होम्योपैथिक दवा थी, जिसका दर्द अथवा जलन पर रंचमात्र असर न हुआ। मुझे नहीं मालूम कि विष पर उसका कोई असर हुआ या नहीं।

मैं एक बार फिर फर्श पर सोने वापिस आ गया। संयोग से मैंने वे दोनों पुस्तकें उठा लीं, जिन्हें मैं तकिए की तरह सिर के नीचे लेकर सोता था और देखा कि उनके नीचे भी एक बिच्छू था। मुझे नहीं मालूम कि वह वही था अथवा कोई दूसरा। किसी भी प्राणी को न मारने पर दृढ़ रहते हुए मैंने एक कपड़े से उसे वहां से भगा दिया। यदि मेरी नियति में किसी बिच्छू का दंश लिखा था, तो चाहे मैं एक हजार बिच्छुओं को भी क्यों न मार दूं, किसी अन्य ने आकर मुझे काट ही लिया होता। मैंने उस बिच्छू को वहां से हटा दिया और यह सारा काम बिलकुल शांति से किया, ताकि मेरे आसपास सोए किसी भी व्यक्ति की नींद में कोई खलल न हो। खैर, मेरी मृत्यु नहीं हुई। यदि कोई बिच्छू आपकी शिरा में काट ले, तो आप आसानी से मर सकते हैं। मेरे मामले में, वह बिच्छू दयालु निकला, उसने बस मेरा कंधा ही चूमा था।

अगले दिन बाबा ने मुझे फर्श पर सोना बंद करने को कहा। ‘स्कूल से दो बेंच ले लो और उन्हें एक साथ जोड़कर उन पर सोओ’, उन्होंने कहा। ‘जी, बाबा,’ मैंने कहा। बिच्छुओं से तो मेरी रक्षा हो गई, पर मच्छर काटते ही रहे। मैं स्वयं को भलीभांति ढककर उनसे बच सकता था, पर मुझे ऐसे कपड़े पहनने की अनुमति नहीं थी, जो सिले हों। ‘एक सच्चे संन्यासी के कपड़े सिले नहीं होते,’ बाबा प्रायः कहा करते। हालांकि अब मुझे यह प्रतीत होने लगा था कि कपडे, चिह्नों, प्रतीकों तथा यहां तक कि धर्म का प्रबुद्धता से कोई संबंध नहीं होता। पर, चाहे जो भी हो, मैं अपने गुरु के शब्दों का उल्लंघन नहीं करना चाहता था।

मेरा स्वास्थ्य और मेरी खुशहाली, परिवेश तथा रहने की परिस्थितियां, मान-सम्मान और सभ्यता मेरे वास्तविक सरोकार के विषय न थे। हालांकि मेरा शरीर उनसे परेशानी महसूस करता, किंतु मैं यह जानता था कि मैं उसे इनसे तालमेल बिठा लेने का प्रशिक्षण पा ही लूंगा। वहां रहने का मेरा उद्देश्य मेरे लिए कहीं अधिक महत्वपूर्ण था। मैं वहां टिका रहा, तो सिर्फ इस वजह से कि बाबा ने मुझे अपना शिष्य बनाया था और यह वचन दिया था कि वे मुझे श्रीविद्या के गुप्त रहस्य सिखाएंगे, जो मां त्रिपुर सुंदरी की तांत्रिक पूजा-आराधना थी। उन्होंने मुझे यह आश्वासन दिया था कि वे मुझे प्रशिक्षित करेंगे और मैंने स्वयं को यह वचन दिया था कि चाहे ईश्वर मेरी कैसी भी परीक्षा क्यों न ले, पर मैं पलायन न कर उस नियत तिथि की प्रतीक्षा करूंगा। बाबा के दिशा निर्देश के बगैर मेरी साधना प्रगति नहीं कर सकती और दिव्य से मिलने की मेरी इच्छा भी फलित नहीं हो सकती थी। यही तो वह वजह थी, जिसके कारण मैंने एक गुरु की तलाश की थी।

इसके अलावा, मैंने यह पाया कि मैं यहां जो कुछ भी अनुभव कर रहा हूं, वह मेरे लिए एक पाठ है। जीवन मुझे हर पल सिखा रहा था। बाबा के आश्रम में सीखी सबसे महत्वपूर्ण चीजों में एक यह थी कि मुझे किस तरह का योगी कभी नहीं बनना है।

अभी मैं अपनी साधना शुरू करने की प्रतीक्षा कर ही रहा था कि लोग मुझसे मिलने आश्रम में आने लगे। आखिरकार, मैं एक ऐसा साधु था, जिसने ऑस्ट्रेलिया से एमबीए कर रखा था और यह समाचार फैलने लगा। हालांकि, ज्यादातर लोग केवल यह जानना चाहते कि ऑस्ट्रेलिया जाने का वीजा कैसे प्राप्त किया जा सकता है। मैं अपने सामाजिक सरोकार बिलकुल समाप्त कर देना चाहता था, पर लोगों को रोकने की कोई सूरत न थी। मुझे ज्यादा से ज्यादा स्पष्ट होता जा रहा था कि यहां गहन साधना की कोई संभावना नहीं है। सच तो यह था कि ध्यान के लिए किसी उपयुक्त स्थल की तो बात ही क्या, मेरे लिए वहां विश्राम करने की भी कोई जगह न थी।

दिन के वक्त सूरज आग उगलता और मैं फूस के उस छप्पर की छाया में बैठता, जो रहने के योग्य ही न था और जहां केवल बिच्छू ही मेरे संगी थे। किंतु, अब मैंने उनसे यह कह दिया कि मैं उन्हें कोई हानि नहीं पहुंचाऊंगा और उन्हें भी मुझे परेशान नहीं करना चाहिए। फिर, एक भी बार किसी बिच्छू ने मुझे नहीं काटा। कभी-कभी वे छत पर अपनी पकड़ ढीली पड़ जाने से नीचे फर्श पर भी आ टपकते और आप उनके गिरने की धप जैसी आवाज भी सुन सकते थे, किंतु उन्होंने कभी इस शांतिसंधि का उल्लंघन नहीं किया।

आश्रम में मेरा दिन सुबह जल्दी ही शुरू होता। मैं चार बजे सुबह उठता और अपने कमरे से बाल्टी लेकर हैंडपंप तक जाता। वहां तक एक संकीर्ण रास्ते से होकर जाना होता, जिसमें एक ओर छिटपुट झाड़ियां और दूसरी ओर वृक्ष थे। मकड़े रातभर में ही वृक्षों और झाड़ियों के बीच अपने जाले बुन लेते और यदि आप सावधान न रहें, तो वे आपका चेहरा ढांप सकते थे। हैंडपंप पर मैं स्नान करता, अपनी पोशाक धोता और एक नई पोशाक पहन लेता। फिर अपनी टॉर्च और एक छोटा आईना लेकर मैं अपनी ललाट पर एक तिलक लगाता।

उसके बाद मैं आश्रम परिसर में झाड़ू लगाता, क्योंकि जल्दी ही बाबा के जागने का वक्त हो जाता और मैं यह चाहता था कि उसके बाद उन्हें एक स्वच्छ वातावरण मिले। झाड़ू से बुहारते वक्त मैं जगन्माता के पवित्र नामों का जप करता रहता। कई ऐसी चीजें होतीं, जिन्हें बाबा उस दिन अथवा उसके अगले दिन संपन्न करा लेना चाहते और सफाई का काम खत्म हो जाने पर मैं उन्हें लिख लिया करता। मेरे दिन हमेशा गतिविधियों से भरे होते। स्कूल में काम करना और पढ़ाना, बाबा की कुटिया, मंदिर तथा कॉलेज के निर्माण कार्य की देख-रेख तथा उसकी लागत का हिसाब रखने के साथ-साथ स्कूल के प्रचार की गतिविधियां मेरा सारा समय ले लेतीं। एक दिन बाबा ने सलाह दी कि मैं दिन में काम और रात में ध्यान कर सकते हूं। उन्होंने यह भी कहा कि जब स्कूल का समय समाप्त हो जाए, तो मैं थोड़ी नींद ले सकता हूं।

जब बाबा ने अपनी सारी परियोजनाएं मुझे सौंप दीं, तो उन्होंने कहा, ‘‘मैं रोजाना के मामले संभालने के लिए तुम पर भरोसा करता हूं, क्योंकि मैं अपने क्रोध पर नियंत्रण नहीं

रख सकता।'' मुझे इस पर आश्चर्य नहीं होता कि मेरे गुरु तुच्छ मामलों में क्यों व्यस्त रहते थे - वे इनमें से अधिकतर कार्य तो दूसरों के कल्याण के लिए कर रहे थे-मुझे आश्चर्य था कि वे इतने क्रोध में क्यों रहते थे। यदि उनकी जगह कोई दूसरा व्यक्ति होता, मुझे जरा भी आश्चर्य नहीं होता, पर बाबा क्यों? आखिर, वे कोई मामूली साधक तो थे नहीं। अपने जीवन के ज्यादातर वक्त उन्होंने अत्यंत कठोर संयम की साधना की थी। वे एक नागा संत और एक सुदीर्घ श्रीविद्या उपासक-त्रिपुर सुंदरी के रूप में दिव्य माता के आराधक-थे। बारह वर्षों तक उन्होंने हरिनाम दास अघोरी नामक एक सिद्ध साधक के साथ वाराणसी के एक श्मशान में रहते हुए उनके निर्देशन में विभिन्न साधनाएं की थीं। वहां के अतिरिक्त, उन्होंने वनों में, सुदूर मंदिरों में तथा पूर्ण एकांत में रहते हुए भी कई तांत्रिक साधनाएं कीं। तथ्य यह था कि बाबा तंत्र के पांचों मार्गों की कई साधनाओं में सिद्ध थे।

तंत्र को आत्मसाक्षात्कार का एक द्रुतगामी वाहक बनाने के इच्छुक किसी साधक के लिए उपलब्ध विभिन्न मार्ग ये हैं: दक्षिणाचार, वामाचार; कौलाचार-जो कश्मीर के शैवों द्वारा प्रतिपादित मार्ग है, जिसमें शिव-शक्ति संयोग पर बल दिया जाता है; समयाचार, जिसमें शरीर के अंदर नाभि के ऊपर तथा उसके नीचे उतरकर निम्न चक्रों में स्थित दिव्यमाता की आदिशक्ति की आराधना की जाती है और किसी नारी संगिनी के साथ संभोग वर्जित है तथा मिश्राचार, जो साधक की अवस्था तथा उसकी प्रगति के विभिन्न चरण के अनुरूप मिश्रित साधनाओं की अनुमति देता है।

वामाचार और कौलाचार में लगभग हमेशा ही विपरीत लिंग के एक साधक अथवा साधिका के साथ संपन्न की जानेवाली क्रियाओं तथा संभोग की आवश्यकता होती है, जबकि दक्षिणाचार तथा समयाचार में पूर्ण ब्रह्मचर्य पर बल दिया गया है। दूसरी ओर, मिश्राचार में इसे गुरु के विवेक पर छोड़ दिया गया है। तंत्र के ये पांच मार्ग अथर्ववेद से निकले हैं।

बाबा ने वृंदावन में भी दो दशकों का समय बिताया था, जहां उन्होंने तांत्रिक रीति से श्री कृष्ण की आराधना की। वैदिक मार्ग कृष्ण को परमात्मा तथा मानव प्राणी को जीवात्मा मानते हुए कृष्ण के नाम का जप, उनके माहात्म्य का कीर्तन, उनके रूपों का श्रृंगार तथा भगवद्गीता के पाठ जैसी उनकी बाह्य आराधना से संबद्ध है। वैदिक मार्ग कहता है कि मृत्यु के पश्चात भक्त भगवान से एकाकार हो जाता है।

तांत्रिक मार्ग श्री कृष्ण की आंतरिक आराधना से संबद्ध है। एक तांत्रिक मृत्यु के बाद के मिलन को आकर्षक नहीं पाता, वह इस शरीर में रहते हुए ही परमात्मा से मिलन चाहता है। इसमें साधक के अंतर में स्थित अच्छे और बुरे के सामाजिक अनुकूलनों को पूरी तरह नष्ट कर देने की आवश्यकता होती है, क्योंकि एक तांत्रिक ऐसी साधनाओं में प्रवृत्त होगा, जो समाज के लिए पूरी तरह अस्वीकार्य होंगीं। किंतु तंत्र यह कहता है कि ईश्वर को हर एक वस्तु में अनुभव करने और देखने के लिए आपको किसी भी चीज से भयभीत नहीं होना चाहिए; आपको सभी परिस्थितियों का सामना और अनुभव मन की साम्यावस्था में स्थित रहते हुए करना चाहिए। श्री कृष्ण की तांत्रिक भक्ति में राधा के माध्यम से उनकी शाश्वत संगिनी, शक्ति, के आवाहन की आवश्यकता होती है।

विभिन्न साधनाओं में अपनी सफलता के विषय में बाबा कभी बातें नहीं करते, न ही यह बताते कि उन्होंने उन सबको संपन्न किया या नहीं; किंतु, पिछले कुछ वर्षों को छोड़कर, जब वे अपने आश्रम के विस्तार में फंस गए, उन्होंने अपना पूरा जीवन साधना में ही व्यतीत किया था। उन्होंने सिद्धपीठों में अग्रगण्य, तांत्रिक साधनाओं की भूमि कामाख्या में आठ वर्ष बिताए थे। हठयोग की तपश्चर्या के अनुरूप भी उन्होंने कई साधनाएं की थीं, जिनमें पंच-अग्नि-धूना भी शामिल थी। इसमें साधक एक वृत्त खींचकर स्वयं उसके केंद्र में बैठ जाता है; जबकि, वृत्त की परिधि पर चारों दिशाओं में अग्नि प्रज्वलित रहती है तथा सूर्य के रूप में पांचवीं अग्नि ऊपर से जलती है। बाबा ने यह साधना प्रचंड ग्रीष्म ऋतु में चालीस दिन, नित्य दोपहर से लेकर 4 बजे अपराह्न तक की थी। पंच-अग्नि-धूना साधक को शरीर के अग्नि तत्वों पर पूर्ण अधिकार प्रदान करती है।

वर्षा ऋतु में बाबा ने एक वृक्ष के नीचे रहकर जलविहार की साधना की। शीतऋतु में उन्होंने बर्फीले जल के एक रिसते पात्र के नीचे बैठ जलधारा नामक साधना संपन्न की। वे नग्न बैठे रहते, जबकि उनके सिर पर मध्यरात्रि से लेकर 4 बजे सुबह तक जल के 108 पात्रों से जल प्रवाहित किया जाता। ये साधनाएं साधक को अपने शरीर के जलतत्व पर पूर्ण अधिकार प्राप्त करने में मदद करती हैं। बाबा ने खड़ेश्वरी साधना भी की थी, जिसमें वे लगातार नौ वर्षों तक बैठे ही नहीं। वे चालीस वर्षों से भी ज्यादा समय से केवल फलाहार पर रहे थे। अपना विशिष्ट आहार आरंभ करने के साथ ही वे केवल गंगाजल ही पीया करते थे।

किसी शास्त्र में ऐसी कोई तांत्रिक साधना नहीं थी, जो बाबा ने नहीं की। कुल मिलाकर, उनकी उपलब्धियां काफी प्रभावोत्पादक थीं। किंतु इन सारी साधनाओं के बावजूद, बाबा एक क्रुद्ध व्यक्ति बने रहे। उन्हें देखकर मैंने एक शक्तिशाली पाठ सीखाः धर्म अथवा धार्मिक क्रियाएं या साधनाएं मन की अशांति से मुक्ति नहीं दिलातीं, क्योंकि यह केवल किसी क्रिया अथवा साधना से ही संबद्ध नहीं है। सर्वाधिक महत्वपूर्ण तो यह है कि उन्हें किस उद्देश्य और भाव से क्रियान्वित किया जाता है। सबसे बढ़कर, आध्यात्मिक विकास के लिए अपने साथ-साथ, अपने भय, अपने भाव-ढांचे और अभ्यासों के ऊपर कठिन परिश्रम करने की जरूरत होती है। बाह्य आराधनाएं यह सुनिश्चित नहीं करतीं कि कोई अपने अहं अथवा क्रोध, घृणा एवं अपराधबोध जैसी 'नकारात्मक' अवस्थाओं से ऊपर उठ जाए। सच तो यह था कि बाबा के आश्रम में जो जितना बड़ा भक्त था, मैंने उसे उतना ही कठोर, संकीर्ण तथा अहंकारी पाया।

यहां मेरी दिनचर्या देख मेरे आसपास के सभी लोग मुझे नादान और मूर्ख समझते। वे यह मानते कि मैं यह समझ ही नहीं पा रहा हूं कि मुझसे क्या कराया जा रहा है। हो सकता है, वे सही हों।

'यहां आपका शोषण हो रहा है,' एक भक्त ने मुझसे कहा।

'मैं जानता हूं। मगर सत्य यह है कि मुझे केवल अपने कर्मों पर दृष्टि रखनी चाहिए, दूसरों के कर्मों पर नहीं। चीजों की बड़ी योजना में, अंततः, दूसरे लोग मेरे विकास के लिए केवल माध्यम अथवा कारक ही हैं। मैं यहां केवल अपने पाठ सीख रहा हूं और मैं अपने गुरु

के प्रति अपने कर्तव्य का निःस्वार्थ भाव से निर्वाह करना चाहता हूं।'

'क्या आप स्वयं को इसी तरह शोषित होने देना जारी रखेंगे?'

'यदि बाबा के द्वारा सुनिश्चित दिवस से मेरी साधना आरंभ न हुई, तो मैं यहां से चला जाऊंगा। किंतु, जब तक मैं यहां हूं, मैं उसी तरह रहूंगा, जिस तरह एक शिष्य को रहना चाहिए।'

सच तो यह था कि रुकने अथवा जाने का निर्णय इतना सुगम ना था। यदि बाबा के दो अत्यंत ही विरोधाभासी पक्ष नहीं होते, तो मेरे लिए यह निर्णय करना आसान हो जाता। एक तरफ, वे कोई भी करुणा प्रदर्शित नहीं करते और मैं जीता हूं अथवा मरता हूं, इससे उन्हें कोई सरोकार न होता। वे पूरी तरह निर्माण से जुड़ी परियोजना पर एकाग्र थे और अपना वचन बार-बार तोड़ते हुए वे मेरी साधना आरंभ करने का दिन आगे बढ़ाते गए। वे ऐसे गुरु थे जो किसी भी सामान्य व्यक्ति की तरह गालियां देते, क्रुद्ध होते और शायद ही कोई आध्यात्मिक अथवा दार्शनिक बातचीत करते।

दूसरी ओर वे एक महान तांत्रिक थे, जिन्होंने दशकों तक असाधारण तप किए थे, एक सादा जीवन जीते थे और निर्भीकता से बोलते थे। वे वह गुरु थे, जिन्होंने अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर मुझे यह आश्वासन दिया था कि वे साधना में मेरा मार्गदर्शन करेंगे। मैं उनके किस पक्ष पर विश्वास रखता? और मेरे पास ऐसी क्या योग्यता थी कि मैं अपने गुरु की परख करता?

अध्याय ग्यारह
एक कुत्ते का जीवन

जब मैं ग्यारह वर्ष का था, तो कुत्ते का एक प्यारा पिल्ला घर ले आया और उसका नाम रॉकी रखा। उसके मालिक ने बताया कि वह एक स्थानीय नस्ल तथा जर्मन शेफर्ड के बीच का संकर था, जबकि दूसरे कहा करते कि वह बस एक सामान्य कुत्ता था। जो भी हो, वह एक कमाल का पशु था। उसका सीना सुंदर और सफेद तथा शरीर मटमैले रंग का था, जिस पर चिकने रेशम से बाल थे। वह हमेशा सावधान तथा तेज-तर्रार दिखता और उसके सीधे खड़े कान जरा सी आवाज पर और कड़े हो जाते।

रॉकी को घुमाते वक्त उसे नियंत्रण में रखने के लिए हमें अपने हाथ में ब्रेड का एक टुकड़ा रखना पड़ता। वरना, वह सडक के किसी भी कुत्ते के पीछे पड़ जाता अथवा जिस दिशा में जाना चाहता, उस ओर हमें खींचता हुआ ले जाता, जैसे वही हमें घुमाने ले जा रहा हो। ब्रेड की महक ही एक चीज थी, जो उसे बस में कर सकती थी, किंतु वह भी कोई दूसरा ब्रेड नहीं। वह एक खास तरह का ब्रेड ही पसंद करता, जिस पर फलों के छोटे-छोटे टुकड़े चिपके हों और जो उसी दिन का ताजा सिंका हो।

जब भी हम खाते, वह हमारे पास ही बैठ हमारे भोजन को लगातार घूरता और हमारे पास इसके सिवा कोई चारा नहीं होता कि हम उसके साथ अपना भोजन साझा करें। उसके लिए चपाती का एक टुकड़ा ही पर्याप्त नहीं था, हमें उसपर थोड़ी सब्जी, अचार तथा दही भी लगाना होता था। गाजर के सिवा वह ठीक वही चीजें खाना चाहता, जिसे हम खाते। हमारा एक सरल सा नाता थाः हम उसे प्यार करते, और वह भी हमें प्यार देता।

एक बार, जब मैं बाबा के निकट बैठा था, निक्की उनका भोजन ले आई, जिसे पर्याप्त मात्रा में देसी घी डाल कर पकाया गया था। धनिया, हल्दी, जीरा और अदरक जैसे मसालों के साथ खालिस देसी घी की मादक महक हवा में फैल गई। मेरे मुंह में पानी भर आया। मगर, बाबा भोजन करते वक्त किसी का पास बैठना कभी पसंद न करते, सो मैं अब उठने ही वाला था; किंतु मैं शीघ्रता से उठ ही नहीं पा रहा हूं। भोजन करने कि इच्छा मेरी इच्छाशक्ति

से अत्यधिक प्रबल थी।

मुझे अनायास रॉकी की याद आ गयी। ठीक उसकी ही तरह, मेरी लार टपक रही थी और मैं उस भोजन को इस तरह निहार रहा था, जैसे मेरा जीवन उस पर निर्भर हो। मैंने उम्मीद की कि मुझ पर तरस खाकर बाबा शायद मुझे एक चपाती दे दें। अथवा शायद यह जानकर कि मैं केवल बिस्किट और पानी से गुजारा चला रहा हूं, उन्हें करुणा की अनुभूति हो और वे अपना भोजन मेरे साथ साझा करें। शायद उनके प्रति सेवा की मेरी गहरी भावना उन्हें मुझे भी एक ग्रास देने को प्रेरित कर दे। पर वैसा कुछ भी नहीं हुआ। वे अपने आहार के साथ इतने व्यस्त थे कि उन्हें मेरे चले जाने का भान तक नहीं हुआ।

मुझे लगा कि मेरा प्रेम उन्हें पिघला नहीं सकता और मेरी सेवा का कोई भी मूल्य न था। मेरे बचत खाते में जो भी पैसे थे, वे प्रायः समाप्त हो चुके थे और उन्हें देने को मेरे पास कुछ भी न बचा था। उसी समय, मुझे एक दूसरी अनुभूति भी हुईः किसी के भी साथ जो कुछ होता है, उसका संबंध इससे होना आवश्यक नहीं है कि आप कौन हैं और आप क्या दे सकते हैं, बल्कि इससे भी है कि दूसरा व्यक्ति क्या चाहता है।

बुनियादी रूप से, यदि लोग आपके पक्ष में नहीं आना चाहते, तो आप उन्हें अपने पक्ष में नहीं ला सकते। ऐसा नहीं है कि वे प्रेम अथवा समर्पण नहीं चाहते, वे चाहते हैं, पर आपसे नहीं। उन्होंने अपनी भावनाओं का निवेश कहीं अन्यत्र कर छोड़ा है। आप उनके प्रियपात्र होना चाहते हैं, पर वे आपको केवल एक कुत्ते के रूप में देखते हैं, शायद एक प्रहरी कुत्ते के रूप में। आप उनके प्रति प्रेम से भरे हैं, पर उनमें आपके लिए कोई प्रेम नहीं है। आपसे वे सारी चीजें बड़ी सरलता से प्राप्त कर लेते हैं; शायद इसलिए, उनकी दृष्टि में आपका कोई मूल्य नहीं होता। विडंबना तो यह है कि यदि आप उन्हें अपने विषय में निश्चित महसूस करने देना न चाहें, यदि आप पीछे हट जाएं, तो वे नाराज अथवा क्रुद्ध हो जाते हैं।

एक दूसरे गांव से बाबा के एक भक्त ने एक दिन उन्हें अपने घर बुलाया और बाबा ने कह दिया कि वे आएंगे। इसी बीच, उनका ड्राइवर लापता हो गया। वह दो दिनों की छुट्टी लेकर गया था, मगर बहुत दिनों बाद तक नहीं आया। बाबा की गाड़ी कौन चला कर ले जाएगा, यह एक बड़ी समस्या थी। आश्रम में मेरे अलावा और कोई भी नहीं था, जो ड्राइव करना जानता हो। बाबा ने टैक्सी में जाने से इनकार कर दिया। वे अपनी टोयोटा इनोवा में ही जाना चाहते थे। मैंने उन्हें ड्राइव कर ले जाने की पेशकश की। उन्होंने कहा, ‘तुम एक साधु हो, ड्राइवर नहीं। मैं तुमसे वही काम लूंगा, जो तुम्हारी पोशाक के उपयुक्त हो।’

जब वह दिन निकट आने लगा, तो बाबा रोज शाम को वह मुद्दा उठाते। मैं कुछ नहीं कहता, क्योंकि उन्होंने मुझसे पहले ही कह दिया था कि वे मुझसे ड्राइव कराना नहीं चाहते थे। फिर भी, मैं उन्हें चिंतित देखना नहीं चाहता था, तिस पर यह एक मामूली सी बात थी। एक दिन उन्होंने अपने दिल की बात बताई और कहा कि उन्हें यह विश्वास न था कि मैं ड्राइव कर सकूंगा। स्पष्ट था कि गाड़ी चलाने की जानकारी होना उस गांव के लिए एक बड़ी बात

थी। मुझे नहीं मालूम था कि भारत में ऐसे गांव अभी मौजूद हैं।

मैंने मोंटेरे तट से लॉस एंजिलिस तक हाइवे 1 पर अवैधानिक रफ्तार से और ईस्ट कोस्ट के हाइवेज पर दिमाग को सुन्न कर देनेवाली गति से अपनी पोर्श कार चलाई थी। मैंने ऑकलैंड और ऑरिगोन, सिडनी तथा सन फ्रांसिस्को, वेल्स एवं वेलिंगटन के अलावा पूरी दुनिया के कई महानगरों की सड़कें नापी थीं। मैं अपनी कार कितनी भी संकरी जगह से होकर निकाल सकता और इस पर गर्व किया करता था। इस बात से बेपरवाह कि किसी जगह पर लेनों की कितनी संख्या है अथवा मेरे आसपास कितना ट्रैफिक है, मैं निर्भीकता से लेन बदला करता। और अब, गांव की एक सड़क मेरे लिए समस्या होगी? मैं मन ही मन मुस्कुराए बगैर न रह सका।

जब यह मुद्दा फिर उठा, तो मैंने एक बार फिर गाड़ी चलाने की पेशकश कर दी। 'अबे, तू बकलंड ही रहा,' उन्होंने मुझसे भोजपुरी में कहा। मुझसे यह कहने के लिए कि मैं एक मूर्ख ही रहा, उन्होंने एक भद्दे शब्द का प्रयोग कर दिया। मैंने अपना सिर झुका लिया। हालांकि गालियां देना बाबा के लिए एक सामान्य सी बात थी, पर यह पहला अवसर था, जब उन्होंने मुझे गाली दी। वे तुरंत नरम हुए और निक्की को एक पैकेट बिस्किट लाने का संकेत किया। उसे खोलते हुए उन्होंने मुझे दो बिस्किट दिए।

उस भक्त के यहां जाने का दिन आ पहुंचा, किंतु ड्राइवर का कहीं अता-पता न था। कोई वैकल्पिक व्यवस्था भी नहीं हो सकी। यह गांव तकरीबन 30 किमी दूर था। अंत में, बाबा ने मुझे ड्राइव करने को कहा। जब मैंने ड्राइव किया, तो बाबा मेरी ड्राइविंग से खुश नजर आए और उन्होंने कार में बैठे दूसरे लोगों से कहा कि यह लड़का पांडेय ड्राइवर से बेहतर गाड़ी चलाता है। फिर उन्होंने मुझसे कहा, 'बस, थोड़ा धीरे चलो।'

जब हम उस भक्त के गांव पहुंचे, तो हमने पाया कि उसने घर के आगे एक तंबू लगा रखा था। बाबा एक मंच जैसी ऊंची जगह पर बैठे, जिसे उनके लिए विशेष रूप से सजाया गया था और मैं फर्श पर ही बैठने ही वाला था, तभी मेजबान द्वारा मेरे लिए एक कुरसी लाई गई। मैंने बाबा की ओर देखा। उन्होंने अनुमति देते हुए सिर हिलाया और मैं उस पर बैठ गया। यह पहला अवसर था, जब मैं बाबा के सामने कुरसी पर बैठा। बाबा के सामने कुर्सी पर बैठते मुझे इतना बोझ ना लगा क्योंकि उनका मंच अब भी मुझसे ऊंचा था।

बाबा अंगरेजी के कुछ वाक्य जानते थे। वास्तव में, वे सामान्य वर्तमानकाल को अच्छी तरह जानते थे। वे जब भी थोड़ी-बहुत अंगरेजी बोलते, तो मैंने उन्हें किसी दूसरे काल के वाक्यों का प्रयोग करते नहीं सुना। 'भाट इज दा डिफेरेंस भिटव्हीन इंडियान एंड फारन खुलटर?' उन्होंने सबके सामने मुझसे पूछा। मैं मुस्कुराया और हिंदी में जवाब देने लगा, किंतु उन्होंने मुझे अंगरेजी में बोलने को कहा। यह मुझे कुछ विचित्र सा लग रहा था, क्योंकि वहां कोई भी अंगरेजी नहीं जानता था। पर चूंकि यह बाबा का आदेश था, इसलिए मैं मंच पर गया और कुछ शब्द अंगरेजी में बोला। फिर मैं हिंदी में बोलने लगा और अगले तीस मिनट तक आध्यात्मिक चर्चा करता रहा। बाबा ने भी प्रवचन किया। यह एक दिलचस्प अवसर रहा।

उसके बाद हम लोगों को मेजबान के घर भोजन करने का न्योता मिला। उन्होंने फर्श पर एक चादर बिछाई और हमें उस पर बिठाया। घी में तली पूरियां, कद्दू की स्वादिष्ट सब्जी, छोले, नींबू और आम का अचार, सिरके में डुबोए अदरक, ताजा दही और मसाले के मिश्रण में खीरे की कतरन डालकर बना रायता परोसा गया। मैंने डट कर स्वादिष्ट भोजन किया। महीनों के बाद, ऐसा पहली बार हुआ था कि मुझे स्वादिष्ट भोजन मिला था। उन्होंने हमें आम भी पेश किए और मैंने बड़ी खुशी से एक आम लिया। जब उन्होंने मुझसे यह पूछा कि क्या आप एक आम और लेंगे, तो मैंने उत्साह से हां में सिर हिलाया।

भोजन करते वक्त मुझे अपने अंतर में एक गहरी उदासी महसूस हुई। इसके पहले कभी मैंने आहार को इतना स्वाद लेकर नहीं खाया था। भोजन के मामले में मैं हमेशा से अपनी पसंद का व्यक्ति रहा और स्वयं के लिए अच्छे भोजन की उपलब्धता को संभवतः मैंने एक निश्चितता मान लिया था। मैं यह सोचा करता कि जीवन ने मेरे लिए एक शानदार उद्देश्य तय कर रखा है और मुझे यह आत्मविश्वास था कि ऐसी कोई भी चीज न थी, जिसे मैं प्राप्त नहीं कर सकता। मुझे यह भरोसा था कि मैं अधिकतर लोगों से अधिक जानता था। यदि सच कहा जाए, तो मैंने यह मान लिया था कि मैं विशिष्ट हूं। पर अब मुझे कितना न्यून कर दिया गया था?

यह मैं ही था, जो फर्श पर पंक्ति में बैठ अपना भोजन समाप्त कर अपने लिए दूसरे आम की उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहा था। भले ही मैंने स्वयं की एक संन्यासी के रूप में कल्पना कर रखी हो, पर वास्तव में मैं एक भिखारी था। साधुओं के विपरीत, एक भिखारी केवल लेता है और उसके बदले कुछ देता नही है, एक आशीर्वाद भी नहीं। अपने मेजबान को देने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं था। मैं मौन रोने लगा और मेरी आंखों से आंसुओं की दो बूंद भोजन में ही गिर पड़ी। जब मेरी ओर एक आम बढ़ाया गया, मैंने बगैर ऊपर देखे अपना हाथ उठाकर उसे ले लिया।

मेरे सामने भिखारियों की छवि नाच गईः फटे-पुराने चीथड़े पहने, गंदे, दुर्गंध देते हुए, अनुशासनहीन, नशीली दवाओं के व्यसनी, असहज अनुभूतियां जगाते, विचित्र से, पागल भिखारी। आज, मैं उनमें से ही एक था। अपने भोजन की जिस उत्सुकता से मैं प्रतीक्षा कर रहा था, उसे खाते वक्त उसके प्रति मैं जिस स्वामित्वभावना का अनुभव कर रहा था, आम के लिए मैंने जो लालसा महसूस की-मेरी जरूरत किस तरह उनसे भिन्न थी? मैं यह समझ गया कि क्यों भिखारियों को मिला भोजन वे इतना आनंद लेकर खाते हैं, चाहे वह बेस्वाद ही क्यों न हो। अचानक, मैं यह जान गया कि उनमें से एक होना कैसा होता है और किसी विकल्प के बिलकुल न होने का क्या अर्थ होता है।

जब हमें वापस जाना था, तो कुछ देर के लिए मेरी स्थिति एक भिखारी से ऊपर उठा कर एक ड्राइवर की कर दी गई। आश्रम पहुंचने पर बाबा ने कहा कि मैं थक गया हूं और मैंने उनके पांव दबाने की अनुमति चाही। लगभग 10 बजे थे, जब वे सो गए, जबकि मैं उनके पांव दबाता ही रहा। काफी देर बाद मेरी पीठ अकड़ गई, क्योंकि वे मच्छरदानी लगाकर सोए थे, जबकि मैं उनपर झुका हुआ पांव दबा रहा था और केवल मेरे दोनों हाथ मच्छरदानी के

अंदर फैले थे। मुझे नहीं मालूम कि कितने घंटे बाद बाबा उठे और मुझसे पूछा कि तुम यहां क्या कर रहे हो। मैंने बताया कि मैं आपके पांव दबा रहा था। उन्होंने मुझे सो जाने के लिए कहा और अपनी करवट बदलकर वे एक बार फिर सो गए।

मैंने उनके सामने दण्डवत किया और तेजी से अपना बिस्तर लगाया। मैं पीठ के बल सोया और शरीर को तानते हुए फैलाकर मुझे बहुत अच्छा लगा। यहां की दूसरी रातों की तरह यह रात भी बिलकुल शांत थी। आकाश तारों से भरा था, मंद बयार चल रही थी। झींगुरों की आवाजें कुछ विचित्र ढंग से राहत दे रही थीं। ऐसा लग रहा था जैसे प्रकृति स्वयं भी विश्राम कर रही हो। बाबा धीरे-धीरे खर्राटे ले रहे थे और निद्रा देवी ने अवश्य ही मुझे थपकियां दी होंगी, क्योंकि मैं उसकी गोद में गहरी नींद में सो गया। मैं 4 बजे सुबह उठ जाया करता था, किंतु उस रात मैं कुछ ज्यादा सो गया और आधे घंटे देर से जगा।

अगले दिन बाबा ने मुझे अपने कमरे में बुलाया। कुछ मिनट बाद, दो और लोग वहां आ गए। सांसारिक बातें होने लगीं और मैं उसमें भाग न लेते हुए चुपचाप बैठा रहा। मेरे निकट ही कबीर पर एक पुस्तक रखी थी, जिसे मैंने वाराणसी में खरीदा था और बाबा ने उसे पढ़ने के लिए मुझसे लिया था। मैंने उसे यह सोचकर उठा लिया कि उद्देश्यहीन बातें सुनने के बजाए एक संत के शब्द पढ़ना कहीं बेहतर है। जैसे ही मैंने उसे उठाया, मुझे दाहिने हाथ में एक परिचित किंतु भीषण तेज दर्द हुआ। इसके पहले कि मैं कुछ समझ पाता, वहां मैंने अपनी हथेली के बराबर का एक बिच्छू चलते हुए देखा, जो पुस्तक में ही छिपा था। कमरे में बैठे अन्य दो लोगों ने उसे देखा और तुरंत ही कुचल दिया। मुझे उस बिच्छू के लिए बुरा लगा।

तुमने हमारी शांतिसंधि कैसे भंग की? मैंने मृत बिच्छू से पूछा। स्वाभाविक ही था कि मुझे कोई उत्तर न मिला। संभवतः, हमारी संधि केवल मेरी झोपड़ी के लिए ही सीमित थी। या फिर यह हो सकता है कि यह एक दैवी इच्छा हो। वह जो भी हो, उसे मैंने स्वीकार किया। मेरी हथेली पर नीले रंग का एक दाग उभर आया और वह तुरंत ही सूज गई। बाबा ने संजय को, जो उनके पैर दबा रहा था, अपनी मोटरसाइकिल से मुझे गांव के क्लिनिक में ले जाने के लिए कहा।

उस क्लिनिक का संचालक एक होम्योपैथिक डॉक्टर थे, जो सभी प्रकार की अन्य दवाएं भी देते थे। क्लिनिक में भीड़ लगी थी और वहां के वातावरण से मुझे बचपन में देखे एक पशुचिकित्सालय की याद हो आई। एक टूटी टोकरी इस्तेमाल की हुई सुइयों, मिट्टी से सने बैंडेजों तथा खाली पैकेटों समेत अन्य मेडिकल कचरे से पटी थी।

लकड़ी की नंगी चौकियों पर कुछ मरीज बैठे और अन्य लेटे थे, कुछ को ग्लूकोज चढ़ाया जा रहा था। डॉक्टर मेरे निकट आये और उन्होंने कहा, ‘चिंता मत कीजिए, आपको मैं खुद ही इंजेक्शन लगाऊंगा।’ स्पष्ट था कि वह मुझे अपने सहायकों की मर्जी पर नहीं छोड़ना चाहते थे। उन्होंने मुझे उसी जगह पर इंजेक्शन लगाने की कोशिश की, जहां बिच्छू ने काटा था। सुई अच्छी तरह अंदर नहीं गई और इससे मुझे भयानक दर्द हुआ। उन्होंने फिर कोशिश की, इस बार अचानक तथा तेजी से, और दर्द से मैं लगभग चीख ही पड़ा। मैं तो वह इंजेक्शन लेने का ही अनिच्छुक था, क्योंकि यह बिच्छू के विष की कोई काट नहीं, बल्कि

केवल एक दर्दनिवारक दवा थी, किंतु यह बाबा का आदेश था। जल्दी ही रंजय वहां आ गए और वे मुझे वापस आश्रम ले गए।

कुछ घंटे बाद मैं बहुत बीमार हो गया। मुझे तेज बुखार हो आया, उल्टियां होने लगीं और इंजेक्शन लगा हिस्सा बैंगनी-नीले रंग का हो गया। ईश्वर को धन्यवाद कि मेरी भूख बिलकुल समाप्त हो गई, क्योंकि खाने के लिए मेरे पास कुछ भी नहीं था। यहां तक कि बिस्किट के जो पैकेट मैं झोपड़ी में रखा करता था, चूहों ने उन्हें भी समाप्त कर दिया था। मैं दो दिनों तक यों ही कष्ट सहन करता रहा। बाबा ने मुझे इसके लिए झिड़की भी लगाई कि मैं दूसरों से बातचीत के दौरान पहले की तरह हंसता-मुस्कुराता नहीं था। अंततः, उन्होंने मुझे यह कहते हुए डांट लगाई कि मैं पर्याप्त मजबूत नहीं था। सच तो यह था कि मेरी स्थिति देखकर उन्हें घबराहट हो रही थी।

शाम को रंजय आए और उन्होंने मेरा सूजा हुआ और संक्रमित हाथ देखा। मैं अस्थिकंकाल की तरह एकदम सूख चुका था। पिछले कुछ दिनों से हो रही उल्टियों तथा आहार की पूरी अनुपस्थिति से मेरी कमजोरी और भी ज्यादा उभर आई थी। मेरे शरीर का तापमान देखकर, उन्होंने बाबा से कहा कि इन्हें तुरंत मेडिकल देख-रेख की जरूरत है। वे मुझे उस अस्पताल में ले जाना चाहते थे, जो वे उस गांव में चलाते थे।

'उसे यहां से बाहर ले जाओ।' बाबा चिढ़े हुए और परेशान से लग रहे थे। रंजय मुझे लेकर अपनी पत्नी, डॉ. वाणी के पास भागे, जो एक स्त्री और प्रसूति रोग विशेषज्ञ थीं। उन्होंने तेजी से मेरी परीक्षा की और पूछा कि क्या आपको किसी चीज की एलर्जी भी है। फिर उन्होंने मेरी नस से एंटीबायोटिक दवाएं चढ़ाना शुरू किया।

'मुझे उम्मीद है कि यह गर्भावस्था से संबद्ध कोई दवा नहीं होगी,' मैंने मजाक किया।

वह थोड़ा घबरा सी गईं। 'नहीं, मैं सामान्य दवाओं के उपचार भी करती हूं।'

वे मुझे वह दवा दिखाने लगीं।

'खैर, मैं केवल यह सुनिश्चित कर रहा था कि आप कल मेरी जचगी कराने की सोचकर तो मुझे यहां दाखिल नहीं कर रही हैं।'

हम सभी हंस पड़े। ऐसा कर मुझे अच्छा और मानवीय जैसा महसूस हुआ, मैं कुछ दिनों से हंस न सका था। दवा चढ़ना आरंभ होने के कुछ ही मिनटों बाद मुझे सीने में जकड़न जैसी महसूस हुई और मैं सांस ले पाने में असमर्थ हो गया। मेरे पास मेरा इनहेलर नहीं था। सब कुछ इतनी हड़बड़ी में हुआ कि मैं उसे साथ लाना बिलकुल ही भूल गया था। साधारणतः, मैं कहीं भी जाते समय उन्हें अपने साथ अवश्य ले लिया करता था। मुझे अपनी सांसें अपने कंठ से नीचे उतार पाने के लिए काफी संघर्ष करना पड़ रहा था। मैंने अचानक जोरों से सांस लेने, हांफने और गहरी सांसें लेने जैसे सभी उपाय आजमाए, पर किसी से कुछ भी लाभ न हुआ। डॉ. वाणी और भी ज्यादा घबरा गईं। यह एक गांव था और रात के 9 बज रहे थे। अब कोई भी दुकान खुली न थी। चूंकि डॉ. वाणी दमे के मरीजों के उपचार की विशेषज्ञ नहीं थीं, अतः उनके पास इनहेलर अथवा ऐसी कोई दवा उपलब्ध नहीं थी, जो मेरी तकलीफ कम कर पाती। रंजय और मैंने यह फैसला किया कि हम आश्रम जाकर इनहेलर ले आएं। उनका

ड्राइवर घर जा चुका था और उन्हें कार ड्राइव करना नहीं आता था, इसलिए वे मुझे अपनी मोटरसाइकिल से ले गए। चूंकि बारिश होती रही थी, नतीजतन, मुझे आश्रम ले जाने में हमें बहुत से कीड़ों से पार पाना पड़ा। 8 किमी की वह दूरी अनंत जैसी लगी और मैं यहां तक सोचने लगा कि कैसे जीवित रह पाऊंगा।

जब हम वहां पहुंचे तो बाबा कुछ लोगों के साथ बाहर बैठे थे। मुझे उनके सामने हमेशा की तरह साष्टांग करने में कठिनाई महसूस हुई। उन्होंने मुझसे एक प्रश्न किया, जिसे मैं सुन भी न सका, उसका उत्तर दे पाने की तो बात ही न थी। बोलने में बिलकुल असमर्थता महसूस करते हुए मैं भागते हुए अपना इनहेलर लेने गया। उसकी दस से भी ज्यादा खुराकें लेने के बाद मुझे चक्कर आने जैसा महसूस हुआ, पर कुछ देर बाद मेरी स्थिति में सुधार आने लगा। जब मैं उन सबके पास लौटा, तो रंजय को मेरे स्वास्थ्य के विषय में बाबा को बताते हुए सुना। मैंने उनके प्रश्न का उत्तर न दे पाने के लिए उनसे क्षमा याचना की। 'अरे जा भईया, जावा इन्हा से। पहले ठीक हो जा।' वे चिढ़े हुए और क्रुद्ध लगे।

हालांकि, यहां मेरा जीवन कठिन था, फिर भी यह उपयोगी था, क्योंकि हर एक घटना मेरे झूठे अस्तित्व पर एक और प्रहार की भांति थी। प्रत्येक घटना मेरे अहं के कठोर कवच में एक और दरार डाल रही थी। जब आपके साथ एक विशेष तरह का व्यवहार किया जाता है, तो अंततः आप उसी तरह महसूस करना शुरू कर देते हैं। मेरे साथ इस तरह व्यवहार किया जा रहा था, जैसे मैं कुछ भी नहीं होऊं और मैं वैसा ही महसूस भी करने लगा था।

मैंने एक बार फिर नमन किया और रंजय मुझे वापिस अपनी जगह पर ले आए। मैंने स्नान किया और डॉ. वाणी ने मुझे एक हलका आहार दिया। यह अंतिम बार था, जब मुझे अपने आहार के लिए प्रयास करना पड़ा। जब मुझे उस अस्पताल से छुट्टी दे दी गई, तो वे मेरे लिए दिन में दो बार टिफिनबॉक्स भेजने लगीं, जिसमें दो सब्जियां, नर्म चपातियां और एक मिठाई हुआ करती। उनके द्वारा मेरे लिए अत्यंत प्रेम से बनाए जा रहे इस आहार से मुझे पोषण मिलने लगा। उन्होंने प्रतिदिन ताजा दही और दो आम भी भेजने शुरू किए। अपना अस्पताल चलाने तथा अपने परिवार की देखरेख करने के बीच भी उन्होंने प्रतिदिन मेरे लिए भोजन पकाने का वक्त निकाल लिया। रंजय प्रतिदिन दो बार मेरा आहार लेकर आते और लौटते। यदि ये दो देवदूत न होते, तो बाबा के आश्रम में, मैं शायद जीवित न बचता।

इन सबके बावजूद, दिन बीतते जाने के साथ मेरा जीवन कोई बेहतर नहीं हो रहा था। एक ऐसा परिवेश, जो मुझे ध्यान नहीं करने दे रहा था, मेरी मुख्य समस्या बना रहा। मैंने हर चीज और हर किसी का केवल इसलिए त्याग किया था कि मैं स्वयं को प्राप्त करना और दिव्य के साथ एकाकार होना चाहता था। मैं पुस्तकों तथा प्रवचनों से ऊब चुका था तथा आत्मसाक्षात्कार के वास्तविक अनुभव के लिए लालायित था। किंतु यहां तो मैं कुछ भिन्न भांति के लोगों के साथ आ पड़ा और मेरा लक्ष्य कहीं से भी मेरे निकट नहीं आ रहा था। मेरा परिवार तथा मित्र मेरे लिए चिंतित थेः उन्हें नहीं पता था कि मैं कहां हूं, क्या कर रहा हूं अथवा कैसा हूं। जो कुछ करने के लिए मैंने उन्हें छोड़ा था, उसे न करते हुए ऐसा अनुभव होता कि मैं उनके साथ बहुत अन्याय कर रहा होऊं।

अंततः, मैंने स्वयं यह स्वीकार किया कि यहां मैं केवल अपना समय नष्ट कर रहा हूं। अब बाबा को अपनी निर्माण परियोजना के लिए मेरी जरूरत न थी, क्योंकि समस्त काम संपन्न होने जा रहे थे। मंदिर के लिए पत्थर खरीदने से लेकर उनकी कुटिया के निर्माण तक मैंने उनकी कार्य सूची का प्रत्येक बिंदु पूरा कर दिया था। उन्हें मेरे प्रेम और समर्पण की भी जरूरत नहीं थी; मैं उन्हें जो कुछ दे रहा था, उससे वे कभी प्रसन्न नजर नहीं आते। मैं उनके हृदय में एक स्थान पाने की प्रार्थना नहीं करना चाहता था। मैं उनके चरणों के निकट एक स्थान के लिए भी संघर्ष नहीं करना चाहता था। मैं जो कुछ भी कर सकता था, वह सब कर चुका था। उन्होंने जो भी कहा, मैंने वह सब किया, किंतु मैं उन्हें द्रवित न कर सका।

गुरु के प्रति अपनी कृतज्ञता निवेदित करने का दिन, गुरुपूर्णिमा, उस वर्ष 27 जुलाई को था। यह तेजी से निकट आता जा रहा था और बाबा ने मुझे उसके बाद साधना के पथ पर बढ़ाने का वचन दिया था। विभिन्न तांत्रिक क्रियाओं के लिए मुझे कुछ सामग्रियां खरीदने की आवश्यकता थी, किंतु उन सामग्रियों की सूची बनाने के लिए उन्होंने मुझे कभी अपने निकट नहीं बिठाया। मैंने मन ही मन यह तय कर लिया था कि यदि गुरुपूर्णिमा के पश्चात भी मेरी साधना आरंभ न हुई, तो मैं आश्रम छोड़ दूंगा, क्योंकि पूर्णिमा के दिन इसका आरंभ न करने का अर्थ फिर अगले एक माह तक रुकना होगा। मैं अब पल भर भी प्रतीक्षा करने को तैयार न था। मैं समय का मूल्य समझता था, मैंने अपने जीवन में बहुतेरे अच्छे-बुरे और सुविधा तथा असुविधाजनक दौर देखे हुए थे।

गुरुपूर्णिमा के दिन बाबा के साथ मैं वाराणसी गया। भारत के विभिन्न भागों से उनके भक्त उनके दर्शनों के लिए वहां पहुंच रहे थे, हालांकि वहां किसी आध्यात्मिक चर्चा का कार्यक्रम न था। वे अपने उत्कर्ष काल में एक विख्यात तांत्रिक रह चुके थे और उनके ये भक्त उन्हें तब से ही जानते थे। बाबा ने उनमें से किसी को भी चीखते हुए कुछ न कहा, किसी को कोई गाली नहीं दी। इसके विपरीत वे उनसे प्रसन्नतापूर्वक बातें करते रहे। पूरे दिन वे अपनी समस्याएं रखने के लिए उनसे समय लेते रहे।

वाराणसी में अब मेरे लिए कोई आकर्षण शेष न था। मैंने स्वयं से पूछा कि क्या कभी मैं शोर-शराबे और भीड़भरी इन सड़कों, कचरे तथा अव्यवस्था के बीच ईश्वर को पा सकता हूं। क्या यहां आत्मसाक्षात्कार का क्षण कभी आ भी सकेगा? कभी-कभी मुझे लगता कि ईश्वर ने काफी समय पूर्व ही वाराणसी का परित्याग कर दिया था। यहां उसका कोई चिह्न न था, न मंदिरों में, न पुजारियों में और न स्थानीय निवासियों अथवा तीर्थयात्रियों में। केवल किताबी और निष्फल जानकारी का ही बोलबाला था।

बाबा ने वाराणसी में अपने ठहरने की अवधि लंबी करने का निर्णय लिया और मैं इस निष्कर्ष पर पहुंच गया कि मेरी साधना की दिशा में उनकी कोई योजना नहीं है। शाम को उन्होंने मुझे अपने कमरे में बुलवाया, जो लोगों से भरा था और मुझे एक सिख सज्जन से पंजाबी में बातें करने को कहा। वे चाहते थे कि मैं उन्हें एक चुटकुला सुनाऊं। मैंने कोशिश भी की, पर कोई भी मुझे याद न आया। बाबा यह जानना चाहते थे कि मैं क्यों हंस नहीं रहा था, लोगों से घुलमिल नहीं रहा था। मैं चुप रहा। कहने को कोई नई बात तो थी नहीं। मेरे हृदय में

क्या था, यह उन्हें मालूम था। उन्होंने एक बार मुझसे कहा था कि मैंने ईश्वर को नहीं देखा, पर उसे देखना संभव है। मैंने उन पर विश्वास किया था। उस संभावना के लिए जो कुछ भी करना था, उसमें जिसकी भी जरूरत थी, मैं उसे करने को उत्सुक था। मैं इसके लिए अपने प्राण भी न्योछावर करने को तैयार था। मेरी वर्तमान चुप्पी किसी वजह से उन्हें यातना दे रही थी। वे अचानक बोल पड़े, 'खुशी से रहना हो, तो रहो, नहीं तो जाके मां को...' (उन्होंने मुझे मां की भद्दी गाली दी।)

यदि बाबा के अतिरिक्त मैंने किसी और विभूति की पूजा की भी, तो वे मेरी मां ही थीं। उन्हें यह कहते हुए सुनने से मुझे उनसे बांध कर रखने वाला अंतिम बंधन भी खुल गया। मैं चाहता था कि अपने प्राण ले लूं, मैंने उन्हें वह वाक्य पूरा कैसे करने दिया? मैंने उनके प्रति कोई क्रोध अनुभव नहीं किया, मुझे केवल मोहभंग तथा निराशा की अनुभूति हुई। मैंने उन्हें दण्डवत किया और वहां से बाहर आ गया। शायद बाबा ने महसूस किया कि उनके मुंह से क्या निकल गया, क्योंकि उन्होंने तुरंत ही मुझे बुलवाया और मुझे मिठाइयां दीं। पर अभी-अभी वे जो कुछ बोल गए थे, उस घाव पर कोई मलहम नहीं लगाया जा सकता था।

अगली सुबह कुछ भक्त गांव लौट रहे थे और उन्हें ले जानेवाली गाड़ी में बाबा के भी कुछ सामान रखे थे। मैंने उनसे कहा कि मुझे बैंक जाने की जरूरत है और उसके लिए मुझे अपने बक्से की चाबी की जरूरत है, जो आश्रम में ही है। मैंने उनसे कहा कि मैं कुछ ही घंटों में लौट आऊंगा। वस्तुतः मैंने उनसे अर्धसत्य कहा। मुझे बैंक तो जाना था, पर मैंने उन्हें यह नहीं बताया कि वापिस लौटने की मेरी कोई योजना नहीं है। यह पहली और आखिरी बार था कि मैंने अपने गुरु से असत्य कहा। गाड़ी में ही मैंने किसी का फोन मांगकर रंजय का नंबर मिलाया। मुझे उनका नंबर याद था और आज भी वह नंबर भूला नहीं। मैंने उनसे कहा कि वे अपनी कार लेकर बाबा के आश्रम के निकट आ जाएं।

'सब ठीक तो है?' रंजय ने चिंतित स्वर में पुछा।

'हां, चिंता न करें।'

मैंने बाबा के लिए एक पत्र लिखा और उसे रंजय के पास छोड़ दिया। मैं बाबा को ठीक उसी तरह छोड़ रहा था, जिस तरह मैंने कभी अपना परिवार छोड़ा था। मैंने रंजय से पूछा कि क्या बाबा उन्हें हानि पहुंचाने की कोशिश कर सकते हैं। उन्होंने मुझे अपना सर्वोत्तम हित छोड़कर और किसी की भी चिंता न करने को कहा। मैंने कुछ पैसे रंजय के पास रख छोड़े थे। उन्होंने पूछा कि क्या मुझे उसमें से कुछ चाहिए। मैंने हां में सिर हिलाया।

वे तुरंत उसे निकालने बैंक गए। इस बीच, डॉ. वाणी ने मेरे लिए एक स्वादिष्ट भोजन तैयार किया। जब मैं उसे खा रहा था, तो वे रो पड़ीं। रंजय तथा डॉ. वाणी उस गंदगी से मेरे छुटकारे पर प्रसन्न थे परंतु मुझसे बिछुड़ने का दुख भी सता रहा था। वे दोनों मुझसे विलग नहीं, बल्कि मेरे ही एक विस्तार थे, उनका प्रेम किसी से भी कम न था।

मैंने आश्रम से रेलगाड़ी द्वारा हरिद्वार और उसके बाद आगे हिमालय में जाना तय किया, जिसके प्रति मैं हमेशा से एक गहरा खिंचाव महसूस करता रहा था। संभवतः, पिछले जन्मों में मैं वहां जा चुका था। रंजय ने मेरे टिकट बुक कराए और मैं वाराणसी में बैंक गया। मेरे

पास बहुत कम पैसे बचे थे और मुझे ज्यादा पैसों की जरूरत थी। मेरे निष्क्रिय बैंक अकाउंटों में से एक में मैंने कुछ अधिक, लगभग दो लाख, रुपए पड़े पाए, जिसे मैंने अपने सक्रिय अकाउंट में अंतरित कर लिया। बाद में, मेरी कुछ ऐसी परिसंपत्तियों से भी डिविडेंड आने वाले थे, जिन्हें मैं अपने संन्यास के समय इसलिए समाप्त नहीं कर सका था, क्योंकि वे लॉक-इन अवधि में थीं। अचानक, पैसों की कमी मेरी साधना के लिए कोई समस्या होने नहीं जा रही थी। मैंने अपने बाल और दाढ़ी मुंडवाए। आईने में अपनी ही तसवीर देख मैं पहचान न सका कि यह मैं ही हूं। मैं बहुत कमजोर, झटका हुआ तथा आहत दिखा। किंतु, मेरा मनोबल ज्यों का त्यों था।

हिमालय के अपने रास्ते में मैंने आकाश की ओर देखा, अपने अंतर्मन को देखा और कहा, 'हे ईश्वर, हे जगन्माता, यदि सचमुच आपका अस्तित्व है, तो कृपया इसे सुनें: आज के बाद मैं कभी भी किसी मानव के द्वार पर दस्तक नहीं दूंगा। कभी भी मैं किसी गुरु अथवा उपदेशक से किसी उत्तर की मांग नहीं करूंगा। यदि आप मौजूद हो, तो मुझे अपना रूप दिखाओ अथवा मैं ध्यान में ही अपना प्राणांत कर डालूंगा। यदि मुझे विश्वास हो गया कि आप नहीं हो, तो मैं संसार के कोने-कोने में जाकर लोगों से यह कहूंगा कि वे आपके पीछे अपना वक्त बरबाद न करें; मैं उनसे कहूंगा कि ईश्वर नहीं है।'

जीवन के पहले तीस वर्षों में मैंने जो भी जाना अथवा जो भी मैं बना, अब मेरे लिए उनका अस्तित्व समाप्त हो चुका था। चार माह पहले मैंने स्वयं को परिभाषित करनेवाले सारे ठप्पे त्याग दिए थे, पर अब कहीं जाकर मुझे अपनी वास्तविकता का भान हो रहा था। मैं एक सीईओ अथवा करोड़पति, एक ऑस्ट्रेलियाई या यहां तक कि एक भारतीय भी नहीं था। मैं कोई शिष्य अथवा साधु तक न था। मैंने पाया कि सचमुच मैं कुछ भी न था। बाबा के यहां मेरे अनुभवों ने मेरे साथ यही किया: मैं जो कुछ था, इसने मुझे उन सभी चीजों से रिक्त कर दिया। और जब आप रिक्त हो जाते हैं, तभी आप भरे जाने की संभावना को स्वीकार कर सकते हैं। मेरा प्याला अब रिक्त हो चुका था।

मेरे जीवन के ये सारे वर्ष केवल एक तैयारी थे और यह अवधि सागर में एक लहर, आकाश में एक बादल और किसी जलप्रपात के समीप एक धुंध जैसी अनुभूत हुई: यह आई, और उसी तरह, यह चली गई। अब खोने को कुछ भी न था, एक गुरु भी नहीं। मैं सभी चीजों के मूल स्रोत तक पहुंचने को तैयार था।

अध्याय बारह
गुफा में

मैं हरिद्वार स्टेशन पर सुबह उतरा और बदरीनाथ जाने के लिए बस में सवार हुआ, जो उत्तरी हिमालय में अंतिम बस्ती था। भारी वर्षा और भूस्खलन की वजह से मार्ग जगह-जगह अवरुद्ध था। शाम होने तक, उन घुमावदार सड़कों पर बस में बैठा मैं पूरी तरह थक चुका था। पूरे दिन मैंने मुश्किल से ही कुछ खाया था, क्योंकि बगैर प्याज-लहसुन के मुझे ज्यादा विकल्प न मिल सके। यात्रा करते वक्त मार्ग में उपलब्ध भोजन को अस्वीकार करना मेरी मूर्खता ही थी। अपने सिद्धांतों पर अडिग रहने तथा अपना संतुलन खो देने के बीच केवल एक पतली रेखा होती है, जिसे मैंने धुंधला दिया था।

मार्ग-अवरोधों की वजह से हमारी बस अपने समय से चार घंटे पीछे चल रही थी। मैं उसके निश्चित ठहराव, जोशीमठ, के 50 किमी पहले चमोली में उतरकर एक होटल में चला गया। मैं इतना थक चुका था कि मुझे भोजन करना भी गवारा न था और मैं स्नान करके तुरंत सो गया। अगली सुबह, मैंने जोशीमठ के लिए एक साझा टैक्सी की। लगभग दस दूसरे व्यक्ति और उसमें आ अटे।

जोशीमठ से मैं एक दूसरी साझा टैक्सी में बैठ गया। उस टैक्सी के एक युवा यात्री मुझे एकटक ताक रहे थे। मैंने अपना चेहरा टटोला कि कहीं उसपर कुछ है तो नहीं। कुछ मिनट बाद, वह मुझे देख मुस्कुराए और प्रत्युत्तर में, मैं भी मुस्कुराया। कुछ देर बाद उन्होंने मेरी प्रशंसा करते हुए कहा कि आपके पास एक दिव्य आभामंडल है। उन्होंने पूछा कि क्या आप बदरीनाथ जा रहे हैं और यदि आप वहीं जा रहे, तो कहां ठहरेंगे। मैंने उन्हें बताया कि मेरे मन में कोई जगह पहले से तय नहीं है और मैं कहीं भी ठहर जाऊंगा। उन्होंने अपनी जगह की पेशकश की और मैंने उसे इस शर्त पर स्वीकार किया कि मैं बिस्तर अथवा बाथरूम साझा नहीं करूंगा। वे राजी हो गए। उन्होंने दिनेश अग्रवाल के रूप में परिचय देते हुए बताया कि वे बदरीनाथ के नियमित यात्री हैं और प्रतिवर्ष एक बार वहां अवश्य जाते हैं।

अंततः, हम अपने गंतव्य तक पहुंचे। जैसे ही मैंने बदरीनाथ की भूमि पर पैर रखे, अपने

अंदर आनंद का एक विचित्र सा आवेग अनुभूत किया। यहां उठती आध्यात्मिक तरंग अवर्णनीय थी। आकाश वर्षा के मेघों से आच्छन्न था। मैं उनकी कालिमामय सुंदरता से अभिभूत हो उठा। उन पलों में, जब मैं वहां पहाड़ों की विशुद्ध हवा में सांसें लेते हुए खड़ा था, मैंने जाना कि वर्तमान पल में रहना, केवल ... 'होना' क्या होता है।

बदरीनाथ धाम में मैं अपने आंसू रोक न सका। मेरे सामने विष्णु का एक रूप था-एक प्रतिमा। क्या भगवान ने ही यह पत्थर नहीं बनाया था? क्या वे प्रत्येक चीज में नहीं थे? मैं बस यह चाहता था कि वह पत्थर से बाहर निकल अपना सच्चा रूप मुझे दिखाएं। क्या यह बहुत बड़ी मांग थी?

'हे भगवान,' मैंने कहा, 'परित्यक्त व तिरस्कृत एक महान पापी आपके द्वार पर आया है। मैं किसी का भी नहीं हो सका, न अपने प्रियजनों का, न ही अपने गुरु का। मैंने कोशिश की, पर अपने गुरु की कृपा पा न सका। मैं स्वयं को भी नहीं जीत सका। मैं जानता हूं कि मैं आपको भी नहीं जीत सकता, पर आप तो एक सदा कृपालु स्वामी हो। मुझे यह अनुमति दो कि मैं आपके भीतर स्वयं को खो दूं। आप जानते हो कि मेरे हृदय में क्या है, आप जानते हो कि इस संसार में और कुछ भी नहीं है, जो मैं चाहता हूं। मैं आपसे यह प्रार्थना करता हूं कि या तो मुझे मार दें अथवा मुझे आप तक पहुंचने का रास्ता बताएं। आप पतितपावन हो, आप गिरे हुओं को उठाते हो और मैं बहुत गिरा हुआ हूं। इसलिए, कृपा करके मुझे स्वच्छ करो। आप मेरे अंतिम आश्रय हो। मैं नहीं जानता कि आराधना कैसे की जाती है, मैं नहीं जानता कि कैसे भिक्षा मांगी जाती है, मैं नहीं जानता कि किस तरह जीया जाता है और मैं नहीं जानता कि क्या अच्छा है। मैं केवल एक ही चीज जानता हूं: मेरा जीवन आपके बिना अर्थहीन है।

'मेरी परीक्षा लो, मुझे कष्ट दो, यातना दो, मुझे नष्ट कर दो, मेरे स्वामी, किंतु कृपाकर मुझे अपने निकट रखो। मैं किसी योग्य नहीं हूं, फिर भी मैं आपका हूं; मैं आपको पाने के योग्य नहीं हूं, पर मैं आपको नहीं छोड़ूंगा। मैं इस संसार से ऊब चुका हूं; मैं इस दुनिया से भयभीत हूं; आप मुझे जो चाहो करो, पर मुझे ठोकर मारकर न हटाओ। मैं संसार को प्रसन्न करने के साधन नहीं चाहता, मुझे बताएं कि आपको प्रसन्न करने का क्या मार्ग हो सकता है। मैं अपनी पराजय पूरी तरह स्वीकार करता हूं; मैं चीजों का अनुमान लगाकर थक गया हूं। हे करुणामय, सदा कृपालु श्री हरि! मुझमें अब कोई शक्ति शेष नहीं बची है; कृपाकर मेरा त्याग न करो; वरन, अपने इस अहंकारी और अवज्ञाकारी प्रियपात्र को स्वीकार करो। आपकी कृपा मुझे आपके दर तक ले आई है, कृपाकर मेरे लिए अपने द्वार खोलो; मुझे बाहर कर उसे बंद न करो; मेरा त्याग न करो। इस पवित्र स्थल में, आपकी उपस्थिति में मैं यह प्रतिज्ञा लेता हूं कि आपका यह बालक आपके लिए तब तक रोना नहीं छोड़ेगा, जब तक आप सामने नहीं आते।'

अचानक, आसमान गरजा, बादल फटे और घनघोर वर्षा शुरू हो गई। मेरे गालों पर आंसुओं की धारा बहती ही रही। मैं जितना ही रोता, दिव्य के उतना ही निकट अनुभव करता। वे पीड़ा के आंसू न थे; वे आनंद के आंसू भी न थे; वे प्रेम तथा समर्पण के आंसू थे।

मेरे लिए द्वार अब भी नहीं खुले थे, पर मुझे लगा कि मैं घर पहुंच चुका हूं।

मंदिर के किसी भी पुजारी ने मुझे परेशान न किया और अगले कुछ घंटे मैंने उस कृपा के प्रति समर्पण करते हुए मंदिर परिसर में ही व्यतीत किए, जिसमें मुझे ढांप लिया गया था। मेरे अंदर कोई सोता फूट पड़ा था और मैंने स्वयं को अपने सारे कर्मों तथा सब कुछ होने से धोकर साफ कर लिया।

अपराह्न में नीले साफ आकाश में सूर्य चमक रहा था। दिनेश ने जोर दिया कि मैं उसके साथ चलकर एक-दो जगह देखूं, जहां ध्यान के लिए एक उपयुक्त स्थल मिल सके।

हम मानागांव गए, जो चीन की सीमा के पहले भारत का अंतिम गांव है, किंतु मैं कोई पसंदीदा जगह नहीं पा सका। मैं किसी गुफा में बैठ दिन और रात आती-जाती हर सांस के साथ दिव्य रूप पर केंद्रित रहकर ध्यान कर पाने के अवसर के लिए और अधिक प्रतीक्षा नहीं कर सकता था।

पर मुझे मानागांव लाने के पीछे ब्रह्मांड का मनोभाव कुछ और ही था। हम वहां चार युवकों से मिले, जो व्यासगुफा के दर्शन के लिए आए थे। यह स्थल मानागांव का एक मुख्य आकर्षण था। कहा जाता है कि वेदव्यास ने लगभग 5,000 वर्ष पूर्व इसी गुफा में महाभारत लिखी थी। दिनेश उनसे बातें करने लगे। उनमें से एक मेरी ही तरह शांत थे और उन्होंने अपना परिचय कृष्णमोहन के रूप में दिया। इस बीच, दिनेश तथा अन्य तीन ने और आगे जाकर भीमपुल देखने का फैसला किया। ऐसा कहा जाता कि महाबली भीम ने एक विशालकाय पत्थर को इस नदी के आरपार फेंककर इस पुल का निर्माण किया था, ताकि उनके भाई वह नदी पार कर सकें।

कृष्ण और मैंने उनके साथ जाने से मनाकर यह तय किया कि हम वहीं रुकेंगे और वार्तालाप करेंगे। वे एक साहसी व्यक्ति थे और हिमालय के अच्छे-खासे हिस्से का भ्रमण कर चुके थे। वे दो दिनों में स्वर्गारोहिणी के लिए प्रस्थान करने वाले थे। जो बदरीनाथ से 40 किमी आगे एक पर्वतचोटी है। जब मैंने उन्हें बताया कि मैं एक गुफा की तलाश में हूं, तो वे मुझे तत्काल नीलकंठ की ओर ले चलने को राजी हो गए। नीलकंठ, जिसे भगवान शिव का नाम दिया गया था, बदरीनाथ का एक पहाड़ और एक लोकप्रिय पर्यटक स्थल है। मानागांव से उस स्थल तक पहुंचने में हमें दो घंटे से भी अधिक लगे, जो नीलकंठ से कुछ किलोमीटर पहले है।

उन्होंने मुझे एक गुफा दिखाई, जो वास्तव में एक बड़ी चट्टान के नीचे एक खोह जैसी थी और मेरी जरूरतों के हिसाब से उपयुक्त थी। अगले दिन कृष्ण अपनी चढ़ाई के लिए चले गए और मैं पुनः उस गुफा की ओर निकल गया। रास्ते में एक स्थानीय निर्माण मजदूर से मेरी मुलाकात हुई, जो उस गुफा को मेरे लिए तैयार कर देने पर राजी हो गए। अन्य चीजों के अतिरिक्त, वे पत्थरों की एक दीवार खड़ी करने, एक छोटा दरवाजा लगाने, छत को एक तिरपाल से ढक मुझे बारिश से बचाने की व्यवस्था करने तथा बाहर मेरे स्नान करने के लिए एक ऊंचा स्थान बना देने पर सहमत हो गए। मैं पंचांग के अनुसार अपनी साधना की शुरुआत करने को इच्छुक था और नियत तिथि तेजी से निकट आ रही थी। मजदूर ने मुझे

बताया कि मरम्मत में सात दिन लगेंगे। अगले सप्ताह के प्रत्येक दिन, मैं अपनी गुफा तक जाकर काम की प्रगति देखता। इस बीच, मैंने दो कंबल, लकड़ी का एक तख्ता, एक गैस चूल्हा और कुछ खाद्य सामग्रियां खरीद लीं।

मेरी गुफा के रास्ते में एक दूसरी गुफा भी थी। दो दिन बाद एक साधु ने मुझे रोका और पूछा कि क्या मैं उनकी गुफा तक चलूंगा। जब मैंने कारण पुछा तो उन्होंने कहा कि कोई उन्हें एक मंत्र देना चाहता था किंतु वे लिखना नहीं जानते। वे चाहते थे कि मैं उनके लिए उस मंत्र को लिख दूं।

मैंने कहा, 'मैं आपके लिए इसे लिख तो दूंगा, पर आप उसे पढ़ेंगे कैसे?'

उन्होंने कहा, 'मुझे मालूम है कि आप अपने लिए गुफा तैयार करा रहे हैं। मैं एक दिन आपके निकट आऊंगा और आप मेरे लिए उसे पढ़ देंगे।'

उन्होंने पानी से भरे दो पीपे ले रखे थे और उनकी मदद के उद्देश्य से उनमें एक मैंने उनसे ले लिया। मैं उम्र में उनसे छोटा था, सो मैं उनसे तेज चलकर उनसे पहले उस गुफा तक पहुंच गया। वहां मैंने तीन व्यक्तियों को बैठे देखा, जो सभी गेरुए वस्त्र में थे। उनमें से दो पुरुष थे, जबकि तीसरी एक महिला थीं, जो पैंतालीस वर्षों के पार की और एक स्पष्ट आभामंडल से युक्त दिख रही थीं। उन्होंने मुझसे अंदर आकर बैठने को कहा, पर मैंने मना किया और कहा कि मैं साधु के आने की प्रतीक्षा कर रहा हूं और उनका आसन नहीं लेना चाहता हूं। वह मुस्कुराईं। 'बहुत शिष्टाचार है,' उन्होंने कहा। मैंने कुछ न कहा। मैं बस वह मंत्र लिखकर वहां से चल देना चाहता था।

वे एक भैरवी, तंत्र की एक साधिका, निकलीं और उन्होंने दावा किया कि उन्होंने कुछ सिद्धियां हासिल की थीं। एक सिद्धि से वे किसी भी व्यक्ति के अतीत, वर्तमान तथा भविष्य के विषय में जान सकती थीं। उन्होंने मेरे बारे में कुछ चीजें बताईं, जो सभी सही थीं। तब उन्होंने मुझे कर्णपिशाचिनी का मंत्र बताया और उसे लिख देने को कहा। कर्णपिशाचिनी देवी की एक निम्नस्तरीय रूप है, जिसे अपने अधीन कर उसके आवाहन द्वारा एक साधक किसी व्यक्ति के बारे में सूचनाएं हासिल कर सकता है। वह साधक के कानों में उस व्यक्ति की गुप्त सूचनाएं अत्यंत धीमी आवाज में कह देती है।

वह साधु अपनी साधना में इस मंत्र का आवाहन करना चाहते थे, ताकि वे किसी के भी विषय में कोई जानकारी प्राप्त कर उसे प्रभावित कर सकें। प्रशंसा तथा स्वीकृति की इच्छा से ऊपर उठ पाना कठिन होता है। आप क्रोध और वासना से परे जा सकते हैं, आप लाभ अथवा हानि में अप्रभावित रह सकते हैं, किंतु दूसरों की स्वीकृति और आपके बारे में क्या कहा अथवा सोचा जाता है, इससे ऊपर उठ पाना कदापि आसान नहीं होता। इस जरूरत से परे जाने के लिए गहरी अंतर्दृष्टि तथा स्व-मूल्य का शक्तिशाली बोध चाहिए। जो भी हो, मैंने साधु के लिए वह मंत्र लिख दिया।

जब हम लोग उस गुफा में बैठे थे, तो बारिश होने लगी। मुझे बहुत आनंद की अनुभूति हुई। अंततः, मैं हिमालय में साधुओं की संगति में था। और मैं स्वतंत्र था। यहां कोई संघर्ष नहीं था; अतीत अथवा भविष्य की कोई चिंता न थी। यही वह जगह थी, जहां मैं हमेशा से

होना चाहता था और जिसका हर पल एक विशुद्ध आनंद था। मैंने पहली बार एक साधु की तरह महसूस किया। अपनी श्रद्धा भावना के वशीभूत हो मैंने जगन्माता की एक पूर्ण स्तुति गाई, जिसे सुनकर भैरवी अत्यंत प्रसन्न हुईं।

'मैं तुम्हें एक विशिष्ट ज्ञान, एक अलौकिक शक्ति देना चाहती हूं, जो मेरे पास हैं,' उन्होंने कहा।

'धन्यवाद मां, पर मैं अलौकिक शक्तियां पाना नहीं चाहता।'

'ले लो बेटा, तुम ऐसे पहले और अकेले व्यक्ति हो, जिसे मैं यह दे रही हूं।'

'धन्यवाद, पर मैं इसे वास्तव में नहीं चाहता।'

'मुझे दे दीजिए, माताजी,' अन्य साधुओं में से एक ने कहा। 'मैं इसे चाहता हूं।'

उसकी उपेक्षा कर उन्होंने आगे कहा, 'तुम्हें इसे लेना ही होगा। मैं जानती हूं कि तुम कभी इसका दुरुपयोग नहीं करोगे।'

'मैं बाकी किसी भी चीज पर समय बरबाद नहीं करना चाहता। मैं बस मां का दर्शन चाहता हूं।'

'किंतु वे तो यहीं थीं! क्या तुमने नहीं देखा कि जब तुम गा रहे थे, तो एक तितली तुम्हारे पास मंडरा रही थी और वह तुम्हारे वस्त्र पर भी बैठी। वे वही थीं, यह उनका संकेत था, एक स्पष्ट चिह्न।'

'मां, मैं बहुत आदर के साथ यह कहना चाहता हूं कि मैं पिछले बीस वर्षों से मंत्रों से मां का आवाहन करता रहा हूं और मैं संकेतों, संकेतों, और ज्यादा संकेतों से ऊब चुका हूं। यदि वे वास्तविक हैं, तो मुझे अपने दर्शन क्यों नहीं देतीं? क्यों वे अपना रूप मेरे सामने प्रकट नहीं करतीं?'

गुफा में पूर्ण शांति छा गई। बाहर से पत्तों पर वर्षा के बूंदों की ध्वनि आ रही थी। बाहर की उस ध्वनि तथा अंदर की परम शांति के बीच और कुछ भी नहीं था। तब, भैरवी मुस्कुराईं।

'ऐसी बात है?' उन्होंने कोमलता से कहा। 'तथास्तु।'

उनके शब्दों से मेरे रोंगटे खड़े हो गए। 'एक वर्ष से भी कम समय में तुम्हें उनकी अत्यंत स्पष्ट छवि के दर्शन होंगे, और तब तुम तंत्रपीठ कामाख्या का भ्रमण करोगे। जाओ, मैंने तुम्हें बता दिया।'

'क्या वास्तव में? मुझे उनके पूर्ण दर्शन होंगे?'

उन्होंने कहा, 'यदि तुम्हें नहीं होंगे, तो फिर किसे होंगे, पुत्र। इंद्र का सिंहासन डोल जाएगा।'

इसके बाद के पलों में मुझे वर्षा की बूंदों की ध्वनि सुनाई देना भी बंद हो गयी; समय रुक गया। ऐसा लगा जैसे शारीरिक जीवन से, अपने चहुंओर के जगत से मेरा संबंध-विच्छेद हो गया हो। पहली बार किसी ने मुझे यह विश्वास दिलाया कि भगवान का दर्शन संभव था और मुझे उसकी छवि दिखेगी। उनके शब्दों ने मुझे अपने होने के एक बिलकुल नए स्तर तक उठा दिया; जैसे आस्था और श्रद्धा के, आत्मविश्वास तथा दृढ़ विश्वास के लाखों तीरों ने मेरे अस्तित्व के रोम-रोम को छेद दिया हो। मैंने मन ही मन संकल्प लिया के चाहे मेरा शरीर क्यों

ना नष्ट हो जाए, पर मैं दिनरात धन्यनारत हो तब तक साधना करूंगा जब तक कि ईश्वर से साक्षात्कार न कर लूं।

वे बोलती गईं, 'अब, तुम्हें चालीस दिनों की एक साधना करनी चहिए, जिसे मैं तुम्हें बताऊंगी। उस पर्वत पर,' उन्होंने एक दूरस्थ पहाड़ की ओर संकेत करते हुए कहा, 'गन्धर्व, तुम्हे गान सुनाकर जायेंगे। यदि मैं असत्य कहूं तो कुष्ठ रोगी हो जाऊं।'

'धन्यवाद, पर मैं केवल अपनी ही साधना करना चाहता हूं। मैं गन्धर्वों का संगीत सुनने के लिए चालीस दिनों का समय देने को तैयार नहीं हूं।'

'तुम मेरे विद्रोही पुत्र हो।' वे कोमलता से हंसीं। तुम इस साधना को अपनी प्राथमिक साधना के साथ-साथ ही कर सकते हो। अब और कोई बहस नहीं।'

उन्होंने मुझे गोपनीय रूप से सिखाया और कहा कि यह साधना साधक को अस्तित्व के दूसरे स्तरों का अनुभव प्रदान करती है। उन्हें इसपर अधिकार करने में तीन दशक लगे थे। उन्होंने कहा कि मैं तुम्हें वायुगमन करना, वायु द्वारा यात्रा करना भी सिखा सकती हूं। मैंने उनसे कहा कि मेरी उसमें कोई रुचि नहीं है, क्योंकि मैं केवल जगन्माता का ध्यान करने में समय लगाना चाहता हूं, न कि सिद्धियों अथवा अलौकिक शक्तियों की प्राप्ति में। फिर, मैंने उन्हें बताया कि यदि मुझे वायुमार्ग से यात्रा करने की आवश्यकता हुई, तो मैं हवाईजहाज का एक टिकट ले लूंगा।

संयोग से, एक ही वर्ष बाद मैंने कामाख्या जाने के लिए हवाईजहाज का एक टिकट खरीदा। कहा जाता है कि कुछ लोगों के शब्द कभी निरर्थक नहीं होते। सत्यसाधकों के शब्द उर्वर भूमि में शक्तिशाली बीजों जैसे सिद्ध होते हैं। वे व्यर्थ नहीं जाते, बल्कि देर-सवेर प्रकट होकर रहते हैं। भैरवी ने जो कुछ भी कहा, वह सच सिद्ध हुआ। मैंने उनसे पूछा कि वे कहां रहती हैं, तो उन्होंने कहा कि वे कामाख्या में श्मशान भूमि के निकट रहती हैं। अपनी साधना पूरी होने के बाद मैं उनसे मिलना चाहता था और इसलिए, उनसे पूछा कि मैं कैसे उन तक पहुंच सकता हूं। उनके पास संपर्क का कोई फोन नंबर न था और उन्होंने कहा कि श्मशान भूमि पहुंचकर सिर्फ उनके बारे में पूछने से पता चल जाएगा। उन्होंने पूछा कि क्या मेरी मदद के लिए मेरे पास कोई सहायक है। मैंने यह कहते हुए इनकार में उत्तर दिया कि मैं खुद पर ही निर्भर रहना चाहता हूं।

'तुम एक साधु बन गए हो, पर तुम एक राजा हो और हमेशा एक राजा ही रहोगे,' उन्होंने स्नेह से कहा। 'तुम्हारी सेवा में हमेशा कोई न कोई अनुयाई रहेगा।' फिर उन्होंने जोड़ा, 'तुम्हारा गुरु नरक में अनंतकाल तक जलेगा।'

मैं उनकी इस अचानक दी गई टिप्पणी से चकित रह गया, मैंने उन्हें बाबा के विषय में नहीं बताया था। फिर चाहे उन्होंने मेरे साथ जो भी किया हो, मैंने कभी किसी को उनके बारे में कुछ बुरा नहीं कहने दिया था, क्योंकि उन्होंने ही मुझे संन्यास की दीक्षा दी थी।

मैं चुप रहा। उन्होंने कहा, 'तुम बहुत सरल हो। तुम्हें नहीं पता कि वहां क्या कुछ हो रहा था। किंतु, अपनी सरलता तथा अपने शिशुवत हृदय के कारण तुम जगदम्बा की गोद में खेलोगे।'

उन्होंने मेरे चेहरे को कोमलता से थपथपाया और कहा, 'कस्तूरी कुंडली बसे, मृग ढूंढ़े वन माहिं।'

एक लंबे ठहराव के बाद उन्होंने कहा, 'तुम्हारी साधना पूरी हो चुकी है, मेरे पुत्र। तुम्हारे पास सब कुछ मौजूद है, अब तुम्हें अपने शरीर को और यातना देने की जरूरत नहीं है।'

मैं उन्हें पूरी एकाग्रता से सुन रहा था। उनके पास एक चुंबकीय शक्ति थी, एक असाधारण खिंचाव। उन्होंने उन वामाचार तथा दक्षिणाचार तांत्रिक साधनाओं की भी भविष्यवाणी की, जिन्हें मैं भविष्य में करूंगा।

'वामाचार? मेरी कोई ऐसी योजना नहीं है, मां।'

'तुम्हें लता साधना, महाचीन क्रम, कौलिक साधना और महामुद्रा करनी है।'

वे हंसने लगीं, क्योंकि उन्होंने जिन साधनाओं के नाम लिए, उनमें एक नारी संगिनी की आवश्यकता होती है।

'किंतु मैं तो एक संन्यासी हूं!'

'तो?'

'मैं वामाचार साधनाओं की क्रिया कैसे कर सकता हूं?'

वे फिर हंसने लगीं।

'क्यों नहीं? क्या तुम यह समझते हो कि तुम्हारी पहली साधना की सफलता एक संयोगमात्र थी?' वे काली की उस तांत्रिक साधना के बारे में इशारा कर रही थीं, जिसे मैंने एक नारी संगिनी के साथ कुछ वर्षों पूर्व किया था। मैं चकित रह गया और सोचने लगा कि उन्होंने उसके बारे में किस तरह जान लिया।

'और क्या तुम्हारे गुरु एक तांत्रिक नहीं थे?' वे बोलती रहीं। 'इसके अलावा, एक संन्यासी और एक तांत्रिक के बीच का भेद केवल किताबी है। जब तुम स्वयं सत्य की अनुभूती करोगे, तो तुम्हारी परिभाषा बदल जाएगी। अगले वर्ष तुम्हें देवी के दर्शन होंगे और तुम अपनी उच्चतम तांत्रिक दीक्षा ग्रहण करोगे। फिर तुम अगली सीढ़ी स्वयं जान जाओगे।'

'लेकिन यदि मैं यह निर्णय कर लूं कि मैं भविष्य में वामाचार साधनाएं नहीं करूंगा, तो?'

'लिखा हुआ है,' उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा। 'चाहे जो भी हो, तुम्हें वह तो करना ही होगा जिसे करने तुम यहां आए हो। कई गुह्य विद्याएं लुप्त हो गई हैं, और तुम्हें उन्हें पुनरुज्जीवित करना है। तुमने स्वतंत्र होने के उद्देश्य से इस संसार का त्याग किया है, अब अपने पैरों में बेड़ियां क्यों डाल रहे हो?'

मैंने उन्हें नमन किया। 'स्वामी वही करेगा, जो जगन्माता उससे कराना चाहेंगी,' मैंने कहा।

9 अगस्त को मैं अपनी गुफा में चला आया। यह अत्यंत ठंडी थी, क्योंकि उसकी दीवारें तथा फर्श के पत्थर केवल नम ही नहीं थे, बल्कि वे तिरपाल से ढके भी थे, इसलिए वे अपनी नमी और ठंडक बनाए रखते थे। गुफा में सूर्य के प्रकाश का प्रवेश न था और मेरे पास खुदको ढकने के लिए कोई सिले कपड़े भी न थे। हमारे शरीर में गरमी बनाए रखने का एक नैसर्गिक तंत्र होता है। किंतु इस तंत्र को अपना काम प्रभावी ढंग से करने देने के लिए शरीर

को ढांपकर रखना ही चाहिए। सिले हुए कपड़े शरीर की गरमी बनाए रखने में मदद पहुंचाते हैं। मैंने ऐसा कोई कपड़ा नहीं पहन रखा था, क्योंकि मैं अब भी ढीले कपड़े पहनने के बाबा द्वारा दिए निर्देश का पालन कर रहा था। उन्होंने बुने हुए कपड़े पहनने की इजाजत दी थी, हालांकि मैं इसकी तार्किकता नहीं समझ सका। सौभाग्य से बदरीनाथ में अपने पहले ही दिन मैंने एक पतला सा शाल खरीद लिया था, जो गुफा में मेरे रहने के वक्त बहुत उपयोगी सिद्ध होनेवाला था।

वहां मेरे रहने के दूसरे दिन मुझे ऑक्सीजन की कमी महसूस हुई। मैंने अपना इनहेलर इस्तेमाल किया, किंतु उससे कोई मदद नहीं मिली। अपराह्न में मैं बाजार गया और उठाकर ले जाने योग्य एक ऑक्सीजन सिलिंडर खरीदा। किंतु, तबतक शाम हो गई, इसलिए मैं गुफा में न जाकर रात में वहीं रुक गया और दूसरे दिन गुफा में आया। अगले दो माह तक, जब मैं गुफा में रहा, यह पहला ही अवसर था कि मैंने वह गुफा छोड़ी।

गहन ध्यान की मेरी दिनचर्या दो दिनों बाद शुरू हुई। दोपहर से लेकर शाम के चार बजे तक के वक्त को छोड़कर मैं लगभग बाकी सारा समय ध्यान करता। उन चार घंटों के दौरान मैं गुफा के दरवाजे खुले रखता। मैंने दिन में केवल एक बार, लगभग 11 बजे, भोजन करना शुरू किया। इसमें गेहूं के आटे कि पतली सेवीयां होतीं, जिन्हें मैं दूध में उबाल दिया करता। गांव में कोई व्यक्ति था, जो नित्य सुबह मेरी गुफा के बाहर दूध की एक बोतल रख दिया करता था।

जल्दी ही मैंने अपने लिए एक दिनचर्या तय कर ली। प्रत्येक दिन, मैं सूर्योदय अथवा उसके पूर्व ही गुफा के बाहर स्नान कर लेता। पानी हिमशीतल होता, किंतु अब चाहे मुझे बर्फीले पानी से स्नान करना हो अथवा शरीर पर बर्फ घिसना हो, मैं उनसे बिलकुल बेपरवाह हो चुका था। सच तो यह था कि मैं क्या खा रहा हूं अथवा खा भी रहा हूं या नहीं, इससे मेरा कोई सरोकार नहीं रह गया था। बाबा के आश्रम में व्यतीत किए गए समय ने मुझे इन परिस्थितियों के प्रति उदासीन बना दिया था।

मैं प्रतिदिन पैंतालीस मिनटों का समय भोजन तैयार करने, बरतन मांजने और निकट ही बहती एक नदी से पानी लाने में लगाता। मुझे हमेशा यह लगता कि ये सारे काम वक्त की बरबादी हैं, क्योंकि वे मुझे मेरी साधना से दूर कर देते। एक दिन मैंने यह सोचा कि यह बेहतर होगा कि मैं कुछ सौ मीटर की दूरी पर किसी ऐसे व्यक्ति को रखूं, जो मेरे लिए ये चीजें कर दिया करे।

जैसे-जैसे दिन बीतते गए, स्थानीय लोगों तथा बदरीनाथ आनेवाले तीर्थयात्रियों ने मेरे बारे में सुना और वे अपनी श्रद्धा व्यक्त करने मेरी गुफा तक आने लगे। मैं जोरदार बारिश के दिनों में बहुत खुश रहता, क्योंकि उस समय कोई भी मेरे निकट नहीं आ पाता। किंतु साफ दिनों में प्रत्येक अपराह्न मेरे पास आगंतुक आने लगे। मुझे यह सब पसंद नहीं था, इसलिए मैंने अपने ध्यान के लिए एक अधिक दूरस्थ स्थल में रहने की सोचने लगा।

हालांकि मैं कभी भी ओडिशा नहीं गया था, परन्तु जगन्नाथपुरी की एक तसवीर मेरे मन में आई। मैं समुद्र तट पर ध्यान करना चाहता था और मैंने सोचा कि ऐसा करने के लिए पुरी

सबसे बेहतर जगह होगी। मैंने कल्पना की कि एक निर्जन समुद्र तट पर मैं ध्यान करते हुए निवास कर रहा हूं तथा यह मुझे अत्यंत शांतिदायक प्रतीत होता। अगले अपराह्न, मेरे अंतर की एक आवाज ने मुझे बाहर निकलने को कहा। मैंने उसकी आज्ञा का पालन किया और पाया कि कुछ दूरी पर एक व्यक्ति खड़ा है। मैंने उसकी ओर देख कर हाथ हिलाया और उसके आने की प्रतीक्षा किए बगैर वापस गुफा में चला गया। मुझे उस आवाज ने जो कुछ कहा था, मैंने उसका पालन कर दिया और अब उसे आगे ले जाना ईश्वर पर निर्भर था। कुछ मिनटों बाद एक व्यक्ति गुफा के निकट आये। वे श्वेत वस्त्रों में थे, जिसका अर्थ था कि उनके गुरु द्वारा उन्हें एक ब्रह्मचारी संन्यासी के रूप में दीक्षा दी गई थी। उन्होंने मुझे बताया कि उनके साथ तीन अन्य मित्र थे, कितु वे कुछ दूरी पर रुक प्रतीक्षा कर रहे थे।

जैसे ही वे बैठें, मैंने उनसे कहा कि 'आप ओडिशा से हैं।'

वह चकित हो गए और उन्होंने पूछा कि आप यह कैसे जानते हैं।

'बस यों ही,' मैंने कहा।

एक लंबी चुप्पी के बाद मैंने पूछा, 'कृष्ण दास कौन हैं?'

'वह तो मेरा भाई है। आप उसका नाम कैसे जानते हैं, स्वामीजी?'

'बस यों ही,' मैंने कहा।

'नहीं, स्वामीजी, कोई भी बस यों ही नाम नहीं जान सकता। मैं आपकी सेवा में रहना चाहता हूं।'

उसके बाद मैंने उन्हें समुद्र तट पर साधना करने की अपनी इच्छा के बारे में बताया। हम इसपर सहमत हुए कि गुफा में अपनी अवधि पूरी कर मैं उनसे पुरी में मिलूंगा। उनका नाम प्रदीप ब्रह्मचारी था और उन्होंने मुझे अपने भाई का फोन नंबर दिया। मेरी ही तरह प्रदीप के पास भी फोन नहीं था। चूंकि अब 4 बज चुके थे, मैंने उन्हें जाने के लिए कहा।

गुफा में व्यतीत किए गए दो माह अद्भुत रहे। व्यावहारिक रूप से वहां कई चुनौतियां थीं। वहां अत्यंत ठंडक थी और मैं जिस किसी भी सतह का स्पर्श करता, वह मुझे बर्फीली प्रतीत होती। चूहे एक बड़ी असुविधा का कारण थे, जमीन से केवल 4 सेमी ऊपर सोने से उनसे मेरा कोई बचाव नहीं होता था। ध्यान के प्रभावों में से एक यह होता है कि आपकी नींद हलकी हो जाती है। ऐसा इसलिए होता है कि आप हर वक्त एक जागरूकता, एक सचेतनता की स्थिति बनाए रखते हैं। इसलिए इधर-उधर दौड़ते हुए चूहे मुझे जगा दिया करते। फिर भी, यह सब हिमालय में रहने की अत्यंत मामूली कीमत थी। आध्यात्मिक तरंगों से आविष्ट इस स्थल में ध्यान तो लगभग अनायास ही सध जाता। अधिक विचार उदित नहीं होते और मन स्थिर तथा शांत रहता। गहरी तल्लीनता के पल नैसर्गिक रूप से ही आते रहते। अपनी साधना के अतिरिक्त मैंने भैरवी मां द्वारा बताई साधना भी की और तब मुझे बड़ा विस्मय हुआ, जब मैंने वास्तव में उसी तरह के स्वर्गिक संगीत सुने, जैसा उन्होंने बताया था। इससे अन्य आयामों के अस्तित्व में मेरे विश्वास की पुष्टि हुई। कई बार, रात्रि में, दिन के दौरान,

गोधूलि वेला में, मैंने खास तौर से बाहर आकर देखा कि कहीं यह ध्वनि बहती हुई हवा द्वारा उत्पन्न तो नहीं है। किंतु यह बात न थी। मैं इसे गुफा के अंदर और बाहर स्पष्ट रूप से सुन सकता था।

23 सितंबर को पूर्णिमा की रात, मैंने अपनी चालीस दिनों की साधना पूरी कर ली। भैरवी मां ने मुझे इस दिन एक यज्ञ करने को कहा था। सभी मंत्रसाधना के अंत में, साधना पूर्ण होने के प्रतीकस्वरूप अग्नि को आहुति देने की आवश्यकता होती है। ऐसा सभी दृश्य और अदृश्य शक्तियों, पांचों तत्वों तथा सृष्टि की सभी चीजों के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करने के लिए किया जाता है।

शाम के अपने ध्यान की समाप्ति के बाद, मैं गुफा से बाहर आया। विचारशून्य मन की ही भांति बादलरहित साफ आकाश ऐसा लग रहा था, जैसे तारों के आभूषणों से जड़ी कोई छतरी सुशोभित हो रही हो। मानव मन की तरह लगातार प्रवाहित नदियां भारी बारिश की वजह से भरी हुई थीं और चारों ओर का परिवेश गहरी हरीतिमा से आच्छन्न था। मधुर चांदनी में जलप्रपात ऐसे लग रहे थे, मानो पिघली तरल चांदी की चादरें भूमि के प्रति पूर्ण समर्पण हेतु गिर रही हों और धरती विपुल प्रेम से उनका स्वागत कर रही हो, ठीक उसी तरह, जिस तरह अहंकाररहित हो चुका एक सच्चा शिष्य अपने गुरु के साथ एकाकार हो जाता है। तारे इतने निकट प्रतीत हो रहे थे, मानों आप अपने हाथ फैलाकर उनका स्पर्श कर सकते हों। यह सही है कि सांसारिक सुखों की तरह यह एक भ्रममात्र था। हिमालय को कोमलता से आलोकित कर तारों जड़ी रात्रि की निस्तब्धता में पूर्णचंद्र मौन भाव से कुछ यों चमक रहा था, जैसे आत्मसाक्षात्कार कर चुके किसी व्यक्ति की तरह वह स्वयं के साथ सामंजस्य स्थापित कर चुका हो।

जब मैं अपने आसपास की प्रत्येक वस्तु के वैभव और भव्यता को आत्मसात करने के अपने क्षुद्र प्रयास में तल्लीन था, तभी मैंने जंगली कुत्तों के भौंकने की आवाज सुनी। संभवतः, एक हिमतेंदुआ अथवा एक शेर कहीं निकट ही था और मेरा मन एक स्वाभाविक भय से भर उठा। आधे मिनट अथवा उसके लगभग अवश्य बीते होंगे कि मैंने स्वयं को स्मरण दिलाया कि यदि इसी पल शरीर की मृत्यु पूर्वनिर्धारित होगी, तो इसके लिए किसी शेर ही की आवश्यकता नहीं है। अचानक, हिमालय एक बार पुनः प्रकाशित हो गया और उसकी सुंदरता पुनरुज्जीवित हो उठी।

जलवायु की अनुकूलता पर प्रसन्नता महसूस करते हुए मैंने यज्ञ के आरंभ के लिए अपनी गुफा के बाहर एक छोटा अग्निकुंड बनाया। कुत्ते अब शांत हो चुके थे और हर तरफ एक नीरवता, एक कर्णभेदी नीरवता व्याप्त थी। अपने शांत मन और एकाग्र सचेतनता के साथ मैंने जमीन पर अपनी चटाई बिछाई और उसकी बगल में यज्ञ सामग्रियां रख दीं। हवा की ठंडक मेरे झीने शाल के अंदर प्रविष्ट कर रही थी, जिसके अतिरिक्त मैंने बस एक लंगोटी ही पहन रखी थी। हालांकि गुफा में मेरे कंबल रखे थे, पर मेरे शरीर पर जो कुछ था, मैंने उसी से आगे बढ़ना चुना। मैं बैठ गया।

शुद्धि की क्रियाओं के पश्चात यज्ञ के लिए आवश्यक प्रारंभिक आवाहन के हिस्से के रूप

में मैं वैदिक मंत्रों के जप करने लगा। मंत्रों के जप तथा अग्नि में आहुतियां देते समय मुझे अपनी आत्मा के साथ गहरे संपर्क की अनुभूति हुई। प्रत्येक आहुति के साथ अग्नि थोड़ा ऊपर उठती। संभवतः यह उसमें वर्तमान कपूर एवं अन्य सामग्रियों के कारण होता था, किंतु अपने मनोजगत में तल्लीन मुझे तो ऐसी अनुभूति हो रही थी कि अग्निदेव मेरे द्वारा दी जा रही प्रत्येक आहुति स्वीकार करते जा रहे हों।

यज्ञ संपन्न होने के बाद मुझे नीचे नदी की ओर जाना था। गुफा से नदी की ओर जाना एक पेचीदा काम था, क्योंकि इस मार्ग में विभिन्न आकार के बहुत सारे पत्थर बिखरे पड़े थे और घासें ओस से फिसलनभरी हो चुकी थीं। चंद्रमा का प्रकाश एक अच्छे टॉर्च की बराबरी नहीं कर सकता था और मेरा छोटा टॉर्च बहुत उपयोगी सिद्ध नहीं हो पा रहा था। खैर, किसी तरह मैंने 300 फुट नीचे की दूरी सुरक्षित तय कर ली।

नदी के तीर पर प्रक्षालन संपन्न करने के बाद मैंने वहां थोड़ी देर रुक कर शांत पहाड़ों से होकर गरजते हुए बह रही नदी की अलौकिक आवाज के साथ स्वयं को अपना तादात्म्य स्थापित करने दिया। अंततः, मैं वापस अपनी गुफा तक आया और कुछ अधिक ही देर बाहर बैठा रहा। मेरा शरीर सुन्न और ठंडा, मेरा मन मौन तथा शांत था और मेरी चेतना उस नदी की तरह ही प्रवाहित हो रही थी, जिसे मैंने अभी-अभी देखा था। मेरे मन के क्षितिज पर एक अंतर्दृष्टि उदित होने लगी कि सुंदरता दर्शक की आंखों में नहीं, वरन अनुभूत करनेवाले के मन में निवास करती है। मन जितना ही स्वच्छ होता है, सुंदरता उतनी ही घनीभूत होती है; मन जितना ही मौन रहता है, अनुभूति उतनी ही अधिक टिकती है। एक रिक्त मन शैतान की कर्मशाला नहीं होता; इसके विपरीत, तीव्र भावनाओं से आविष्ट मन ही वैसा होता है, क्योंकि वह अशांत होता है। एक रिक्त मन तो दिव्य उपहार है, क्योंकि यह विचारों से मुक्त होता है-जो किसी योगी के लिए अत्यंत विरल, किंतु अत्यंत इच्छित स्थिति है। यदि मन एक सागर है, तो तीव्र भावनाओं से भरा एक मन ज्वार से उद्वेलित होगा, जबकि एक रिक्त मन शांत तथा स्थिर समुद्र की तरह होगा।

मैंने अपनी गुफा में कदम रखे, जो बाहर की तीव्र ठंडक की अपेक्षा आरामदायक महसूस हुई। मैं बहुत विलंब कर चुका था और कुछ ही घंटे बाद मुझे जागना था। रिसते पानी तथा पत्थरों की ठंडी और नम फर्श से अपनी रक्षा हेतु लकड़ी के तख्ते पर लेट मैंने अपने शरीर को कंबलों से ढांप लिया। किसी भी अन्य रात की तरह उस रात भी चूहे आए। अपनी दौड़ के दौरान वे अवश्य ही मेरे ऊपर से होते हुए गुजरे होंगे और उनके शोर से वह छोटी गुफा खेल के एक मैदान में रूपांतरित हो गई होगी। किंतु, मैं इन सबसे अनभिज्ञ सोया रहा। चूंकि मन बिलकुल ही मौन था, अतः सभी चीजें व्यवस्थित थीं।

भला और कहां मैं ऐसी दिव्यता की अनुभूति पा सकता था? अपने द्वारा पेश सभी चुनौतियों-चाहे वे अप्रिय तत्वों के माध्यम से हो अथवा वन में रहने के कष्टों के माध्यम से-के बावजूद, किसी गूढ़ कारण से हिमालय ध्यान के लिए सर्वश्रेष्ठ स्थल है। हिंदू परंपरा यह बताती है कि हजारों वर्षों के दौरान, कुछ महानतम संतों ने हिमालय में ध्यान किए और आप अब भी वहां उनकी दिव्य ऊर्जा की अनुभूति प्राप्त कर सकते हैं। मेरे पास इस दावे की पुष्टि

के लिए कोई प्रमाण नहीं है। किंतु इस दुनिया में चारों ओर घूमने के बाद, मैं किंचित भी हिचकिचाहट के बगैर यह कह सकता हूं कि जहां तक आध्यात्मिक तरंगों और पवित्रता की अनुभूति का प्रश्न है, हिमालय की तरह का स्थल पूरे भूमंडल में कहीं भी नहीं है।

स्विट्जरलैंड के पहाड़, न्यू जीलैंड के चारागाह, उत्तरी अमेरिका के सुंदर भूभाग, ऑस्ट्रेलिया के बलुए और कैरिबियन के सूरज से नहाए सागरतट, फ्रांस का देहाती भूभाग... मैंने ये सभी देखे हैं। ये स्थल हिमालय की दिव्यता का मुकाबला कभी नहीं कर सकते। इसमें कोई संदेह नहीं कि वे सभी स्थल अत्यंत नयनाभिराम हैं, और भव्यता, अबाधित दृश्यावलियों और यहां तक कि नीरवता तथा एकांत के दृष्टिकोण से भी वे कभी-कभी हिमालय को पीछे छोड़ते से प्रतीत होते हैं। किंतु अपनी आध्यात्मिक यात्रा में आपको जो सहायता हिमालय की अनिर्वचनीय एवं अदृश्य शक्तियों से प्राप्त होती है, वह कहीं और नहीं मिल सकती।

इसके पूर्व कि मैं इसे जान पाता, दो माह का वक्त बीत गया। अपनी गुफा से नीचे आकर मैंने बदरीनाथ मंदिर में अपनी प्रार्थना निवेदित की। मुझे वहां रुकने तथा ध्यान करने देने के लिए मैंने अज्ञेय तथा दिव्य शक्तियों का धन्यवाद किया। इस काल का सिंहावलोकन करने पर मैंने पाया कि यद्यपि मैंने तादाम्य की संक्षिप्त अवधियों का अनुभव किया, किंतु विचारों के पूर्ण विराम की उपलब्धि हासिल नहीं कर सका था। ध्यान के दौरान अब भी मेरा मन भटक जाया करता और मैं अपने ध्यान के लक्ष्य पर खुद को केंद्रित न कर पाता। कभी-कभी, अपराह्न में, आगंतुक आ जाते और उनके साथ हुई मेरी बातचीत शाम के समय मेरे ध्यान के दौरान मन में चली आती।

भौतिक संयम मेरी साधना का केवल एक छोटा और महत्वहीन हिस्सा था। मानसिक अनुशासन का महत्व सर्वाधिक था। मुझे अपने मन को वश में करना था। पूरी तरह से। आत्यंतिक शांति और एकाग्रता की अवस्था में मैं दिव्य रूप के दर्शन करना चाहता था।

समाधि का सच्चा अनुभव प्राप्त करने हेतु मुझे मन के व्यर्थ कोलाहल से परे जाना था। मैं जानता था कि मुझे जगन्माता को पूर्ण निश्चेष्टता की अवस्था में पुकारना था, वरना मैं उनके दर्शनों की आशा नहीं कर सकता था। मुझे अपनी साधना की अवधि तथा गहनता बढ़ाकर उसे अगले स्तर तक ले जाना होगा। मुझे एक ऐसे स्थल पर जाना होगा, जहां कोई भी मनुष्य मेरे निकट न आ सके, और जहां मैं दिनरात गहरे ध्यान में डूबा रहूं।

अब तक, हालांकि मैं ध्यान कर रहा था, मुझे एक दियासलाई की ही अग्नि मिल सकी थी। यह इतनी क्षीण तथा संक्षिप्त थी कि ऊष्मा तथा प्रकाश नहीं दे सकती थी, यह मेरे मन की सहज वृत्तियों को जला नहीं सकती थी। अपने ही मन से ऊपर उठने, अपने मानसिक तथा भावनात्मक रोगों को पूरी तरह जलाकर राख कर देने हेतु मुझे एक दावानल की, तप-अग्नि की आवश्यकता थी।

शास्त्रों में स्पष्ट लिखा है कि समर्पण तथा एकाग्रता से कोई अदृश्य को देख और अज्ञेय

को जान सकता है। यही मेरा पैमाना और प्रमाण था, जिसकी मुझे खोज थी। हिमालय ने मुझे एक झांकी दिखाई थी, किंतु मैं पूरी तसवीर देखना चाहता था। स्वर्गिक संगीत सुना और तन्मयता की छिटफुट अवधियों का अनुभव करा दिव्य ने केवल मेरा स्पर्श किया था। मैं पूर्ण आलिंगन चाहता था।

अध्याय तेरह
हिमालय के वन

बदरीनाथ की गुफा में प्रदीप के साथ बनी योजनानुसार समुद्रतट पर एक निर्जन स्थल की खोज में मैंने ओडिशा की यात्रा की। अगले दस दिनों तक प्रदीप तथा मैंने 500 किमी से भी अधिक की दूरी छानी, पर हमें एक अथवा दो किमी से अधिक लंबा कोई भी एकांत स्थल न मिल सका, क्योंकि हर जगह हमें मछुआरे मिल जाया करते। हमने पूरे दिन के लिए किराए पर लेकर ऑटोरिक्शा से भ्रमण किए और हम मोटरसाइकिल से भी घूमते रहे, पर कोई सफलता नहीं मिली। हमने ट्रेन से ओडिशा के दूरस्थ शहरों की यात्रा की, किंतु अपनी साधना के लिए मुझे कोई उपयुक्त जगह नहीं मिली।

मैंने जगन्नाथ मंदिर में प्रार्थना की और तब, प्रदीप को बताया कि मैं वापस हिमालय की ओर जा रहा हूं।

'परन्तु क्यों स्वामीजी, मैंने बहुत कठिनाई से आपको पाया है। मैं आपको खोना नहीं चाहता।'

उनकी आंखें आंसुओं से भरी थीं।

'मुझे मेरी साधना के लिए निकलना होगा, प्रदीप। एक बार जब इसे पूरा कर लेता हूं, तो मैं आपसे संपर्क करूंगा,' मैंने उन्हें आश्वस्त किया।

उन्हें पीछे छोड़, अपनी तलाश जारी रखने के लिए मैं पुनः हिमालय की ओर लौट पड़ा। मैंने मंडल गांव के निकट अनसूया मंदिर के विषय में सुन रखा था और वहां जाने का निर्णय किया। मैं चमोली उतरा, वहां से गोपेश्वर के लिए साझे की एक टैक्सी की और फिर गोपेश्वर से मंडल के लिए दूसरी टैक्सी ली। मंडल से अनसूया मंदिर तक 4 किमी की पगडंडी थी। जब मैं वहां पहुंचा, तो दो स्थानीय लड़के, बबलू और विनोद, जो मंदिर के पुजारी के बेटे थे, मुझसे बातचीत करने लगे। मैंने उन्हें बताया कि मैं ध्यान करने के लिए एक जगह की तलाश में हूं और एक गुफा को अधिक पसंद करूंगा। उन्होंने मुझे अत्रिमुनि गुफा नामक एक गुफा के विषय में बताया और वे मुझे वहां ले चलने को राजी हो गए। यह एक प्यारा सा स्थल था,

पर यह उतना दुर्गम न था, जितना मैं चाहता था; इस मंदिर तक आनेवाले तीर्थयात्री यहां भी आ जाया करते थे। तभी, सुदूर पर्वतों की ऊंचाई पर स्थित एक छोटे, सफेद से ढांचे पर मेरी दृष्टि पड़ी। यह किसी स्थानीय देवी का एक लघु मंदिर प्रतीत होता था। ग्रामीणों ने मुझे बताया कि वहां किसी भी पर्यटक को जाने की अनुमति नहीं है, क्योंकि वह एक वन्यजीव आश्रयस्थल है और केवल स्थानीय निवासी ही ईंधन की लकड़ी तथा पशुचारे की खोज में वहां जा सकते हैं। वहां चरवाहों की कुछ अनगढ़ सी झोपड़ियां जरूर थीं, किंतु वे पुरानी थीं और तब बनाई गई थीं, जब सरकार द्वारा इस क्षेत्र को एक सुरक्षित वन घोषित नहीं किया गया था। पूछने पर मुझे पता चला कि सर्दियों में उन झोपड़ियों में कोई भी नही रहता और तब वह स्थल निपट निर्जन हो जाया करता है। एक निर्जन स्थल! सघन वन! यह मेरे कानों को संगीत जैसा प्रिय प्रतीत हुआ।

मैंने बबलू और विनोद से पूछा कि क्या वे मुझे वहां ले जाएंगे। उन्होंने मुझे बताया कि वहां जाने और लौटने में एक पूरा दिन लग जाएगा, क्योंकि यह 6 किमी की सीधी चढ़ाई है। उन्होंने यह अनुशंसा की कि मैं उस गुफा का ही उपयोग करूं, क्योंकि वह अधिक व्यावहारिक विकल्प है। अनिच्छापूर्वक ही सही, मैं राजी हो गया।

लकड़ी के एक तख्ते, खाद्य सामग्रियों तथा गुफा के 5 फुट चौड़े मुख को ढकने के लिए एक तिरपाल खरीदने हेतु मैंने उन्हें पैसे दिए। फिर मैं अपना बैग लाने हरिद्वार लौटा। मैंने उसे वहीं छोड़ दिया था, क्योंकि मैं नहीं जानता था कि एक उपयुक्त स्थल तलाशने में मुझे कितना समय लगेगा और मैं अपना बैकपैक ढोते हुए घुमना नहीं चाहता था। किंतु, नियति ने मुझे केवल इसी प्रयोजन के लिए हरिद्वार नहीं भेजा।

मैंने अपना बैकपैक एक वृद्ध साधु के पास रख दिया था, जिनसे मैं बदरीनाथ में मिला था। उनका नाम स्वयं प्रकाश ब्रह्म था और वे मूलतः तमिलनाडु के थे। वर्तमान में, वे कनखल, हरिद्वार में रहते थे। वे मेरे प्रति एक सुरक्षात्मक, यहां तक कि एक स्वामित्वभाव रखते थे।

जब मैं उनके स्थान पर पहुंचा, तो वहां उनके साथ एक अन्य साधु भी थे, जो एक शांत और गंभीर जिज्ञासु थे।

‘आप जगन्माता के दर्शन प्राप्त कर सकते हैं,’ उन्हें फर्श की ओर देखता पाकर मैंने उनसे कहा।

उनकी आंखें चमक उठीं और उन्होंने कहा, ‘क्या सचमुच, स्वामीजी?’

मैंने हां में सिर हिलाया। ‘आप देवी की आराधना करते हैं।’

उन्होंने यह सब कभी कहा नहीं था। वे मेरे निकट आकर बैठ गए और अपना नाम स्वामी विद्यानंद बताया।

‘कृपया कुछ और कहिए,’ उन्होंने कहा।

मैंने उनसे अगले दिन मिलने को कहा।

स्वामी विद्यानद अगले दिन पुनः आए और कहा, ‘स्वामीजी, मैं पूरी रात आपके ही विषय में सोचता रहा। मैं सूर्योदय की प्रतीक्षा नहीं कर सकता था; मैं भोजन भी नहीं सकता

था; मैं अत्यंत उत्साहित था। मुझे मां की कृपा के लिए कौन सी साधना करनी चाहिए?'

'आत्म-शुद्धीकरण।'

'क्या आप मुझे अपने शिष्य के रूप में स्वीकार कर मेरा मार्गदर्शन करेंगे?'

'हमें इस संबंध को कोई नाम देने की आवश्यकता नहीं है। मैं जब हिमालय से वापस लौटता हूं, तो आपसे मिलूंगा।'

उनकी बड़ी-बड़ी आंखें भर आईं।

'चिंता न करें, स्वामीजी, मैं आपको हाथ पकड़कर जगन्माता के निकट ले चलूंगा,' मैंने उन्हें आश्वस्त किया। 'यह एक स्वामी का दूसरे स्वामी को दिया गया वचन है।'

'कल मैंने आपकी आंखों में यह देखा कि आप सब कुछ जानते हैं, पर मैं आपसे बातें करने में भयभीत था,' उन्होंने धीरे से उत्तर दिया।

'कोई भी सबकुछ नहीं जानता, स्वामीजी। किंतु मैंने यह अवश्य देखा कि आप कुछ विशिष्ट हैं, एक सच्चे श्रद्धालु हैं और मैंने आपकी सहायता करनी चाही,' मैंने कहा।

मैंने उन्हें किसी से भी रुपए अथवा कोई भौतिक उपहार स्वीकार न करने का निर्देश दिया और उनसे कहा कि मैं आपके शेष जीवन में आपकी आवश्यकताएं पूरी करता रहूंगा। वे कोई साधारण श्रद्धालु न थे। वर्षों से वे भगवान के लिए रोते रहे थे; एक गुरु के लिए व्यग्र खोज में रत रहे थे और यहां तक कि रातों को सोते समय अपने सीने पर मां दुर्गा की एक प्रतिमा रखा करते थे। उन्होंने उपवास किए थे; उन्होंने जप किए थे; ध्यान किए थे और हर वैसी साधना की थी, जिसे कभी किसी ने भी उन्हें करने को कहा। यदि कोई आशीर्वाद, मार्गदर्शन तथा दिशानिर्देश के योग्य था, तो यह वे थे।

इस बार मैं अपने बैग के साथ अनसूया मंदिर पहुंचा। मंदिर में मैं बबलू और विनोद से मिला और पर्वतश्रेणी पर स्थित उस झोपड़ी को देखने पर बल दिया। एक अबूझ सी शक्ति मुझे उसकी ओर खींच रही थी। अंततः, विनोद मुझे वहां ले चलने को सहमत हुआ। हमने कई जलधाराएं पार कीं और ऊंचे-लंबे देवदार वृक्षों से भरे सघन वन होकर गुजरे। कई बार, किसी झाड़ी अथवा वृक्ष के पीछे से आती किसी आवाज पर वह अचानक रुक जाता।

'अचानक रुक क्यों गए, विनोद?'

'यह एक भालू अथवा शेर भी हो सकता है, महाराजजी,' उसने कहा, 'हमें सावधान रहना है।'

मैं निश्चित रूप से नहीं जानता था कि मेरे गुफा के एकांतवास अथवा ईश्वरप्राप्ति की मेरी तीव्र इच्छा की वजह से, पर मुझे किसी भय की अनुभूति नहीं हुई।

यह रास्ता थोड़ा कठिन तो था, पैरों में जूतों के स्थान पर चप्पलों के कारण थोड़ी परेशानी हुई। किंतु उन वनों में एक सम्मोहक गुण था और मैंने इस यात्रा का पूरा आनंद उठाया। हमें अपने गंतव्य तक पहुंचने में लगभग तीन घंटे लगे और मुझे प्रथम दृष्टि में ही उस स्थल से मोह उमड़ आया। यह जगह अत्यंत शांत तथा दुर्गम थी और निकट ही एक जलस्रोत भी मौजूद था। झोपड़ी के चारों ओर एक खुला मैदान था, जिसमें छिटपुट लंबे वृक्ष और उनके पीछे सुंदर पर्वत गरिमामय ढंग से खड़े थे। झोपड़ी से थोड़ी ही दूरी पर एक मंदिर

भी था। मैं अब और क्या मांग सकता था। मैंने यह भी पाया कि इससे 200 मीटर की दूरी पर एक अन्य झोपड़ी भी थी, जो प्रदीप के लिए आदर्श होगी।

मैंने प्रदीप के भाई के माध्यम से उन्हें एक संदेश भिजवाया, क्योंकि उनका वही नंबर मेरे पास उपलब्ध था। मैंने प्रदीप को तुरंत मुझसे संपर्क करने को कहा। यदि वे तुरंत ही मंडल के लिए प्रस्थान करते, फिर भी उन्हें मुझ तक पहुंचने में तीन दिन लगते। मुझे 19 नवम्बर को अपनी साधना शुरू कर देनी थी और उसमें मात्र तीन दिनों का समय शेष था। फिर हमें उन झोपड़ियों में एक दिन पहले पहुंच जाना था, ताकि मैं सब कुछ वक्त पर आरंभ कर सकूं, वरना पंचांग के अनुसार अगले उपयुक्त दिवस के लिए मुझे एक माह की प्रतीक्षा करनी पड़ती।

तंत्र की क्रियाओं में पंचांग की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। ठीक जिस तरह आपका मत तभी वैध होता है, जब उसे मतदान के दिन दिया जाए, न कि एक दिन पहले अथवा बाद, कुछ साधनाएं केवल निश्चित तिथियों को आरंभ की जा सकती हैं। यह सूचना शास्त्रों में कभी भी पूरी तरह वर्णित नहीं होती, ताकि मंत्रसिद्धि के द्वारा प्राप्त शक्ति का किसी साधक द्वारा दुरुपयोग की संभावना रोकी जा सके; इसे केवल एक मौखिक परंपरा द्वारा ही सूचित किया जाता है।

वर्तमान में, प्रदीप द्वारा यह दूरी समय पर तय कर पाना लगभग असंभव था। किंतु जब हमने प्रदीप के भाई को फोन लगाया, तो उन्होंने हमें बताया कि प्रदीप दो दिनों पूर्व ही हरिद्वार के लिए निकल चुके थे। उन्होंने कहा कि वे अपने चचेरे भाई को यह संदेश दे देंगे, जिसे हरिद्वार स्टेशन पर प्रदीप को लेना था।

हालांकि प्रदीप को यह पता नहीं था कि मैं कहां हूं, फिर भी वे हिमालय की ओर ही आ रहे थे। यह दिलचस्प प्रसंग था। ब्रह्मांड ने उनके मन में यह विचार तभी बो दिया था, जब मैं उस झोपड़ी को देख भी न पाया था। मुझे विस्मय था कि वे क्या सोच रहे हैं। यदि मैंने उनसे संपर्क न किया होता, तो? वे कैसे जान पाते कि मैं कहां पर हूं? तथ्य यह था कि ब्रह्मांड को यह पहले से पता था।

'महाराज!', बबलू ने कहा, 'आपने अपने संकल्प से प्रदीप को दो दिन पहले ही प्रस्थान करा दिया है!'

'अरे नहीं, बबलू, बिलकुल नहीं। मैंने कुछ भी नहीं कहा। यह सब दिव्य सत्ता के काम करने के तौर-तरीके हैं।'

'तब यह कितना चमत्कारिक संयोग है।'

'हम लोग इस शब्द का प्रमादवश प्रयोग कर देते हैं। सामान्यतः, संयोग का अर्थ किसी चीज का उल्लेखनीय ढंग से बगैर किसी कार्य-कारण संबंध के घटित होना है। सच तो यह है कि प्रकृति की लीला में कोई दुर्घटना नहीं हुआ करती। इस बह्मांड का, हमारी आकाशगंगा, जीव-जंतुओं की प्रजातियों का, पंचतत्व का, लगभग एक पूर्ण पारिस्थितिकी तंत्र का सृजन- इनमें से कोई भी संयोग नहीं है। वर्षा, आंधियां, पहाड़, समुद्र, वृक्ष... ये सभी किसी कारण से ही हैं। कोई भी कार्य-कारण संबंध के बगैर नहीं है, प्रत्येक वस्तु किसी बड़े कारण को पूरा

करती है।’

‘आप तो अभी ही कितना कुछ जानते हैं। मुझे विस्मय होता है कि आपको अब भी ध्यान करने की आवश्यकता है। आप क्यों वनों की कठिनाइयों से होकर गुजरना चाहते हैं?’

‘प्रत्येक अन्य व्यक्ति की तरह मेरा मन भी कभी-कभी वाचाल हो जाता है। इसे संसार के अनुकूल बना दिया गया है और इसने अपने नैसर्गिक, विशुद्ध स्वरूप से अपना संपर्क खो दिया है। मैं इस अनुकूलन से, इस बुद्धि से ऊपर उठना चाहता हूं। मेरे पास एक बोझ सा है, जिसे मुझे खोना है, ताकि मैं इतना हलका हो जाऊं कि उड़ सकूं और इस संसार को एक भिन्न दृष्टिकोण से देख सकूं।

‘मैं अब पानी से भरा, भारी और उड़ने में असमर्थ गुब्बारा नहीं बने रहना चाहता। यदि मैं कुछ चाहता ही हूं, तो यह कि मैं स्वयं को शर्तरहित प्रेम तथा प्रकाश से भर दूं। प्रत्येक व्यक्ति एक गुब्बारे के समान है। कुछ गंदे जल से भरे हैं, तो कुछ दूसरे एक खास सुगंध लिए फिरते हैं। जब परिस्थितियां उन्हें कुछ चुभोती हैं, तो वे फट पड़ते हैं। किंतु जब कोई गुब्बारा फटता है, तभी हम यह जान पाते हैं कि उसके अंदर क्या है। उनमें से कुछ जब फटते हैं, तो दुर्गंध फैलाते हैं; वे दुर्वचन बोलते हैं; वे घृणित कर्म करते हैं। जबकि, दूसरे गहरी सुगंध बिखेरते हैं। मैं स्वयं को रिक्त कर देना चाहता हूं, ताकि मैं अपने जीवन के गुब्बारे को प्रेम तथा प्रकाश से, करुणा और विनम्रता से भर सकूं।’

प्रदीप उसी रात हरिद्वार पहुंचे। उनके चचेरे भाई ने उन्हें स्टेशन पर लिया और उन्होंने तुरंत ही बबलू से संपर्क किया। अगली शाम प्रदीप मेरे सामने बैठे थे। उन्हें बुखार था, फिर भी उन्होंने आने का निर्णय किया। अगले दिन बबलू खाद्य सामग्रियां लेने शहर गए, जबकि प्रदीप और मैं अपने गंतव्य पर पहुंचे।

9,000 फुट की ऊंचाई पर मेरी झोपड़ी एक खाई के किनारे थी। आप उससे बाहर निकलते और 15 फुट से भी कम दूरी तयकर खाई में गिर सकते थे। संभवतः, इसका उपयोग पशुओं के लिए किया जाता होगा, इसका ढांचा किसी मानव प्राणी के उपयुक्त तो न था। यह पूरी जगह 30 फुट लंबी और 10 फुट चौड़ी थी।

झोपड़ी पर छाए गए छप्पर की फूस पुरानी थी और गलकर एक दूसरे से चिपक गई थी, जबकि दीवारों में बहुत सारे छिद्र थे। दीवारों में से एक कंक्रीट की बनी थी और कुछ विचित्र ढंग से 70° के कोण पर झुकी थी। उसके बाहर से वृक्षों के कई फुट लंबे तने उससे लगाकर रखे गए थे, ताकि वे उसे गिरने से रोक सकें। कैसे वह दीवार हिमालय की भीषण तथा निर्दय आंधियां झेल रही थी, यह किसी भी तर्क से परे था। शायद यह दिखाता है कि जब आप थोड़ा झुकने को तैयार हों, तो आप भले ही कुछ अजीब से दिखें, पर आप बच निकलेंगे। बाकी तीन दीवारें लकड़ी के तख्तों को अव्यवस्थित ढंग से जोड़कर बनाई गई थीं। झुकी दीवार की वजह से, छत और उस दीवार के बीच एक दूरी बन गई थी, जिसके परिणामस्वरूप वर्षा के समय पानी अंदर आ जाता। इस आश्रय के एक कोने में एक घेरा था, जिसमें छह से आठ गाएं रह सकती थीं, और यही वह जगह थी, जहां मैं स्नान किया करता था।

19 नवंबर की रात्रि मैंने अपनी साधना आरंभ कर दी। रात्रि का आकाश सुंदरता से भरा था। शीतल मंद बयार बह रही थी और वन नीरव थे। जब मैंने ध्यान का आरंभ किया, तो जाना कि यहां आने का मेरा निर्णय सही था। यहां गहरी शांति थी। केवल स्थानीय लोग ही इस स्थल के विषय में जानते थे और वे शायद ही कभी इधर आते, क्योंकि यह वनों के बीच स्थित था। यहां तक कि बबलू और विनोद जैसे लोग भी, जिनका जन्म और पालन-पोषण यहीं हुआ था, वन के इस हिस्से में कभी नहीं आए थे।

प्रारंभ में, मैं रात्रि के 2 बजे से लेकर अगले दिन दोपहर के 12 बजे तक दस घंटों के एक सतत समय तक ध्यान किया करता। इसके अलावा, मैं 2 से 7 घंटों के छोटे काल के ध्यान भी करता। दोपहर में, भोजन के लिए मैं प्रदीप की झोपड़ी में चला जाता। यह चौबीस घंटों में मेरा एक मात्र आहार होता और इसमें तीन पतली चपातियां, एक दाल और कभी-कभी एक कटोरी सब्जी होतीं। यह केवल प्रदीप की असाधारण व्यवस्था का ही कमाल था कि हमें सब्जियां मिल जाया करती थीं। उन्होंने एक ग्रामीण को इसके लिए राजी किया था कि वह सप्ताह में एक बार वहां सब्जियां पहुंचा दिया करे। किंतु इतना ही नहीं था। प्रदीप दूसरी तरह से भी मेरे लिए एक बड़ा सहारा थे। मैं अपने ध्यान के बाद प्रतिदिन एक यज्ञ किया करता था और वह इसके लिए पहले से ही पर्याप्त लकड़ियां एकत्रकर तैयार रखते। वे हर चार दिन बाद मेरे लिए पानी की एक बड़ी बाल्टी व बर्तन में पानी भर कर रख देते।

प्रदीप की झोपड़ी में एक घंटा व्यतीत कर मैं वापस अपनी झोपड़ी में पहुंच जाता। 1 बजे अपराह्न से 9 बजे रात्रि तक मैं चिंतनमूलक ध्यान करता। ध्यान मुख्यतः दो कोटियों का होता हैः एकाग्रतामूलक और चिंतनमूलक। पहली कोटि में आप अपनी एकाग्रता विकसित करते हैं, जबकि दूसरी में आप उसे प्रयुक्त कर वास्तविकता की प्रकृति तथा अपने स्वयं के अस्तित्व पर चिंतन करते हैं। चिंतनमूलक ध्यान अंतर्दृष्टि पैदा करता है और यह अंतर्दृष्टि ही है, जो अपनी चारों ओर की दुनिया को देखने तथा उसकी व्याख्या करने की आपकी दृष्टि में परिवर्तन लाती है। गहरी एकाग्रता समाधि तक ले जाती है और गहरा चिंतन संसार की चुनौतियों के सामने आपको अपनी वह स्थिति टिकाए रखने के योग्य बनाता है। मैं बारी-बारी से इन दोनों कोटियों के ध्यान किया करता।

सघन ध्यान के फलस्वरूप मेरी नींद में भारी कमी आ गई। रहने की अत्यंत असुविधाजनक स्थितियां तथा केवल एक हलके आहार ने भी मेरी नींद को प्रभावित किया। मैं 9 बजे रात्रि से 1 बजे सुबह तक ही सोता। उसके बाद बर्फीले ठंडे पानी से स्नान करता, जबकि मेरी झोपड़ी की दीवारों की सुराखों तथा दरारों से ठंडी हवाएं बहा करतीं। 2 बजे सुबह मैं अपना ध्यान आरंभ कर देता और दोपहर तक उसमें बैठता।

किंतु जैसे-जैसे मेरा मन मौन होता गया, मैं वे चार घंटे भी नहीं सो सकता था। नींद में कमी त्रुटिहीन ध्यान का नैसर्गिक परिणम है। सबसे पहले, हम सोते ही क्यों हैं? इसलिए कि हमारे शरीर तथा मन को विश्राम की आवश्यकता होती है। विश्राम की अवस्था में जीवनीशक्तियां नैसर्गिक रूप से प्रवाहित होती हैं और एक गहरी नींद के बाद हम तरोताजा महसूस करते हैं। ध्यान बिलकुल यही करता हैः यह आपके शरीर तथा मन को नई ऊर्जा से

भर देता है। मैंने अपनी दिनचर्या बदल ली और अब 9 बजे रात्रि से 11 बजे रात्रि तक ही सोने लगा, जिसके बाद मैं ध्यान आरंभ कर देता।

कुछ ही सप्ताह बाद, मैंने 7 बजे शाम से 9 बजे रात्रि तक सोना शुरू कर अपना ध्यान दो घंटे और पहले से आरंभ कर दिया। इस तरह, मैं लगातार तेरह घंटे ध्यान करता रहता। अंततः, मैंने उन दो घंटों की नींद भी छोड़ दी। एक भाव-समाधि जैसी स्थिति में, मेरे मन और शरीर ने नींद की मांग बंद कर दी। लेकिन मुझे लगा के अपने मन और शरीर को विश्राम देना अनिवार्य था, और इसलिए, मैंने शाम में दो घंटे की एक झपकी लेने के लिए खुद को बाध्य किया।

मैं झोपड़ी की फर्श पर लकड़ी के तीन तख्ते एक के बाद एक जोड़कर उनपर सोता। उनमें से बीचवाला मेरे लगातार बैठने के कारण टेढ़ा हो गया था। मैंने तख्तों पर एक पतली तोशक, जो बस तीन सूती चादरों की सम्मिलित मोटाई के बराबर थी, बिछा रखी थी। मैंने एक रजाई भी रखी थी। यही मेरा बिस्तर था। मैं उसी स्तर पर था, जिस पर मेरी झोपड़ी में आनेवाले कीट-पतंगे और चूहे थे।

आप यह सोचेंगे कि बस्ती से मीलों दूर एक पर्वतीय एकांत आश्रय में मुझे सबसे गहरा मौन मिला होगा। इसका उत्तर हां भी है और न भी। यद्यपि वहां कोई कृत्रिम शोर न था, कोई ट्रैफिक, टीवी अथवा मानवप्राणी नहीं, पर वहां कई दूसरे प्रकार की ध्वनियां थीं, जो मेरे लिए ध्यान करना कठिन बना देतीं। उनमें सबसे उल्लेखनीय चिड़ियाँ थीं, जो रात्रि में घंटों चहचहातीं। मैं समझता हूं कि वे नर पक्षी थे, जो अपनी मादाओं को आकृष्ट किया करते। एक बेचारा नर 20-30 मिनटों तक लगातार गाता, कुछ सेकेंड के लिए विश्राम करता और फिर उसी उत्कंठा से पुकारता। एक अथवा दो घंटे बाद कोई मादा उसका प्रत्युत्तर देती, दोनों के बीच संवाद शुरू होता और तब वह नर उस मादा की ओर उड़ जाता। वस्तुतः, इनमें से कुछ भी दृश्यमान न था, पर मैं उनकी गाने की ध्वनि से यह अनुमान लगाता कि क्या होता होगा।

मुझे इन पक्षियों की कामुक प्रवृत्ति से कोई समस्या न थी। आखिरकार, यह धर्म नहीं, बल्कि काम ही है, जो विकास का आधार, कारण तथा परिणाम है। केवल उनके द्वारा पैदा होने वाला कोलाहल मेरे ध्यान के लिए एक बड़ी बाधा था। कल्पना करें कि आप हिमालय के हिमाच्छादित वनों की रात्रि के कर्णभेदी मौन में एकाग्रता साधने के प्रयास में लगे हैं और एक चिड़िया आवाज निकालना शुरू कर देती हैः टंक, टंक, टंक, टंक, टंक, टंक...’ यहां तक कि कभी-कभी मैंने स्वयं को उसके लिए प्रार्थना करता हुआ भी पाया, ‘हे ईश्वर, यदि तुम हो, तो कृपा करके उसके लिए एक संगिनी भेज दो। उस पर दया करो। वह व्यग्र है।’

कुछ समय पश्चात, मैंने इन बाधाओं की अनदेखी करना सीख लिया। संभवतः यह सब मेरी साधना का ही एक हिस्सा था। चिड़ियों ने भिन्न-भिन्न समयों में भिन्न-भिन्न तीव्रता से गाना जारी रखा, किंतु अंततः, उनसे मुझे होने वाली परेशानी समाप्त हो गई। वसंत के दौरान

कई तरह के टिड्डे और झींगुर अत्यंत तीखी आवाजें निकाला करते। सैकड़ों झींगुर एक स्वर में शोर मचाते। मुझे नहीं पता कि वे कुछ मुट्ठी भर मादाओं के लिए स्पर्धा कर रहे थे अथवा कोई जश्न मना रहे थे। इन शोर-शराबों से परे होना सीखने के बाद मेरी साधना पूरी तरह एक अन्य स्तर पर चली गई। हर बार जब मैंने कोई बाधा पार की, तो मैं अपने मन पर और बोध पर बेहतर नियंत्रण प्राप्त कर सका।

लंगूर भी मेरी झोपड़ी के आगंतुक थे। वे मेरी झोपड़ी के छप्पर पर आजादी से कूदा करते, दीवारों से लटकते और छिद्रों से होकर अंदर झांकते। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता कि वे जानबूझकर मुझे चिढ़ा रहे हैं, पर ऐसी बात न थी। केवल इतना ही था कि इसके पहले कभी किसी मानव प्राणी ने सर्दियों में इन झोपड़ियों को अपना आवास नहीं बनाया था, इसलिए वे उनके अंदर किसी के होने की उम्मीद नहीं करते थे। जब वे झोपड़ी के चारों ओर उछल-कूद मचाते रहते, तो मैं कुछ न करता था, क्योंकि मैं अपने ध्यान से उठकर उसे बाधित नहीं कर सकता था।

जब मैं झोपड़ी के बाहर होता, तो उनका एक डाल से उछलकर दूसरे पर जाना गौर से देखता। मुझे इस दृश्य पर हमेशा विस्मय होता, क्योंकि मैंने कभी किसी लंगूर को वैसा करते समय नीचे गिरते नहीं देखा। यदि मैं भी अपने ध्यान में यही सचेतनता ला पाता, तो यह एक बड़ी उपलब्धि होती। उन्होंने तो जन्म से ही ऐसा करना सीख था। मुझे भी यही करना थाः अपने ध्यान को अपने चेतन मन से, जहां उसमें एक प्रयास लगता था, हटाकर उसे अपने अवचेतन तथा अचेतन स्थितियों की गहराइयों में ले जाना, जहां वह अनायास हो। एक अवधि के बाद, मैंने इसे भी करना सीख लिया।

प्रारंभ में, जब मैंने ध्यान शुरू किया, तो वहां बहुत से वन्यपशु थे। मैं रातों में वहां जंगली सूअरों के घुघुआने की आवाजें सुना करता किंतु, जब उन्हें मानवप्राणी की गंध लगी, तो वे वहां से दूरी बनाने लगे। यद्यपि, उन्होंने वहां आना कभी बंद नहीं किया, आप अगली सुबह वहां जमे हिम पर उनके पदचिन्ह देख आसानी से अनुमान कर सकते थे।

किंतु, बड़ी चुनौती वन्यपशुओं से नहीं थी, यह मेरी झोपड़ी के अंदर के चूहों, मकड़ों, टिड्डों तथा दूसरे कीटों से थी। वन के चूहे जितने बड़े थे, उतने ही आक्रामक भी। हालांकि झोपड़ी में बहुत से छिद्र थे, जिनसे होकर वे आसानी से अंदर आ और बाहर जा सकते थे, पर प्रतिदिन वे नए छिद्र बनाना अनवरत जारी रखते। जैसे वे किसी कुशल शिकारी पशु की नकल कर रहे हों, जिस किसी चीज पर वे अपने दांत जमा सकते, उसे घसीटकर एक कोने में ले जाते और उसे कुतरते रहते। जैसे ही मैं अपने ध्यान पर बैठता कि चूहे शोर मचाना शुरू कर देते। प्रारंभ में तो उनके कुतरने की वह सतत ध्वनि एक बाधा थी, पर मैंने अपने ध्यान पर जमे रहकर उनसे पार पाना सीख लिया। जब मैं ध्यान में होता, तो चूहे प्रायः मेरे तकिए पर आराम फरमाया करते।

चूहों के विपरीत मकड़े चुपचाप काम किया करते। हर रात, जब मैं अपने ध्यान में डूबा होता, तो कुछ हठी मकड़े मेरे सिर से लेकर छप्पर तक अपने जाले बुन लिया करते थे। झोपड़ी का छप्पर बहुत नीचा था और बैठने के बाद मेरे सिर से छप्पर तक केवल 3 फुट का

अंतर होता था। मेरी मानसिक स्थिति ऐसी थी कि हर सुबह मैं जालों का ध्यान रखना भूल जाया करता और अपनी बेपरवाही में, जब मैं उठकर खड़ा होता, तो मकड़ों की थूक से बने जाले के महीन धागे अपने चेहरे से साफ करने में मुझे अगले पांच मिनटों का समय देना पड़ता।

बाबा के आश्रम में, मेरे पास इन जंतुओं को मार डालने का विकल्प भी उपलब्ध था और ऐसा करना कठिन नहीं था। किंतु यह करुणामय विकल्प न था। मैं यहां करुणा के अभ्यास के लिए आया था और यहां तक कि मैंने कभी जानबूझकर एक मच्छर को भी चोट न पहुंचाई। दिलचस्प यह था कि कभी एक बार भी चूहों ने मुझे नहीं काटा, मधुमक्खियों अथवा टिड्डों ने अपने डंक नहीं चुभोए और न ही किसी वन्यपशु ने मुझपर हमला किया। साधना के पूर्व, मैंने जो क्रियाएं कीं, उनमें विभिन्न दिव्य शक्तियों से उनके संरक्षण की प्रार्थना भी थी। मैंने ग्रामदेवता, जो उस क्षेत्र के संरक्षक थे; स्थानदेवता, जो मेरे निकट के परिवेश की संरक्षक शक्ति थे तथा वास्तुदेवता, जो साधनास्थल की संरक्षक शक्ति थे, का आवाहन किया। ऋषि-परंपरा एक सच्चे साधक की रक्षा किया करती है, और तथ्य यह है कि एक मंत्र द्वारा दीक्षा का यह प्राथमिक उद्देश्य होता है। हालांकि, इतना ही नहीं था। मैंने अपने आसपास के सभी प्राणियों से एक शांतिसंधि की थी। वे सभी ठीक उसी तरह प्रकृति के हिस्से थे, जिस तरह मैं स्वयं था और इसमें असामंजस्य के लिए कोई अवकाश न था।

जीव-जंतुओं के अतिरिक्त शरीर के लिए अन्य चुनौतियां भी मौजूद थीं। एक साधक तीन तरह की बाधाओं से होकर गुजरता हैः दैहिक-शरीर की, आधिभौतिक यानी भौतिक तथा आधिदैविक-दिव्य या वातावरण से संबद्ध। मेरी देह में उठता दर्द शरीर से संबद्ध चुनौती थी। आहार, संसाधनों तथा सुविधाओं की कमी भौतिक बाधाएं थीं। वन्यपशुओं द्वारा प्रस्तुत संकट अथवा हिमालय की निर्मम जलवायु मेरे वातावरण से संबद्ध चुनौतियां थे और ये सारी वहां विपुल परिमाण में मौजूद थीं।

इन पर्वतों की ऊंचाइयों में नियमित रूप से भीषण तूफान आया करते हैं: भीषण हवाओं की आंधियां, बर्फीली आंधियां, बारिश भरी आंधियां और ओले भरी आंधियां। कभी-कभी उनकी आवाजें कानों को बहरा कर देनेवाली होतीं, मानो अदृश्य शक्तियां मुझे वहां से भगा देने पर तुली हों अथवा दिव्य मेरी परीक्षा ले रहे हों और यह देखना चाहते हों कि क्या मैं अब भी अपने जीवन को लेकर भयभीत हूं। अथवा हो सकता है, वे मुझे शाबाशी दे रहे हों - मैं इस संबंध में निश्चित नहीं था। जो भी हो, इन तूफानों के बीच आपको सृष्टि की विशालता का बोध होता हैः विशाल पर्वतों और सघन वनों से घिरा एक व्यक्ति, जो गरजते बादलों और तूफानी स्लेटी आकाश के नीचे अरक्षित पड़ा है... पर मुझ जैसे एक महत्वहीन प्राणी से प्रकृति क्या चाहती भला? मैं जो कुछ भी था और मेरे पास अपने शरीर समेत जो भी था, वह दिव्य द्वारा ही दिया था। यह महसूस करना एक मुक्त करनेवाली अनुभूति थी कि मेरे पास न तो खोने को कुछ था और न ही भयभीत होने को।

तूफानों के वक्त, तेज हवाएं झोपड़ी पर पड़े फूस के छप्पर पर जोर आजमाइश करतीं और इसे कुछ सेकंडों के लिए कुछ इंच ऊपर उठाकर फिर बड़े जोरों से दीवारों पर पटक

देतीं। जब-जब ऐसा होता, तो छप्पर में पड़े झुंड के झुंड जीवित तथा मृत कीट-पतंगे उससे मुझपर आ गिरते थे। छप्पर रस्सियों से बंधा था, वरना उसे तो कब का उड़ाकर फेंक दिया गया होता। मैंने उन रस्सियों के अंदर से एक तिरपाल सरका दिया था और उसके ऊपर भारी पत्थर रख दिए थे, ताकि वह उसे जगह पर टिकाए रख सके। किंतु हवाएं बहुत जोरदार होतीं और जब भी तूफान आता-चार महीनों में लगभग नित्य ही-तो वह उस तिरपाल को खिसका देता। खिसक जाने के बाद, इसकी उपयोगिता ही समाप्त हो जाती। हर तूफान के बाद प्रदीप छप्पर पर चढ़कर बड़े धैर्य से तिरपाल को फिर जगह पर लाया करते।

एक बार ओलों के साथ तूफान आया। छप्पर पर गिरते ओलों से कर्णभेदी आवाज आ रही थी। मुझे खुशी थी कि मेरे पीछे की दीवार तिरपाल से भलीभांति ढकी और कांटियों से ठुकी थी। जब मैं सुबह में बाहर गया, तो मैंने पाया कि दीवार थोड़ी भिन्न लग रही है। मुझे यह समझने में कुछ सेकेंड लग गए कि तिरपाल अब दीवार पर नहीं, बल्कि चीथड़ों में बदलकर नीचे जमीन पर पड़ा है। मैं यह समझ गया कि तिरपाल के बगैर अब दीवार की ऊपर से वर्षा का पानी अंदर आ जाएगा और चूंकि मैं दीवार की बगल में ही बैठता था, अतः अब मेरा बिस्तर भी भीग जाएगा।

अब, यह जगह मेरे लिए अनुपयुक्त हो गई थी, किंतु किसी भी परिस्थिति में मैं इसे छोड़ने को तैयार न था। मैंने ऊपर देखा और कहा, 'क्या आपके पास इतना ही था? मुझे दिखाओ कि आपके पास और क्या बचा है? मैं मर जाऊंगा, किंतु मैं आपका रूप देखे बगैर यहां से नहीं टलूंगा। बस तिरपाल ही क्यों, छप्पर ले जाओ, पूरी झोपड़ी ही ले जाओ। आप मेरे शरीर को यंत्रणा दे सकते हो, किंतु मेरा संकल्प अटल है।' मैं श्रद्धालु नहीं, विद्रोही महसूस कर रहा था। इस बार, मैंने यह निर्णय किया कि मैं दूसरा तिरपाल नहीं लगाऊंगा। प्रकृति मेरे साथ जो भी करना चाहे, मैं अब उसके लिए प्रस्तुत था। उसके बाद भी अनगिनत बार बारिश के साथ तूफान आए, किंतु उन्होंने कभी मेरा बिस्तर नहीं भिगोया।

मुझे पहली बार के हिमपात का भी स्मरण है, जमीन पर हिम की लगभग 12 इंच मोटी परत तो अवश्य ही बिछी होगी। मैंने प्रदीप की झोपड़ी की ओर चलना आरंभ किया, किंतु लगभग 20 कदम चलने के बाद अब और आगे चल पाने में स्वयं को असमर्थ पाया। हिम की ठंड असहनीय थी। मैंने हिम पर गाड़ी चलाई थी; मैं उस पर खेला भी था, पर कभी भी पैरों में केवल चप्पलें पहन हिम में चला न था; मैंने मोजे भी नहीं पहने थे। अगला कदम उठाना असंभव हो गया और स्वाभाविक ही था कि कहीं बैठने की भी जगह न थी। मैं दोनों झोपड़ियों के बीच पूरी तरह फंसा खड़ा था। मैं पीछे नहीं जा सकता था और आगे भी नहीं बढ़ सकता था। अब मुझे अत्यंत पीड़ा हो रही थी और मैंने सोचा कि मेरे पैर बस नाकारा हो जाएंगे। मैंने प्रदीप को यह हिदायत दे रखी थी कि यदि मैं गहरी समाधि में चला गया, तो उस दिन का आहार छोड़ दूंगा और उसके बदले उसे अगले दिन लूंगा। इसलिए यदि मैं गिर पड़ता, तो इस बात की कोई संभावना न थी कि प्रदीप मुझे ढूंढ़ते हुए वहां आते, क्योंकि उन्होंने समझ लिया होता कि मैं समाधि में चला गया हूं।

यदि मैं गिर गया, तो वन्यपशुओं द्वारा मुझपर आक्रमण की संभावना से मैं चिंतित न था,

और न ही मैं मरने से भयभीत था। मैं बस अपनी यात्रा अधूरी नहीं छोड़ना चाहता था, मैं बिलकुल उसके अंत तक पहुंचना चाहता था। मैंने ऊपर स्लेटी आकाश और अधिकतर हिम से ढके हरे वृक्ष, शुभ्र, श्वेत पर्वत चोटियों की ओर देखा और वे सभी मौन तथा बेपरवाह थे। यद्यपि, मैं किसी चमत्कार की आशा न कर रहा था, पर मैंने ऊपर भगवानों की ओर देखा। मैंने अपने साथ एक छड़ी ले रखी थी, जिसे मैं इसलिए इस्तेमाल करता था कि मेरे घुटने कभी-कभी अब भी दर्द करते थे। मैंने अपना सारा भार उसी छड़ी पर देकर अपने दाएं पैर को ऊपर उठाया, ताकि अपने खाली हाथ से उसकी मालिश कर सकूं। पर मैं कुछ सेकेंडों तक वह भी न कर सका, क्योंकि मेरा बायां पैर जवाब दे रहा था। मैंने बारी-बारी से यही काम दोनों पैरों के साथ किया। मुझे लगा कि इससे कुछ राहत मिलेगी, पर ऐसा कुछ भी न हुआ। ऊपर से अब मेरे हाथ भी सुन्न और गीले हो गए।

बर्फीली हवाएं चल रही थीं और आकाश गहरे धूसर रंग का हो चला था। मैंने सोचा कि यदि मैं गिर जाऊं, तो शायद मैं प्रदीप की झोपड़ी की ओर बढ़ सकूं। यदि मैं उसे पुकारता, तो संभावना थी कि वे मुझे सुन सकते। मुझे लगभग बीस मिनट और लगे, किंतु मैं उनकी झोपड़ी तक जीवित जा पहुंचा। वहां पहुंचने के बाद कुछ देर तक तो मुझे अपने पैरों के अस्तित्व का बोध ही न हुआ। अंततः, जब पैरों में पुनः रक्तसंचार आरंभ हुआ, तो उनमें इतनी भीषण पीड़ा उठी कि मैंने यह मनाया कि काश, ये पैर रहे ही नहीं होते। मनाने के लिए यह कोई अच्छी बात तो निश्चित ही न थी।

आहार लेने के बाद, अब पुनः अपनी झोपड़ी तक पहुंचना भी चुनौती था। मैंने प्रदीप से कहा कि यदि इसी तरह हिमपात होता रहा, तो मेरे लिए उनके पास आ पाना असंभव हो जाएगा। वैसी स्थिति में केवल कुछ सूखी चीज ही चबा कर रह जाने की कोशिश करूंगा। उन्होंने मेरे लिए कुछ चीजें पैक कर दीं, ताकि मैं उन्हें अपने साथ ले जा सकूं। मैंने अपने दोनों पैरों की चारों ओर पॉलिथीन के बैग बांध लिए और खाने की चीजों के थैले को अपनी पीठ पर बांध धीरे-धीरे वापस चलना आरंभ किया। इस बार मैं अधिक अच्छी तरह तैयार था, सो मैं वापस पहुंच गया। अभी भी यह कठिन तो था ही, पर उतना अधिक तो बिलकुल नहीं। तैयारी क्या कर सकती है, यह आश्चर्यजनक होता है। एक सही तैयारी महानतम उपलब्धियों की चाबी, सभी भयों की निवारक और सक्षमता तथा आत्मविश्वास का बीज होती है।

हिमपात होना जारी रहा, पर मैं नित्य प्रदीप की झोपड़ी तक पहुंच पाने में सफल रहा, क्योंकि मैंने एक जोड़ा पुराने ऊनी मोजे पहन लिए, जिन्हें मंदिर के लोगों ने मुझे दिया था। उन मोजों ने मुझे हिम से कुछ राहत प्रदान की। हालांकि वे भीग जाते थे, फिर भी हिम तथा नंगे पैरों के बीच एक परत का होना कहीं बेहतर था। कम से कम मैं चल तो सकता था। हालांकि, जनवरी के बाद हिम घट गया, किंतु अप्रैल तक भी मेरी झोपड़ी की चारों ओर हिम की पट्टियां बनी रहीं और चारों ओर की चोटियां तो वहां मेरे अंतिम दिन तक हिमाच्छादित ही रहीं।

सर्दियों ने जीवन के कुछ अन्य पहलू भी कठिन बना दिए थे, जिनमें प्रमुख था, शौच से निवृत्त होना। मुझे इसके लिए वन में जाना होता था, जो कोई समस्या न था। किंतु हिम में

चलते हुए वन तक जाना और वहां पैरों पर बैठना एक ऐसा साहसिक कारनामा था, जिसे मैं पसंद नहीं करता था, क्योंकि मेरे पैर कुछ ही पलों में सुन्न हो जाते। यहां तक कि कुछ पहलुओं में यह ध्यान करने से भी कठिन था। वहां तो जागरूकता और दृढ़ता के द्वारा मैं अपने मन को काबू में कर सकता था। किंतु यहां, मेरा शरीर प्रकृति के नियमों के अधीन था।

सर्दियों में स्नान करना भी सुगम ना था। पानी बर्फीला ठंडा होता और ऐसा महसूस होता कि मैं स्नान नहीं कर रहा, बल्कि बदन पर बर्फ घिस रहा होऊं। जिस दिन पहली बार हिमपात हुआ, मैंने 1 बजे सुबह स्नान किया था। जब मैं ध्यान के लिए बैठा, तो मेरा शरीर बर्फ की भांति था। मैंने स्वयं को रजाई से ढक लिया और फिर से गरम महसूस करने में मुझे लगभग दो घंटे लग गए। फिर भी, हिमालय की साफ रातों में स्नान करने में कुछ दिव्य था, खासकर तब, जब चांदनी खिली हो। वन की निस्तब्धता में अपनी झोपड़ी के छिद्रों से मैं चंद्रमा के प्रकाश से आलोकित पर्वतश्रेणियों को चांदी की तरह चमकते हुए देख सकता था।

नींद एक अन्य पीड़ाजनक अनुभव थी। अत्यंत ठंडक के कारण मैं एक बार भी अपने पांव पसारकर न सो सका। यदि गलती से भी कभी मेरे द्वारा तेजी से की गई किसी हरकत से रजाई मेरे शरीर से जरा भी खिसक जाती, तो झोपड़ी से होकर बहती हुई बर्फीली हवाएं रजाई के अंदर प्रवेश कर जातीं और मुझे फिर से गरम होने में एक घंटे का समय लग जाया करता। जैसी मेरी दिनचर्या थी, मैं एक बार में दो घंटे से अधिक नहीं सो पाता और यदि गरम होने में ही एक घंटा लग गया, तो फिर विश्राम करने के लिए कोई समय नहीं बचता था। मेरी सूती रजाई छोटी थी। जगह की उपलब्धता को देखते हुए बड़ी रजाई रखना संभव भी नहीं था। मैं या तो अपने पैर भली-भांति ढांप सकता था, या फिर अपना सिर, किंतु दोनों को एक साथ नहीं, और मैंने हमेशा पैरों को ही ढांपना अधिक पसंद किया। मैंने यह भी पाया कि मैं पेट अथवा पीठ के बल सो कर रजाई को दोनों ओर से अपने बदन के अंदर नहीं दबा सकता था।

हो सकता है आपके मन में यह प्रश्न उठे कि क्यों मैं और अधिक कपड़े, या बर्फ में पहननेवाले जूते नहीं मंगा सकता अथवा अपनी झोपड़ी में अधिक आराम से रहने की व्यवस्था नहीं कर सकता था? क्यों मैंने इन बाधाओं के साथ जीना जारी रखा? ऐसा इसलिए नहीं था कि मैं स्वयं को कोई दंड देना अथवा एक पीड़ित की तरह महसूस करना चाहता था। इसका उत्तर बहुत आसान है। अपने शरीर के साथ हमारा तादात्म्य इतना शक्तिशाली होता है कि अधिकतर लोग अपना जीवन बस अपने शरीर की देखरेख करते हुए ही गुजार दिया करते हैं। शरीर ठंडा महसूस करता है, तो चलो, हम इसे कपड़े पहनाएं; यह गरमी महसूस करता है, तो आओ, हम इस पर कपड़े कुछ कम करें; यह भूखा है, तो इसे खिलाओ; यह थका है, इसे आराम दो। शरीर की बहुतेरी इच्छाओं की पूर्ति करते-इसे साफ करते, खिलाते, कपड़े पहनाते, सजाते और इसकी रक्षा करते-हुए हम इतने व्यस्त रहते हैं कि इसके दास बन जाते हैं।

एक सच्चे योगी को कभी न कभी तो शरीर की आवश्यकताओं से ऊपर उठना पड़ता है। ठीक जिस तरह एक खिलाड़ी को दर्द सहने की अपनी सीमारेखा की जांच करने, अपनी

सीमाएं जानने हेतु स्वयं को अधिक से अधिक ठेलते हुए आगे बढता है। उसी तरह एक आध्यात्मिक जिज्ञासु को अपने शरीर को वश में कर अपने पथ पर अग्रसर होना अनिवार्य है। जब हम अपने शरीर और इसकी आवश्यकताओं पर नियंत्रण पाने की शुरुआत करते हैं, तो मन पर काबू पाना आसान हो जाता है। योगी को आराम के साधनों के प्रति तब तक उदासीन रहना चाहिए, जब तक न केवल वह मुक्तावास्था प्राप्त कर लेता है, बल्कि उसमें रहना भी सीख लेता है।

मेरे द्वारा झेली गईं अधिकतर कठिनाइयां मेरे शरीर से संबद्ध थीं। क्या मुझे अपने ध्यान को प्राथमिकता देने के बजाए इन कठिनाइयों से इस हद तक चिंतित हो जाना चाहिए था कि मैं स्वयं को आराम देने की इच्छा करने लगूं? नहीं, मेरी दुनिया में तो बिलकुल नहीं। 'यदि तुम आराम चाहते हो, तो जाओ, जाकर किसी ऐसे घर में रहो, जहां सारी सेवाएं पहुंचाने की व्यवस्था हो,' मैं अपने शरीर को कहा करता। 'यदि तुम ईश्वर को चाहते हो, तो चुप रहो और ध्यान करो।'

मेरा ऐसा मानना था कि बाबा के आश्रम में मेरा समय यहां पहाड़ों पर मेरे समय की तैयारी था। एक हद तक, यह सचमुच वैसा था भी। यहां रहते हुए मैंने क्रमशः यह महसूस किया कि प्रकृति मुझे बहुत कुछ और भी सिखाना चाहती थी। अधिक कठिन शारीरिक चुनौतियों का सामना करना उस प्रक्रिया का एक हिस्सा था, जिसमें मुझे डाला गया था: मेरे संकल्प तथा साहस की परीक्षा लेना, मेरे आंतरिक कौशलों को मांजना, मेरे ध्यान को गहरा करना। अंततः, मेरी सारी कठिनाइयां समर्पण के अवसर थीं। संपूर्ण समर्पण के बगैर, मैं जानता था कि दिव्य कभी भी मेरे सामने स्वयं को प्रकट नहीं करेंगे।

किंतु सभी चीजें असुविधाजनक ही नहीं थीं। प्रदीप की झोपड़ी में जाना मेरे लिए अत्यंत सुखद होता, क्योंकि वह पत्थर से बनी थी और इसे उनके द्वारा भली-भांति गरम रखा जाता। वास्तव में हम दोनों ही अग्नि को कभी बुझने न देते; वे बाहरी अग्नि प्रज्ज्वलित रखते और मैं आंतरिक अग्निः दोनों के एक-एक उद्देश्य थे।

फिर भी, अपने कुछ तौर-तरीकों से प्रदीप मेरे धैर्य की परीक्षा भी लिया करते। वे एक अविश्वसनीय बातूनी व्यक्ति थे, मेरे बिलकुल विपरीत। जिस पल मैं उनकी झोपड़ी में प्रवेश करता, वे बातें करना शुरू कर देते और निरंतर बोलते चले जाते। वे मुझे बताते कि चूहों ने पिछली रात क्या किया, वे कौन-सी खाद्य सामग्री चट कर गए, उन्होंने कौन-कौन से खेल खेले, कैसे लड़ाई की और इसी तरह, और भी बहुत कुछ। जरा कल्पना कीजिए कि ध्यान की एक लंबी अवधि के तुरंत बाद चूहों के विषय में सुनने को बाध्य होना कैसा रहेगा।

किंतु प्रदीप के किस्सों में और भी बहुत कुछ हुआ करता। वे ग्रामीणों के साथ अपनी बातचीत के विषय में बताते और यह भी कि जब पिछले दिन वह नीचे बस्ती में गए, तो वहां क्या-क्या हुआ। फिर वे मुझे अपने अतीत के बारे में बताते और उनकी कहानियां एक दूसरे के साथ इस तरह आगे-पीछे होतीं कि आपको चक्कर सा आने लगता। मैंने उनसे केरल के एक सुप्रसिद्ध मंदिर की यात्रा की कहानी सुनी, जहां उन्होंने पाया कि वे जिस पानी से स्नान कर रहे थे, वही पानी घूमकर पुनः नलों से गिरता था, यानी वे पहले स्नान किए हुए पानी से

ही फिर स्नान कर रहे थे।

उन्होंने मुझे बताया कि किस तरह एक बार उसकी उंगली बुरी तरह कुचल कर खून से लथपथ हो गई थी। उन्होंने अपने भाई से उसे अस्पताल ले चलने को कहा, जिन्होंने उत्तर दिया कि वे ठीक ढंग से तैयार हुए बिना नहीं निकल सकते और यह कहकर वे अपने बालों में कंघी करने, कपड़े पहनने और फेस क्रीम तथा पाउडर वगैरह लगाने में व्यस्त हो गए। निराशा में प्रदीप स्वयं दौड़ते हुए अस्पताल भागे, जबकि उनके भाई स्कूटर से तब अस्पताल पहुंचे, जब उनकी उंगली की ड्रेसिंग हो चुकी थी।

प्रदीप ने बताया कि दक्षिण भारत में एक ऐसा भी संप्रदाय है, जिसके अंतर्गत चार व्यक्ति एक सूअर को पकड़े रहते हैं और एक व्यक्ति नाखूनों से उसके पेट फाड़ता है। फिर, वे उसके खून में केले डुबोकर उसे खाते हैं। उन्होंने मुझे अपने गांव के एक नाई की कहानी भी सुनाई, जो एक बच्चे के बाल काटते वक्त क्रिकेटमैच देख रहा था। जब उधर बल्लेबाज ने छक्का लगाया, तो उत्साह के अतिरेक से नाई ने, दुर्घटनावश, बच्चे का कान ही काट लिया। 'बच्चे का फिर क्या हुआ?' मैंने पूछा। 'वह दौड़ते हुए बाहर भागा और उसके पिता ने आकर नाई की पिटाई की,' प्रदीप ने कहा।

एक समय, प्रदीप एक चैरिटी अस्पताल में काम करते थे, जहां उन्हें प्रतिदिन 40 किलो दूध उबालना पड़ता। वे उसे ठंडाकर उसकी सारी मलाई खा जाते। यदि वे ऐसी कहानियां सुनाते-सुनाते ऊब जाते, तो फिर चूहों पर लौट आया करते और बताने लगते कि चूहों ने पिछली रात क्या-क्या किया। जैसे, दुर्योग से, एक दिन उन्होंने अपनी चुटिया को घीयुक्त हाथों से छू लिया, तो कैसे उस रात चूहों ने उनके वे बाल ही कुतर डाले।

जब आप पूरी रात ध्यान करते रहे हों, उस गहरी अनुभूति से प्राप्त आनंदातिरेक और साथ ही थकावट में डूबे हों और अपना प्रथम तथा एकमात्र आहार लेने बैठे हों, तो ऐसी कहानियां आपको मनोरंजक नहीं लगा करतीं। मुझे शांति की आवश्यकता होती और मैं उससे चुप हो जाने की विनती करता, किंतु बच्चों जैसे स्वभाव वाले प्रदीप इसे समझ नहीं पाते। वे चुप रह ही नहीं सकते थे। हालांकि आप उन्हें दोष भी नहीं दे सकते थे। मैं वहां ध्यान कर रहा और अपने मन को शांत करने के प्रयास कर रहा था पर, वे तो केवल मेरी मदद के लिए वहां थे। हमारी प्रजाति के लिए लंबी अवधि तक एकांत में रहना अथवा मौन रहना स्वाभाविक नहीं है और स्वयं को अभिव्यक्त करना हमारी बुनियादी प्रकृति है।

चूंकि मैं एकांत में था, संभवतः इस कारण से मैं प्रदीप के मन की अशांत स्थिति को समझ सकता था। वे बहिर्मुखी तथा गपशप करने वाली प्रकृति के और बड़े शहरों के व्यस्त आश्रमों में रहने के अभ्यस्त थे। यहां वे एक भयावह एकांत में थे और उससे बातें करने के लिए कोई भी व्यक्ति उपलब्ध नहीं था। वनों में आप वृक्षों तथा वन्यपशुओं से, और यदि आप स्वयं को जब्त कर सकें, तो स्वयं से भी बातें कर सकते हैं। प्रदीप को ये साथी दिलचस्प नहीं लगते थे और यह सच भी है कि ये बहुत आसान साथी नहीं हुआ करते। इसलिए, वे मुझसे बातें किया करते थे।

इसमें कोई शक नहीं कि प्रदीप मेरे प्रति पूर्णतः समर्पित थे। सच तो यह है कि उन्होंने

अपनी विनम्रता तथा श्रद्धा से मुझे पूरी तरह जीत लिया था। किंतु मैं उनकी निरर्थक बातों से तब तक निराश होता रहा, जब तक मैंने यह नहीं समझ लिया कि ब्रह्मांड ने मेरी परीक्षा लेने तथा मुझे प्रशिक्षण देने के लिए ही उन्हें वहां भेजा था। जिस एकमात्र तरीके से मैं इस स्थिति से निबट सकता था, वह शांत तथा अप्रभावित रहना था। और फिर, यह स्थिति किस तरह संसार में रहने से भिन्न थी? जब मैं संसार में था, तो जीवन ने मुझे अच्छी-बुरी कहानियां सुनाईं। लोगों ने मुझे छोटी-बड़ी कहानियां सुनाईं। संसार ने मुझे सच्ची-झूठी कहानियां सुनाईं। मेरे धर्म ने मुझे तथ्यात्मक तथा काल्पनिक कहानियां सुनाईं। जीवन ने मुझे जिस प्रत्येक अनुभव से गुजारा, वह सब किसी न किसी रूप में एक कहानी ही था। और अब प्रदीप मुझे कहानियां सुना रहे थे।

मुझे लगा कि मुझे प्रदीप की कहानियों को स्वीकार अथवा अस्वीकार करने की आवश्यकता नहीं है। मैं सुनना तो रोक नहीं सकता, पर मुझे उनपर गौर नहीं करना है। सबसे बड़ी बात यह थी कि उनमें भी तो मेरी तरह दिव्य तत्व विद्यमान था। सो, मैं उसे अस्वीकार कैसे कर सकता हूं? उनके द्वारा जीवन को मुझे जो कुछ भी सिखाना है, वह बस ठीक है। यही प्रेम हैः सहज बने रहना। और यही वह था, जिसे मैंने उसके अपने आसपास रहते हुए सीखाः सहज बने रहना। मैं कभी किसी पर न चिल्लाया था, कभी मुझे क्रोध का दौरा नहीं पड़ा था। किंतु, यदि मुझमें क्रोध का रंचमात्र भी बचा था, तो मैं उसे भी पूरी तरह त्याग देना चाहता था। मुझे अब उसका पूरा अवसर दिया गया था। क्रोधरहित मन से असाधारण शांति की अनुभूति गहरे ध्यान का एक प्रतिफल है।

समय की लंबी अवधियों तक पालथी लगाकर बैठना मेरे लिए कठिन न था, किंतु वैसा करते हुए बिलकुल स्थिर बैठे रहना एक बड़ी चुनौती था। सच तो यह है कि यह उन कुछ सबसे कठिन कार्यों में शामिल था, जिन्हें मैंने कभी किया था। वैसा करते हुए मुझे अपने घुटनों में भीषण दर्द के चरण से गुजरना पड़ा। मेरे लिए कुछ कदम भी चल पाना दुरूह हो गया, क्योंकि दर्द से मैं अपने पांव भी नहीं उठा सकता था। उस पल मेरे लिए दो विकल्प थेः या तो मैं वह अभ्यास रोककर डॉक्टर का परामर्श लूं, अथवा दृढ़ता से जमा रहूं। मैंने डटे रहने का निर्णय किया और अपनी साधना जारी रखी। मैंने हिमालय के ऋषियों, द्रष्टाओं तथा अपने सिद्धों से मदद की प्रार्थना की। लगभग एक माह बाद घुटनों का यह दर्द कुछ धीमा पड़ना आरंभ हुआ। फिर भी, मैं एक बार में दस घंटे बैठ रहा था और दर्द के कारण से अपनी एकाग्रता बनाए रखना मेरे लिए आसान न था।

भावातीत स्थिति तक पहुंचने, भौतिक शरीर से परे जाने के लिए आपको एक ऐसी जगह में जाना होता है, जहां आप अपने शरीर को पूरी तरह भुला सकें। शारीरिक गतिविधियां आपके ध्यान के लिए अत्यंत हानिकारक हैं, क्योंकि वे आपको अपने शरीर के प्रति जागरूक करती हैं। इसलिए, ध्यान में निश्चेष्ट बैठना बिलकुल अनिवार्य है, क्योंकि एक निश्चेष्ट शरीर में ही एक निश्चेष्ट मन रहता है और एक निश्चेष्ट शरीर मन को भी निश्चेष्ट करने में

सहायक होता है; वे एक दूसरे के पूरक होते हैं। ठीक जिस तरह नदी के पार चले जाने पर आपको नाव की आवश्यकता नहीं रह जाती, उसी तरह जब कोई साधक समाधि में बने रहने में प्रवीण हो जाता है, तो उसके लिए ये शर्तें आवश्यक नहीं रह जातीं। उस समय मैं एक जिज्ञासु था, प्रवीण नहीं। मैंने तो समाधि में जाना भी नहीं जाना था, उसमें टिके रहने का तो प्रश्न ही नहीं था।

मैंने जिन सभी चुनौतियों का सामना किया था, कुल मिलाकर उनमें सबसे कठिन यही थीः अपने मन को पूरी तरह निश्चेष्ट कर पाना। आरंभ में तो प्रत्येक कुछ मिनटों पर मेरी एकाग्रता अपनी तीव्रता खो देती। किंतु दृढ़ता तथा जागरूकता बनाए रखने से वह कुछ मिनट बढ़ते हुए लगभग आधे घंटे तक चली गई और फिर उससे कुछ और आगे तक किंतु, किसी भी स्थिति में, पहले घंटे के बाद अपनी एकाग्रता बनाए रखना कठिन हो रहा था। मेरा लक्ष्य था कि मैं एकाग्रता खोए बगैर दिव्यमाता पर केंद्रित रहूं। यदि आप यह नहीं जानते कि मेरा आशय क्या है, तो केवल एक वस्तु के विषय में सोचिए। अपनी आंखें बंदकर उस वस्तु की छवि देखने का प्रयास कीजिए। कुछ सेकेंड बाद आपके मन में बनी छवि धुंधली होने लगेगी। आरंभ करनेवाले इस छवि को मानसिक रूप से कुछ सेकेंड तक बनाए रख सकते हैं, अच्छे ध्यानकर्ता इसे कुछ मिनटों तक रख सकते हैं, महान ध्यानकर्ता इसे कई मिनटों तक कर सकते हैं और पारंगत साधक इसे चार घंटों से ऊपर तक बनाए रख सकते हैं। मैं इससे आगे जाकर सब समय, चौबीस घंटे प्रतिदिन, जगन्माता का ध्यान करना चाहता था।

एक ध्यानकर्ता के लिए एकाग्रता की कमी सबसे बड़ी बाधा है, जिसे पार करने के बस एक मार्ग की मुझे जानकारी थी और वह लगे रहना था। मैंने जीवन में अब तक जो भी प्राप्त किया था उसे दृढ़ता और धैर्य के बल पर ही किया था और यह आशा थी कि शायद यही गुण फिर इस बार मेरे हित काम करेंगे। और उन्होंने किया भी, क्योंकि मेरी एकाग्रता क्रमशः स्थिर होने लगी। मुझे स्मरण है कि कई बार मैं उठ जाना चाहता, क्योंकि दर्द असहनीय हो जाता अथवा मैं अत्यंत थकावट महसूस करने लगता। किंतु मैं स्वयं से कहता कि यह समय बीत जाएगा; यदि मैं कुछ और भी करूं, तो भी घड़ी की सुई तो आगे बढ़ती ही रहेगी, तो क्यों नहीं मैं ध्यान ही करूं।

मैं यह जानता था कि योग का मार्ग एक महान अनुशासन तथा कठोरता का मार्ग है। जब भी मैं थकावट महसूस करता, तो स्वयं को यह स्मरण दिलाता कि मैंने अपने परिवार, घर और सुविधाओं को आराम करने अथवा शिथिल पड़ने के लिए नहीं, बल्कि परम आनंद की प्राप्ति के लिए, ईश्वर से एक होने के लिए छोड़ा है। प्रायः मुझे मेरी मां द्वारा मेरे बचपन में गाए जानेवाले एक पंजाबी भजन की याद आ जाती, जिसका अर्थ थाः 'ईश्वर से मिलना सहज नहीं होता, इसके लिए श्रद्धालु को अनेक कठिनाइयों से होकर गुजरना पड़ता है।'

आप जब पहली बार ध्यान करना आरंभ करते हैं, तो यह चेतन मन की क्रिया होता है और आपको इसके लिए चेष्टा करना पड़ता है। कितु, जब आप इस पर अधिकार प्राप्त करने लगते हैं, तो यह एक नया स्वरूप प्राप्त कर लेता है। एक क्रिया से, यह एक अवस्था-अवचेतन मन की अवस्था-में बदल जाता है। और जब आप इसपर लगे रहते हैं, तो यह एक

बार फिर परिवर्तित हो जाता है। अब यह एक क्रिया अथवा अवस्था न रहकर एक स्थिति बन जाता है, जो आपके साथ घटित होती रहती है।

प्रारंभ में, मुझे अपने मन को भटकने से रोकने की चेष्टा करनी पड़ती। एक अवधि के बाद यह दूसरे छोर पर पहुंच गया। मुझे जगन्माता के अतिरिक्त किसी अन्य के विषय में बातें करने अथवा सोचने के लिए चेष्टा करनी पड़ती। प्रकाश की ओर उड़ते एक पतंगे की तरह मेरा मन हमेशा उसकी ही ओर उन्मुख रहा करता। अब मैं इसे एक चेतन क्रिया के रूप में नहीं कर रहा था, यह मुझे बस हो जा रहा था। मैं हमेशा एक बेसुधी में रहता और यह महसूस करता कि मैं लगातार नशे में हूं। मेरे पास ऐसे शब्द नहीं हैं जो उस आनंदातिरेक का वास्तविक वर्णन कर सकें। आप सतत रूप से एक प्रिय और मधुर ध्वनि सुनते रहने की कल्पना करें। कुछ समय बाद, आप उस ध्वनि के साथ एकाकार हो उठेंगे।

1 जनवरी, 2011 को मैंने सत्य वादन की शपथ ली। मैंने निर्णय किया कि चाहे जो भी हो, मैं अब कभी असत्य नहीं बोलूंगा। अपनी अंतिम सांस तक। इस संसार में रहते हुए हमेशा सत्य बोलना आसान नहीं है, क्योंकि सत्य पीड़ादायी हो सकता है, किंतु यह एक ऐसा गुण तथा अनुशासन है, एक सच्चे साधक को जिसका अभ्यास करना ही चाहिए। चार ही दिनों बाद मुझे 150 दिनों की एक साधना पर जाना था और यह मेरे जीवन की सबसे महत्वपूर्ण साधना होने जा रही थी। यह वही साधना थी, जिसकी तैयारी मैं इन सारे वर्षों के दौरान करता रहा। मैं मां त्रिपुर सुंदरी के एक पूर्ण मंत्र का ध्यान करने जा रहा था, और निर्णय किया कि वही मुख, जो दिव्य के नाम का उच्चारण करने जा रहा था, उसे असत्य संभाषणकर स्वयं को दूषित नहीं करना चाहिए। यह ईश्वर तथा स्वयं मेरे प्रति मेरी वचनबद्धता थी।

मैंने कागज का एक टुकड़ा निकाला और अपनी आगामी साधना के लिए उसपर एक श्रीचक्र यंत्र लिखा। एक श्रीविद्या साधक के रूप में, मैं देवी महात्रिपुरसुंदरी के स्वरूप में माता की उपासना करता था, जो दस में से एक तांत्रिक विद्या है। इस उपासना के तीन पहलू हैं: यंत्र, देवी का मंत्र और सहस्रनाम। जिस तरह एक बच्चे को तैरना सिखाने के लिए प्रारंभ में एक तैरनेवाले उपकरण (फ्लोटर) की आवश्यकता होती है, बिलकुल उसी तरह, श्रीविद्या की परंपरा एक साधक के पूरी तरह अंतर्मुखी होने-जब वह केवल देवी पर ही ध्यान कर सके-के पूर्व श्रीयंत्र जैसे एक बाह्य साधन के सहारे की अनुशंसा करती है।

'त्रि' का अर्थ होता है, तीन और 'पुर' का अर्थ है 'अवस्था।' देवी हमारी चेतना की तीन अवस्थाओं को संचालित करती है। ये तीन अवस्थाएं हैं: जाग्रति, स्वप्न और सुषुप्ति। ये अवस्थाएं कई संदर्भ में प्रकट होती हैं। जैसे, ये भौतिक प्रकृति के तीन रूपों का प्रतिनिधित्व भी करती हैं: सत्व यानी अच्छाई, रजस यानी कामनाएं और तमस यानी अज्ञान। फिर 'त्रिपुर' शरीर के तीन भौतिक तत्वों से भी संबद्ध हैं: वात पित्त और कफ। उसी तरह मानवीय अस्तित्व के भी तीन रूप हैं: बाल्यावस्था, युवावस्था और वृद्धावस्था। बड़े स्तर पर तीन जगत हैं: पाताल, पृथ्वी और स्वर्ग। सूक्ष्म स्तर पर यह मन की तीन अवस्थाओं से संबद्ध

हैः सकारात्मक, नकारात्मक तथा तटस्थ। अंततः, इन सभी अवस्थाओं से परे जाने के लिए साधक को इन सबके पार जाकर अपनी श्रद्धा में मजबूती से केंद्रित रहना अनिवार्य है।

दिव्य माता के स्वरूप पर ध्यान करने से सृजित ऊर्जा क्षेत्र का ज्यामितीय रूपांकन श्रीयंत्र है और यह ध्यान का एक शक्तिशाली साधन है। देवी के मंत्र पर-जिसका मानसिक जप किया जाता है-मुख्य ध्यान प्रारंभ करने के पूर्व श्रीयंत्र के अंदर 171 से भी अधिक शक्तिरूपों का आवाहन किया जाता है। ये शक्तियां जिज्ञासु के मन की अवस्था को ऊपर उठाकर ध्यान के दौरान और उसके बाद उसे केंद्रित रखने में मदद करती हैं, ताकि वह दिव्यमाता के विचार पर केंद्रित रह सके।

सहस्रनाम का उपयोग देवी को श्रद्धा और समर्पण के साथ पुकारने के लिए किया जाता है। उसके नाम का जप करने के पीछे विचार यह है कि उसके लिए उसी तरह रोया जाए, जिस तरह एक शिशु अपनी मां को पुकारता है, जिसका अर्थ एक शिशु ही बन जाना है। छोटे बच्चे घृणा, ईर्ष्या तथा द्वेष जैसी नकारात्मक भावनाओं से मुक्त रहते हैं-जो एक साधक के लिए बड़ी बाधाएं हैं।

इस तरह, श्रीयंत्र दृश्य तथा शक्ति पक्ष को आच्छादित करता है, जबकि मंत्र मानसिक पक्ष के लिए और सहस्रनाम श्रद्धा के लिए है। जब आप दृश्य रूप से श्रीयंत्र पर ध्यान करते हैं, जब आप मानसिक रूप से देवी के मंत्र पर ध्यान करते हैं; जब आप वाचिक रूप से उनका नाम जपते हैं, तो व्यवहारतः, आप सब समय उसमें ही रहते हैं। यही वह अवस्था है, जिस तक एक साधक को ईश्वर के साथ पूर्ण तथा अडिग तल्लीनता की अनुभूति करने के लिए पहुंचना ही चाहिए। मैंने दिव्यमाता पर इसी तरह प्रतिदिन लगभग चौबीस घंटे ध्यान किया। एक बार जब आप स्वयं को पूरी तरह डुबो देते हैं, तो एक समय आता है, जब आप न केवल उस दैवीय सत्ता को देखते हैं, बल्कि उससे एकाकार हो जाते हैं, तो आप दिव्य के साथ पूर्ण एकात्मता प्राप्त कर लेते हैं।

अपनी श्रद्धा में, मैंने ईश्वर को एक जीव, लगभग एक व्यक्ति के रूप में देखा था, क्योंकि एक व्यक्ति के रूप के प्रति समर्पण करना आसान है। अब, मेरे योगी मन ने ईश्वर को सभी चीजों के सारतत्व के रूप में देखना आरंभ कर दियाः फूलों की सुगंध, अग्नि का ताप, बर्फ में शीतलता, सर्प में विष; यद्यपि, मेरी श्रद्धा, भक्ति तथा मेरी एकाग्रता की अंतिम परीक्षा उस सारतत्व का प्रकट रूप देख पाने में थी। मैं अपने एकाग्र विचारों को अपनी आंखों के सामने प्रकट होते देखना चाहता था।

ध्यान के दौरान असाधारण रूप से लंबी अवधियों के लिए अडिग बैठे रहने की मेरी क्षमता समय के साथ उल्लेखनीय रूप से बढ़ती गई। एक ऐसी अवस्था आई, जब चूहे मेरी गोद में अथवा मेरे आसपास क्या कर रहे हैं, इसे देखने के लिए मैंने सिर अथवा आंखें घुमाना भी बंद कर दिया। उसी निश्चेष्टता से आनंद की अमित धारा फूटी, जिसे मैंने जाना था। दृष्टिक्रिया की पूर्णता प्राप्त करना ध्यान में प्रगति का एक सूक्ष्म किंतु आश्वस्तिदायक चिह्न है,

क्योंकि जब आप गहरा ध्यान करते हैं, तो आपकी पुतलियों में थोड़ी भी हरकत आपकी चेतना को वापस शरीर पर ले आने को काफी होती है और यह एकाग्रता भंग कर देती है।

मेरे मौन तथा एकाग्र मन ने एक असामान्य स्थिति को जन्म दिया। मुझे लगा कि मैं अपनी इच्छानुसार अपनी हृदयगति को भी रोक सकता हूं। मैंने इस सिद्धि की प्राप्ति के लिए कोई योग नहीं किया ना ही यह मेरा लक्ष्य था, बल्कि यह तो घोर एकाग्रता के साथ अत्यंत शक्तिशाली ध्यान के फलस्वरूप नैसर्गिक रूप से हुआ। मैंने अपने शरीर की अनैच्छिक क्रियाओं पर उल्लेखनीय नियंत्रण प्राप्त कर लिया, जैसे अपना रक्तचाप, शरीर का तापमान और नाड़ी की गति नियंत्रित कर लेना।

मेरी चेतना मेरे शरीर के पार की यात्राकर अस्तित्व के अन्य स्तरों का अन्वेषण करने लगी। कितु मैं यह भली-भांति जानता था कि खगोलीय यात्राओं के ऐसे अनुभव किसी वास्तविक यात्रा के बजाए सीधे तौर पर मन की एक अवस्था भी हो सकते हैं। जब आप चेतना के विभिन्न स्तरों से होकर आगे बढ़ते हैं, तो उनकी सीमारेखाएं धुंधली हो जाती हैं। निस्संदेह, इन अनुभवों ने मुझे यह महसूस तो करा ही दिया कि मैं प्रगति कर रहा हूं, खासकर तब, जब मैं इन उपलब्धियों को दिन के भिन्न-भिन्न समय पर दोहरा पाने में समर्थ था। इसने मुझे यह आत्मविश्वास दिया कि यहां कार्य-कारण संबंध काम कर रहा था, जो एक वैज्ञानिक आधार है, मेरी कल्पना मुझे भ्रमित नहीं कर रही थी। साथ ही, मैं यह भी जानता था कि ये घटनाएं भटकानेवाली और ध्यान का निम्न प्रतिफल हैं, जो मेरा लक्ष्य नहीं हैं।

जैसे-जैसे मेरी साधना प्रगति करती गई, मैं अपने सिर में शक्तिशाली संवेदनाओं का विकास पाकर चकित रह गया। मैंने चक्रों के विचार को बहुत गंभीरता से नहीं लिया था और वर्षों पहले चक्रों पर ध्यान करना बंद कर दिया था। इन मनोतंत्रिका ग्रंथियों में ये संवेदनाएं स्वयं ही होने लगीं और यह मेरी ललाट तथा सिर में सबसे अधिक थी। मैं किसी भी भाषा के किन्हीं ऐसे शब्दों को नहीं जानता, जो इन संवेदनाओं का वर्णन कर सकें। आप यह कैसे बताएंगे कि एक गुलाब से कैसी सुगंध आती है? इसे जानने का एकमात्र तरीका एक गुलाब को सूंघना ही है। मेरे सिर में कोई दर्द अथवा भारीपन न था, केवल गहरे आनंद की लहरें थीं। मैंने सोचा कि ये संवेदनाएं चली जाएंगी, पर वे गईं नहीं। तथ्य तो यह है कि मैं अब भी हमेशा उनका अनुभव करता रहता हूं।

मैंने कभी भी इस तरह के अनुभवों के विषय में नहीं पढ़ा था। एक बौद्ध ग्रंथ ने इन संवेदनाओं का संक्षिप्त उल्लेख किया था, पर योग से संबद्ध मेरे शास्त्र इस संबंध में मौन ही थे। यह मुझे क्या हो रहा है? इन संवेदनाओं के क्या अर्थ हैं? मुझे कुछ पता नहीं था। किंतु, मुझे हो रहे इन सारे शक्तिशाली अनुभवों के बावजूद, मैं यह जानता था कि मुझे उनसे बंधकर नहीं रहना है और अपनी साधना में आगे बढ़ते ही जाना है। मैंने अब भी दिव्य की गोद का अनुभव नहीं किया था; मैं अब भी व्यग्र ही था; मैं अब भी अपूर्ण ही था। मैं अब भी बस, मैं ही था।

अध्याय चौदह
साक्षात्कार

मैं जिस तीव्रता तथा एकाग्रता से ध्यान कर रहा था, मेरे हृदय में जो व्यग्रता थी, उसके बावजूद अभी भी मुझे दिव्य के स्वरूप के दर्शन नहीं हुए थे। मैं यह भी नहीं जानता था कि मेरे ध्यान में सुधार मेरी प्रगति का संकेत था या नहीं। मैं अभी ही अपनी अधिकतम संभव सीमा तक ध्यान कर रहा था। मैंने निर्णय किया कि मुझे अपनी साधना संपन्न होने तक धैर्य के साथ प्रतीक्षा करनी है। 13 फरवरी 2011 को, जब श्रीयंत्र तथा मंत्र के साथ मां का ध्यान आरंभ करने के ठीक चालीस दिन पूरे हुए, एक बिलकुल ही अनपेक्षित घटना घटित हुई।

कुछ ही दिनों पूर्व, मैंने अपनी दिनचर्या परिवर्तित कर ली थी और संध्या 9 बजे से आरंभ कर 10 बजे सुबह तक ध्यान करना शुरू कर दिया था। लगभग 5 बजे प्रातः, जब मैं पूरी सचेतनता के साथ ध्यान कर रहा था, मुझसे कुछ फुट की दूरी पर एक आकृति प्रकट हुई, जो आंशिक रूप से दूसरी दिशा में घूमी हुई थी।

पिछले दो दशकों में मैंने विभिन्न देवियों, योगिनियों, यक्षिणियों तथा अप्सराओं की तांत्रिक साधनाएं की थीं, जो सभी देवी की निम्नतर शक्तियां हैं। कभी-कभी मैंने आकाशीय आकृतियां देखी थीं, पर ये अनुभव इतने कम समय तक टिके कि उनका कोई अर्थ मेरी समझ में नहीं आया। कुछ अन्य अवसरों पर मुझे स्वप्न में ये आकृतियां दिखी थीं। इस बार, चूंकि मैं पूरी तरह जगा हुआ था, मैंने सोचा कि पिछले अवसरों की तरह, मैं एक आकाशीय आकृति देख रहा हूं और यह जल्दी ही विलीन हो जाएगी। दोनों ही तरह से, मैंने इसे एक भटकाव माना, जो मेरा ध्यान भंग करने प्रकट हुआ था।

पहले से भी अधिक दृढ़ संकल्प तथा मजबूत संतुलन के साथ मैं अपना ध्यान करता रहा। वह आकृति विलीन नहीं हुई, और अपना मुंह दीवार की ओर कर बनी रही। अचानक इसने अपने हाथ एक लय में हिलाने शुरू किए-अभी एक हाथ हिला, और अब दूसरा हाथ हिला, अभी दाएं हाथ में गति हुई, और फिर बाएं में हुई। उन हाथों की सम्मोहक गतियों से

अपनी चेतना न भटकने देना चाहते हुए, मैंने मंत्र पर केंद्रित रहना जारी रखा।

वह आकृति फर्श पर बैठ गई। मैं अब भी उनकी ओर भलीभांति न देख रहा था। मैं गहरी ध्यान में डूबा इस सत्ता की पूर्ण उपेक्षा करने पर दृढ़ था। 'आयो जी, आयो जी, सर्वानंद बाबा, आयो जी,' एक अत्यंत सुमधुर नारी कंठ ने मुझे पुकारा।

इस तथ्य के बावजूद कि उन्होंने मुझे बाबा के द्वारा दिए नाम से पुकारा था, मैंने उन पर गौर नहीं किया और अपने ध्यान में लगा रहा। कुछ पल बाद, उन्होंने अपनी पुकार दोहराई। यह सोचकर कि यह नित्या होगी, जो दिव्य माता की संगिनी शक्तियों में एक है, मैंने उन पर फिर गौर नहीं किया और ध्यान में लगा रहा। तीसरी बार मेरा नाम पुकारने के बाद आकृति मेरी ओर घूमी और उन्होंने सीधा मेरी ओर देखा। अब उसकी मैं और अधिक उपेक्षा नहीं कर सकता था। आखिरकार, वे मेरा नाम जानती थी, जिसे मैंने शायद ही कभी किसी को बताया था। इसके अलावा, वे वहां दृढ़ता से टिकी थी। यदि यह एक अवांछित सत्ता होतीं अथवा केवल मुझे आशीर्वाद देने आई होती, तो अब तक अंतर्धान हो चुकी होती। इसके बजाए, वे फर्श पर पालथी लगाकर उस तरह बैठी थी, जिस तरह एक मां अपने शिशु के समीप बैठती है।

मैंने कुछ ऐसा किया, जो पहले कभी नहीं किया थाः मैं अपने ध्यान के दौरान ही उठ खड़ा हुआ। अभी भयानक ठंड थी और मैंने ऊनी मोजे पहन रखे थे। मैंने तेजी से अपने मोजे उतारे, ताकि मैं उस छवि के प्रति नंगे पांव अपनी श्रद्धा निवेदित कर सकूं। वहां इतनी जगह नहीं थी कि मैं पूरा दण्डवत प्रणाम कर सकूं। श्रीयंत्र के आगे जाकर मैं ठंडे पड़े अग्निकुंड के ऊपर से होते हुए आड़ा लेटकर उन्हें अपनी श्रद्धा निवेदित की। 'मैं सर्वानंद हूं,' मैंने कहा और ऊपर देखा।

जैसे मोम ताप को नहीं सह सकता, जिस तरह प्रकाश के आते ही अंधकार विलीन हो जाता है, उसी तरह, मैंने स्वयं को खो दिया। मैं, जो एक छोटी बूंद की तरह था, समुद्र के विषय में क्या जान सकता था? कैसे यह कल्पना कर सकता था कि मैं सृष्टि को जन्म देनेवाली माता की दैदीप्यमान आंखों में देख सकूंगा? मुझे देखते हुए, मेरे सामने वही थीं, जिनकी मैंने अपने जीवनभर प्रतीक्षा की थी। वे आ गई थी।

मैंने उनके गौर मुखमंडल की ओर देखा, उनकी आंखों का तेज, उसकी छोटी नाक और भरे होंठ, केश जो ऊपर से गिरकर नीचे जमीन तक एक काली नदी की तरह प्रवाहित हो रहे थे। उनका तेज असहनीय था जिसे मैं सहन नहीं कर पा रहा था। मैं अब बेसुध हो गिरने ही वाला था कि उन्होंने मुझे तेजी से, किंतु कोमलता से उठा लिया और मुझे अपने सिर के ऊपर ले गईं, जैसे मैं केवल एक खिलौना होऊं। मैंने अपने हाथ उनकी गरदन की चारों ओर डाल दिए और जब उसकी ओर देखा, तो उनकी चमकती आंखों ने मानों मेरे अस्तित्व के उस प्रत्येक अणु-अणु को नष्ट कर डाला, जिसे मैं जानता था। मैंने उनकी केशराशि में अपना चेहरा छिपा लिया और एक दूसरी ही दुनिया में प्रवेश कर गयाः यह एक अनंत खाई थी, जो उतनी ही अंधकारमय थी, जितनी उनकी आंखें चमकदार थीं। ब्रह्मांड के अकल्पनीय अंतरिक्ष से होते हुए ले जाकर, उन्होंने मुझे द्वैत की प्रकृति दिखाई कि किस तरह अंधकार

और प्रकाश, आनंद और दुख अविच्छेद्य हैं। अपने हाथों के एक कोमल झटके से उन्होंने मुझे अपना सिर पीछे झुकाने को प्रेरित किया और अब वे ऊपर मुझे देख रही थीं। अनगिनत भावनाओं ने मुझे सचेतनता की अकथनीय स्थिति में पहुंचा दिया। मैंने एक बार फिर उनके बालों में अपना सिर छिपा लिया।

वे मेरे निमंत्रण और मेरे निरंतर तथा दृढ़ पुकार पर पहुंची थीं, और जब वे वास्तव में आ चुकी थीं, तो मेरे पास उन्हें देने के लिए क्या था? कुछ भी तो नहीं। वे, इस ब्रह्मांड की अधिष्ठात्री एक निर्जन भूमि में एक झोपड़ी के गंदे और ऊबड़-खाबड़ फर्श पर बैठी थी। उनके जैसी ऐश्वर्यशालिनी को अपने स्वर्गिक सिंहासन पर होना चाहिए था। मैं नहीं जानता था कि कैसे उनका स्वागत करूं और सोचता रहा कि कैसे एक भिखारी एक महारानी का स्वागत कर सकता है। मेरे पास उन्हें देने को जो भी था, वह सब अशुद्ध था। मेरा हृदय, मेरा शरीर, मेरा मन सभी अशुद्ध थे। मेरे पास कोई नैवेद्य न था। मेरे पास फूल भी नहीं थे, पर मैं उन्हें कुछ देना चाहता था।

उनके नाम से बढ़कर पवित्र और क्या हो सकता था, मैंने सोचा। मेरे हृदय की अटल गहराइयों से जगन्माता की एक स्तुति झरने सी फूट पड़ी। मैंने अपने चेहरे को बस जरा सा उठाया और जितनी जोर से उसे गा सकता था, गाने लगा। उन्होंने मुझे एक बार फिर कोमलता से आगे-पीछे झुमाया और मुझे अपनी अत्यंत जीवंत मुस्कराहट दी, जो करुणा, प्रेम तथा दया से भरी थी। फिर उन्होंने मुझे नीचे रख दिया और अंतर्धान हो गईं। मैं जो कभी चाहता था, मैं जो भी जानता था, उन्होंने उन सबको साकार कर दिया था।

मेरी घड़ी में सुबह के 5-08 बजे थे। मैंने जोर से प्रार्थना की, मैं हृदय से रोया, यहां तक कि मैं हंसा भी। कुछ देर तक बारी-बारी से मैं प्रार्थना, रोना तथा हंसना करता रहा। क्रमशः मैंने यह समझा कि मैं कहां था और अभी क्या कुछ घटित हुआ था। नास्तिकों तथा शेष संसार द्वारा मेरे अनुभव को मतिभ्रम अथवा भावनात्मक अकेलेपन से पैदा मानकर खारिज कर दिया जा सकता है। और यह बिलकुल ठीक भी है, क्योंकि यदि किसी और ने मुझे पहले ऐसी कोई चीज बताई होती, तो मैंने भी इस पर विश्वास न किया होता। मेरे अनुभव के चित्रण योग्य स्पष्ट कल्पनाशक्ति तो हो सकती है, पर निश्चित रूप से उसका वर्णन करने के लिए शब्द नहीं मिल सकते।

निस्संदेह, जो कुछ मैंने अनुभूत किया था, वह एक पर्वत, इस झोपड़ी, मैं जिस फर्श पर बैठा हूं और मेरी सांसों जैसा ही वास्तविक था। वे शब्द, वे स्पर्श, वे खेल सभी वास्तविक थे, पर मेरे पास कोई प्रमाण न था। केवल वैसा कोई, जो मेरे अस्तित्व की अवस्था में प्रवेश कर सकता था, मेरी वास्तविकता देख सकता था। उस एक दर्शन में मैंने उस अनादि सत्य, उस सिरजनहारी शक्ति को देख लिया था।

मैं जिसे देखने यहां आया था, उसे पा चुका था, पर अभी ही उसे छोड़ देने को तैयार न था। मैं वहां एक निश्चित अवधि तक रुकने का अपना वचन पूरा करते हुए मां त्रिपुर सुंदरी के मंत्र

तथा उन अन्य दिव्य शक्तियों का सम्मान करना चाहता था, जो मेरे द्वारा की जा रही तांत्रिक साधना के आराध्य थे। महत्वपूर्ण रूप से, मुझे उस आनंद के साथ रहना भी सीखना था, जिसमें मैं प्रवेश कर चुका था अथवा जिसे अपने अंतर में पा चुका था। मैं प्राणीमात्र के कल्याण हेतु प्रार्थना करना तथा उस सिद्ध परंपरा के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना चाहता था, जिसका मैं एक हिस्सा था।

अब मैं एक असाधारण आनंद का अनुभव करने लगा, जो सतत बना हुआ था। किंतु, साथ ही, मैं हमेशा बेसुध जैसा महसूस किया करता। कभी-कभी लगता जैसे कोई मेरे मस्तिष्क के एक बिंदु पर कुछ खींचता सा रहता है; कुछ दूसरे समय, मुझे लगता मेरी ललाट पर मालिश की जा रही है। चलना, खाना, प्रदीप से बातें करना और उसकी कहानियां सुनना कठिन हो गया। मुझे यह सीखना था कि मैं स्वयं से प्रवाहित होती शक्तिशाली ऊर्जा को कैसे आत्मसात करूं। इसलिए, मैंने सौ दिनों के लिए पूर्ण एकांत में जाने का निर्णय किया। मुझे इस दर्शन को स्वयं में समाहित करने के लिए इस एकांत की अत्यंत आवश्यकता थी।

मैंने प्रदीप को अपनी इस योजना की सूचना दी और उनके सावधानीपूर्ण प्रबंधन के बल पर ही यह संभव हो सका। मैंने अपनी दिनचर्या बदल ली और 7 बजे संध्या से लेकर 4 बजे प्रातः तक ध्यान करने लगा। यदि महीने में एक अथवा दो बार ग्रामीण चारा लेने इस तरफ आते भी, तो प्रदीप उन्हें एकदम से चुप रहने को कहते। वे एक दूरी से जाते और बिलकुल ही शांत रहते। इस अवधि में मैं न तो किसी से मिला और ना ही किसी को देखा। प्रदीप 1 बजे प्रातः उठ जाते, स्नान करते, अपनी प्रार्थना करते और 4 बजे प्रातः से पहले मेरा आहार तैयार कर देते। वे मेरी झोपड़ी के पास के एक छोटे मंदिर तक आते, एक घंटी बजा देते और मंदिर के पीछे छिप जाया करते, ताकि हम दोनों एक दूसरे को न देख सकें।

उसके बाद मैं बाहर निकलता और उसकी झोपड़ी तक जाकर वहां अपना आहार लेता। इसमें मुझे लगभग एक घंटे का समय लगता, क्योंकि यह मेरे लिए साधना की एक क्रिया से जरा भी कम न था। यह प्रकृति मां के लिए; उन किसानों के लिए, जिन्होंने उसे पैदा किया तथा प्रदीप के लिए जिन्होंने उसे तैयार किया, मेरी कृतज्ञता व्यक्त करने का एक अवसर हुआ करता। उदर की पाचक अग्नि को वैश्वानर कहते हैं। मैं अपने एक-एक ग्रास को इस अग्नि को उस तरह समर्पित करता, जिस तरह एक यज्ञ में अग्नि को आहुति दी जाती है। अभी भी मैं इसी भाव से भोजन करता हूँ।

जब मैं उधर जाता, तो प्रदीप मेरे लिए मौन प्रतीक्षा करते अथवा मेरी झोपड़ी में पानी की मेरी बाल्टी भर देते। यदि पिछली रात को आंधी ने मेरी झोपड़ी के तिरपाल को अस्तव्यस्त कर दिया हो, तो वे उसे भी ठीक किया करते। यदि मुझे उनसे कुछ कहना होता, तो मैं एक नोट लिखकर उनकी झोपड़ी में छोड़ देता और फिर उससे निकल आता।

मार्च के अंत में, मुझे अपने गुर्दे के समीप तेज दर्द उठा। मुझे अचरज हुआ, क्योंकि मैंने अपना आसन सिद्ध कर चुका था और मुझे और अधिक दर्द की उम्मीद न थी। मैं घुटने के भीषण दर्द, पीठ के भयानक दर्द, शरीर की थकावट और बांहों तथा कंधों के दर्द से गुजर चुका था। अब यह नया दर्द क्या है? मेरे बिस्तर का बीच का तख्ता पूरी तरह धंसकर इसे

बैठने के लिए ऊंचा-नीचा तथा अनुपयुक्त बना चुका था। संभवतः, इसपर मेरे आसन से यह दर्द उभरा हो। मैंने उस तख्ते पर अपना तकिया रखा, किंतु उससे बात नहीं बनी। मैंने अपने सोने के समय से एक घंटा निकालकर अपने शरीर को तानने के लिए कुछ योगासन किए, पर उनसे कुछ थोड़ा ही लाभ हुआ। अब मेरे लिए लगातार घंटों बैठा रहना असंभव सा हो गया, परन्तु इतनी आसानी से मैं अपने 150 दिनों के साधना को ऐसा खंडित नहीं होने दूंगा, इस संकल्प के साथ मैं दर्द के बावजूद भी दिन-रात ध्यान में बैठा रहा।

मैंने दर्द के विषय में सोचते हुए पाया कि मैंने पिछले ढाई माह से सूर्य को नहीं देखा था। मैं सुबह का अपना आहार तब ले रहा था, जब अंधकार ही रहा करता। दिन के दौरान मैं कभी-कभी झोपड़ी से बाहर जरूर निकलता, पर मैं सूर्य के प्रकाश में पिछले दस सप्ताहों से नहीं निकल पाया था। मैं एक अत्यंत ठंडी झोपड़ी में रह रहा था और स्वयं को गरम करने के लिए आग का उपयोग भी नहीं कर रहा था। अगले दिन, योग के बदले, मैंने चटाई निकाली और सूर्य की ओर पीठकर बैठ गया। उस रात वह दर्द काफी हद तक कम हो गया। कुछ और दिनों तक मैंने यह प्रक्रिया दोहराई और वह दर्द गायब हो गया। मैंने कभी नहीं जाना कि वह किस चीज से हुआ था, पर धूप में बैठने से वह ठीक हो गया।

एकांत की मिठास का आनंद उठाते हुए और एक शांत मन के सागर में गहरी डुबकियां लगाते हुए मैंने अपने दिन गहरे ध्यान तथा आईने की तरह साफ जागरूकता में व्यतीत किए। मैं अपने आसपास की सभी चीजों के प्रति अत्यंत सचेतन थाः हड्डों की आवाज, दीवार पर रेंगता मकड़ा, बारिश की गिरती हर एक बूंद। मेरे मन में उठता कोई भी विचार मेरे देखे बगैर न गुजरता। यह सच्ची सचेतनता का एक असाधारण स्तर था।

मेरी अंतर्दृष्टि से संबद्ध मेरे गुणों ने भी एक नए आयाम में प्रवेश किया। मैं चाहे जिस किसी प्रश्न के विषय में सोचूं, एक आंतरिक स्वर उसका उत्तर दे दिया करता। एक दिन उसी आंतरिक आवाज ने मुझे कामाख्या मंदिर जाने का निर्देश दिया। उसने बताया कि मैं वहां सर्वोच्च तांत्रिक दीक्षा ग्रहण करनेवाला हूं। मुझे भैरवी मां का स्मरण हो आया, जिन्होंने बदरीनाथ में इसकी भविष्यवाणी की थी। अपनी साधना संपन्न हो जाने के पश्चात मैंने कामाख्या भ्रमण करने का निर्णय किया। किंतु, अभी तो मैं वर्तमान पल में ही रह रहा था। मैं आनंद के सागर में जा रही एक नौका के समान था, वास्तव में मैं स्वयं आनंद का सागर ही था।

मेरे अंदर का मौन वर्णनातीत था। ठीक जिस तरह आप दूध मथते हैं और वह मक्खन में बदल जाता है, और फिर दोबारा दूध नहीं बन सकता, उसी तरह मेरा मन शांति तथा आनंद की एक ऐसी अवस्था में पहुंच चुका था, जिससे उसे वापस पहले की अवस्था में नहीं पहुंचाया जा सकता था। मुझे लगा कि चाहे जो भी परिस्थिति हो-किसी का जन्म अथवा किसी की मृत्यु, स्वीकार, अस्वीकार, प्रशंसा या आलोचना-उससे अप्रभावित रहने की अनासक्ति और उदासीनता मेरे अंतर से अनायास उत्पन्न हो रही थी।

मैंने अपना नोटपैड खोला और उसमें लिखा, 'आत्मसाक्षात्कार एक तात्कालिक क्रिया नहीं है। हमें एक ऐसे पल का अनुभव हो सकता है, जब अचानक कुछ अनुभूति होती अथवा

अंतर्दृष्टि मिलती महसूस हो, पर यह एक-एक कर गुजरते प्रत्येक पल के प्रति हमारी जागरूकता है, जो हमें अपने मौखिक, मानसिक और शारीरिक क्रियाओं के प्रति अत्यंत सचेत रहते हुए इस संसार सागर में चलने की योग्यता प्रदान करती है। हम शरीर नहीं हैं, यह समझ लेना एक बात है, पर किसी के द्वारा चोट पहुंचाने पर भी कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न करना एक बिलकुल भिन्न बात है। हम यह समझ सकते हैं कि क्रोध हमारे मन की शांति नष्ट कर देता है, किंतु उत्प्रेरक चाहे कितना भी बड़ा क्यों न हो, उसमें शांत बने रहना-यह एक वास्तविक साक्षात्कार है।

'बुद्ध को मुक्ति प्राप्त करने में छह वर्ष क्यों लगे? यदि यह तत्काल हो जानेवाली चीज होती, तो वे इसे पहले ही माह में प्राप्त कर लेते। इसमें महावीर को दस वर्ष और रामकृष्ण परमहंस को बारह वर्ष लग गए। अनुभव, शिक्षाओं और अंतर्दृष्टियां एकत्र होते-होते अंततः किसी को अंतिम साक्षात्कार के बिंदु तक लाती हैं। जल 100° सेल्सियस पर उबलता है, पर उस तापमान तक पहुंचने में इसे थोड़ा समय लगता है। वह लौ जो जल को गरम करती है, उसमें सूर्य जैसी ही शक्ति से जलने की क्षमता मौजूद है, पर यह जल है, जिसे उबाल बिंदु तक लाने की आवश्यकता होती है। आत्मा अथवा चेतना हमेशा से विशुद्ध होती है, पर यह चेतन मन है, जिसे उबाल बिंदु तक लाने की जरूरत होती है, जबकि अवचेतन के लिए यह आवश्यकता होती है कि वह अंतर्दृष्टियों तथा शिक्षाओं को आत्मसात करे।

'जब ईसा मसीह को सूली पर लटकाया गया, तो उन्होंने प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं की। उन्होंने बस माफ कर दिया। जब गांधी पर गोली चलाई गई, तो उन्होंने यह नहीं कहा, 'अरे यह क्या, मुझे तो गोली लग गई! ऐसा किसने किया?' उन्होंने कहा, 'हे राम!' उन्होंने अपने ईश्वर को याद किया। चेतन मन किसी अनुभूति की कोई अचानक चमक का प्रसंस्करण करते हुए उसे आत्मसात करता है, पर सच्ची मुक्ति तो अवचेतन मन की गहराइयों में प्रकट होती हैः हमारे अस्तित्व का यही हिस्सा है, जिसे साक्षात्कार हासिल करने के लिए प्रशिक्षित करने की आवश्यकता है। प्रबुद्धता हमें यह सिखाती है कि इस संसार में किस तरह गरिमा, स्वतंत्रता तथा आनंद के साथ रहा जाए।'

मैं और अधिक लिखना चाहता था, पर मैंने बेसुधी महसूस की और शब्द मेरे आगे तिरते से प्रतीत होने लगे। मैंने अपना शरीर त्यागकर परम चेतना में लीन हो जाने पर भी विचार किया, क्योंकि मुझे संसार से प्राप्त करने को अब कुछ भी शेष न बचा था। जीवन ने मुझे हर वो चीज़ दी जिसकी मैंने इच्छा व्यक्त की। मैं जो कुछ भी बनना चाहता था, बना। मेरे व्यक्तिगत अस्तित्व का बीज साक्षात्कार की नरम भूमि में नष्ट हो चुका था। मेरी यात्रा पूरी हो चुकी थी।

मेरे पास अपना शरीर छोड़ देने का विकल्प मौजूद था, पर मैंने सोचा कि ऐसा करना स्वार्थपरता होगी। मैंने जो कुछ सीखा था, मेरा कर्तव्य था कि उसे दूसरों तक पहुंचाऊं। मैं लोगों को निर्देश देना नहीं, बल्कि उनका मार्गदर्शन करना और उनके साथ चलना चाहता था, क्योंकि मैं दृढ़ता से यह मानता था कि हमें स्वयं का नेतृत्व करना चाहिए, न कि हमें दूसरों के नेतृत्व में चलना चाहिए। सच तो यह है कि आंतरिक रूप से भी, हममें से अधिकांश लोग

अपने विचारों तथा अनुभूतियों से नियंत्रित होते हैं, जबकि इसका ठीक विपरीत होना चाहिए। प्रबुद्धता इस प्रक्रिया को उलट देती है, हम अपने विचारों तथा भावनाओं को नियंत्रित करने लगते हैं।

यही समय था कि संन्यासधर्म को फिर से परिभाषित किया जाए। एक संन्यासी को समाज पर भार क्यों होना चाहिए? उसे अपने जीवन की जिम्मेदारी स्वयं लेनी चाहिए और अपनी आवश्यकताओं के लिए दूसरों पर निर्भर नहीं होना चाहिए। मैं एक संन्यासी होना चाहता था, भिक्षुक नहीं। मैंने अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए कभी दान न लेने की शपथ ली। मैं एक संगठन बनाकर प्रत्येक स्थान आश्रम नहीं बनवाना चाहता था। मुझे अपने उद्देश्य से जुड़े रहना था, ताकि मैं दूसरे जिज्ञासुओं को भी उसी निर्वाण में आनंद मनाने के योग्य बना सकूं, जिसमें मैंने मनाया।

मैं 3 जून को हिमालय से नीचे आने जा रहा था और प्रदीप ने ग्रामीणों को यह सूचित कर दिया था कि मैं गांव में एक-दो दिनों तक रुकूंगा। मेरी साधना संपन्न हो जाने पर उन्होंने तीर्थाटन हेतु जगन्नाथ मंदिर जाने का निर्णय किया था। मैं उनसे फिर इस वर्ष के अंत में मिलनेवाला था।

4 जून को बहुत से ग्रामीण मुझसे मिलने आए। वहीं जंगल में मैंने एक कुमारी पूजन की लघु क्रिया संपन्न की, जिसमें सोलह वर्षों से कम की बालिकाएं माता के रूप में पूजी जाती हैं और उन्हें उपहार दिए जाते हैं। उस क्रिया के बाद सबको भोजन कराया गया। केवल दो बैंगन तथा एक गोभी से बनी सब्जी के साथ भोजन को चालीस लोगों ने जी भर के खाया, और कुछ लोगों ने उसे दो बार ऊपर से भी लिया। मैं यह नहीं कह रहा हूं कि यह एक चमत्कार था, मैं तो परमात्मा के रहस्यों पर विस्मय प्रकट कर रहा हूं। क्या सब्जी कई गुना बढ़ गई? खैर, यह महत्वपूर्ण नहीं है, महत्व इस चीज का है कि हर व्यक्ति भली-भांति भोजन कर घर गया।

उस वन को छोड़ते हुए, मैंने एक पल के लिए उदासी महसूस की। मैं उदासी इसलिए कह रहा हूं कि यह जगह न केवल शांत तथा प्यारी थी, बल्कि यहीं पर दिव्यमाता मेरे निकट आईं। यह जगह उनका ही एक प्रतिबिंब थी। परंतु कौन सी वस्तु उनका प्रतिबिंब न थी? इसके अतिरिक्त, वहां रहना चाहे जितना प्रिय हो, आखिर तो मुझे आगे जाना ही था। संसार को त्यागकर, पहाड़ों से मोहग्रस्त होना निरर्थक था। मोह, चाहे किसी भी वस्तु से हो, बंधन तथा क्लेश का कारण है।

वृक्षों तथा मुझमें कुछ समानताएं थीं। दोनों ही अनासक्त तथा निर्लिप्त थे। वे जमीन में बद्धमूल थे और मैं अपनी भक्ति में। वे अपनी स्थिति परिवर्तित नहीं करते थे; उन्होंने मुझे वापिस लौटने को ललचाने का प्रयास नहीं किया। मैंने भी अपना दृष्टिकोण नहीं बदला, क्योंकि करुणा के पात्र की बजाय मैं करुणा की भावना से प्रेम करना श्रेयस्कर समझता हूं। आखिर परिजनों से बिछुड़ना तो निश्चित ही है। प्रकृति तथा मैं दोनों ही इसे समझते थे। मैंने वन को धन्यवाद दिया और जगन्माता के विचारों में डूबा आनंद भरे हृदय से वहां से चल पड़ा।

अध्याय पंद्रह
लक्ष्य से भी आगे

मेरे सिर की शक्तिशाली संवेदना ने मुझे प्रभावित करना जारी रखा और मेरे लिए अब भी प्रतिदिन के कार्य करना कठिन था। अपने अस्तित्व की इस परिवर्तित अवस्था में कैसे काम करूं, यह सीखने को मैं एकांत का और अधिक समय चाहता था।

अनसूया मंदिर में मेरे दो दिनों के पड़ाव के दौरान मैं एक साधु से मिला, जिन्होंने मुझे अपनी गुफा में आकर मिलने को कहा। हालांकि वैसा करने की मेरी कोई इच्छा न थी, फिर भी मैंने इसे स्वीकार कर लिया। अगले दिन बबलू मेरे साथ उनकी गुफा में गए और अपने फोन से मेरे चित्र लिए। और इस तरह, मैंने सात महीनों बाद स्वयं पर पूरी नजर डाली। मैंने माथे पर तिलक लगाने हेतु वन में एक छोटे आईने का उपयोग किया था, किंतु यह इतना छोटा था कि इसने कभी मेरा पूरा चेहरा न दिखाया। मेरी दाढ़ी बढ़ गई थी और मुझे अपना सिर फिर से मुंड़ाने की आवश्यकता थी। किंतु अपने गाल पिचक जाने तथा त्वचा पीली पड़ जाने की आशा करते हुए भी चित्र में मैंने स्वयं को वस्तुतः जितना स्वस्थ पाया, उसकी उम्मीद कदापि न थी। मुझसे एक अपरिचित आभा निकल रही थी और मेरी आंखों में एक विचित्र सी चमक थी। क्या यह वस्तुतः मैं ही था?

मंदिर तक वापस लौटते हुए, मैं चलने में कठिनाई महसूस कर रहा था, क्योंकि मेरे सिर में अत्यंत शक्तिशाली संवेदना हो रही थी। मैंने बेसुध सा महसूस किया और नीचे की ओर देखा। अचानक मेरी दृष्टि से जमीन गायब हो गई और मेरे सामने वहां जो कुछ भी था, उसे ग्रहण करने के लिए मेरी आंतरिक दृष्टि खुल गई-मेरे पैरों के नीचे की जमीन, रास्ते में बिखरे पत्ते, वृक्ष, मेरी बगल में चलता व्यक्ति, एक काला सर्प जो अभी-अभी बगल से होता हुआ चट्टानों के पीछे जा छिपा, आकाश... सभी चीजें जैसे मुझसे एकाकार हो गईं अथवा मैं ही प्रत्येक चीज से एकाकार हो गया था?

मैं अब एक भी कदम नहीं चल सकता था और मार्ग के बीच ही बैठ गया। मैंने बबलू से कहा कि मैं एक गहरी भावावस्था में जा रहा हूं। ये सारी चीजें इसलिए हो रही थीं कि मैंने

गहरी शांति की अपनी उस अवस्था को आत्मसात करना नहीं सीखा था, जिसमें मैं पहुंच चुका था, फिर भी मैंने अपनी नित्य की गतिविधियां जारी रखी थीं। बबलू ने मुझसे पूछा कि यह स्थिति कितनी देर रहेगी, तो मैंने कहा कि मुझे नहीं मालूम। उन्होंने वहां प्रतीक्षा करने की भलमनसाहत दिखाई। कुछ देर पश्चात, मैं कुछ अधिक केंद्रित हुआ और हम धीरे-धीरे वापस मंदिर तक पहुंचे। अगले दिन मैंने अपना सिर मुंड़ाया और हरिद्वार के लिए प्रस्थान कर गया।

वहां स्वामी विद्यानंद के साथ कुछ दिन व्यतीतकर 19 जून को मैं कामाख्या चला गया। कुछ ही दिनों बाद वहां एक बड़ा उत्सव आरंभ होनेवाला था और इसलिए, वहां की भीड़ बढ़ रही थी। मैंने कभी भीड़ की चिंता न की थी। मैंने मंदिर में प्रवेश किया और किसी के पास जाने के बजाए मंदिर परिसर में पांच मिनट प्रतीक्षा करने का निर्णय किया। मैंने सोचा कि मुझे पहाड़ों में जो निर्देश मिला था, यदि वह मेरा मतिभ्रम नहीं, बल्कि एक सच्चाई थी, तो किसी न किसी को मुझसे स्वयं ही संपर्क करना चाहिए।

वन में रहते समय मुझे जगन्माता से प्रस्ताव करने हेतु एक परिक्रिया प्राप्त हुई थी, मैंने मां से कहा कि अब मैं घड़ी देखकर केवल 300 सेकेंड तक प्रतीक्षा करूंगा। यदि इस बीच कोई मेरे पास नहीं आया, तो मैं आगे बढ़ जाऊंगा। मैंने मंदिर की प्रदक्षिणा की, फिर वापस परिसर में आया, अपने पाउच से घड़ी निकाली और 5 मिनटों की अपनी प्रतीक्षा आरंभ की।

दो मिनटों से भी कम समय में सफेद कुरता-पाजामा पहने एक व्यक्ति ने मेरी ओर देख हाथ हिलाया। उसकी यह क्रिया मेरी सभी शर्तें पूरी कर रही थीः मैंने इस संवाद की शुरुआत नहीं की थी, यह पांच मिनटों की सीमा रेखा के अंदर थी और वह व्यक्ति मुझसे बातें करने को उत्सुक दिख रहा था। मैं चलकर उसके निकट पहुंचा। वे एक ब्राह्मण होते हुए भी काली पोशाकवाले एक तांत्रिक के समीप बैठे थे, जो एक अघोरी था। अघोर वामचार तंत्र का एक पंथ है।

किंतु, यह अघोरी वहां के अधिकांश अघोरियों की ही तरह साधना में कम और दिखावे में अधिक यकीन करने वाले थे। ठीक जिस तरह एक अच्छा कारीगर अपने औजारों का प्रदर्शन नहीं किया करता, उसी तरह एक अच्छा अघोरी भी अपने साधनों को प्रदर्शित नहीं करता। किंतु इस व्यक्ति ने एक वृत्ताकार अग्निकुंड बनाकर उसकी चारों ओर अनेक साधन रख छोड़े थे, जैसे एक मानव खोपड़ी, हड्डियां, धातु का एक कटोरा, सिंदूर तथा हल्दी की एक-एक डिबिया, जिसमें धूसर तथा काले रंग की राख शामिल थी। यह सारा प्रबंध केवल लोगों को आकृष्ट करने तथा उन्हें मूर्ख बनाने के लिए ही था। आखिर, एक अघोरी को अपनी कोई भी क्रिया दिन के उजाले में तो करनी नहीं थी, क्योंकि सभी अघोर क्रियाएं केवल रात में ही की जाती हैं और एक सच्चा साधक हमेशा ही इस नियम का पालन करता है।

किंतु उनका खप्पर, जो भिक्षा के कटोरे का काम करता है, मुझे अपनी ओर खींचता सा लगा। यह एक कपाल यानी मानव खोपड़ी से बना था। उन्होंने मुझे उसे देखने दिया और वह खप्पर वास्तव में अत्यंत ऊर्जान्वित प्रतीत हुआ। जिस तरह, चमगादड़ों में मनुष्य द्वारा सुन पाने की ध्वनि-आवृत्ति से काफी ऊपर की आवृत्तिवाली ध्वनियां भी सुन लेने की क्षमता होती है, जिसका उपयोग वह चारों ओर घूमने, शिकार करने तथा स्वयं की रक्षा के लिए करता है,

उसी तरह एक साधक उस ऊर्जा को महसूस करने की शक्ति विकसित कर लेता है, जिसे एक औसत व्यक्ति महसूस नहीं कर सकता। एक श्रेष्ठ साधक तब इस ऊर्जा का उपयोग दूसरों की सहायता के लिए करता है।

जब मैंने उस कपाल को अपने हाथ में लिया, तो ऊर्जा का एक प्रवाह महसूस किया और समझ गया कि यह किसी सामान्य व्यक्ति का नहीं, किसी अघोरी का कपाल है। मैंने उससे कहा कि, यह तो एक अद्भुत कपाल है। प्रत्युत्तर में गर्व से मुस्कुराते हुए उन्होंने अपना सिर हिलाया और बताया कि उनके एक धर्मभाई की सांप काटने से मृत्यु हो जाने पर उसने उन दोनों के गुरु की अनुमति से उनका सिर लिया, उसकी खाल उतारी और चालीस दिनों की एक विहित क्रिया से उसे तैयार कर उसमें अपने गुरु को शराब पिलाने के पश्चात उसे अपना खप्पर बनाया।

इस बीच, उस ब्राह्मण ने, जिनकी वजह से मैं उन दोनों के पास बैठ गया था, मुझसे यह पूछा कि मैं कामाख्या में क्या कर रहा था। उनके प्रश्न का कोई उत्तर देने के बजाए मैंने उन्हें बताना शुरू कर दिया की वे वहां किस वजह से हैं और पिछले कुछ वर्षों में क्या करते रहे हैं। फिर मैंने उन्हें बताया कि क्यों उनकी साधना सफल नहीं हो पा रही है। वो हतप्रभ रह गए और रोने लगे। उसके बाद, बगैर एक भी शब्द बोले अथवा मैंने उन्हें जो कहा उसे स्वीकार किए वे उठे और वहां से चल दिए।

मैंने एक बार फिर अघोरी से अपनी बातें शुरू कीं। लगभग 15 मिनट बीत गए और मुझे लगा कि मैं अपना समय व्यर्थ कर रहा हूं। अब मैं वहां से चलने ही वाला था कि वह ब्राह्मण फिर वापिस आ गए। उन्होंने एक बार फिर, किंतु बड़े आदर के साथ, मुझसे पूछा 'आप यहां क्या कर रहे हैं? क्या आप आगामी उत्सव के सिलसिले में आए हैं?' मैंने उससे केवल इतना ही कहा कि मैं यहां एक माह के लिए साधना करने आया हूं और उनसे पूछा कि क्या इस हेतु वे मुझे वहां किसी एकांत स्थल का पता बता सकते हैं?

अचानक ब्राह्मण ने जोर से पुकारा, 'ऐ साधु!' और एक दूसरे साधु की ओर अपना हाथ हिलाया। वे साधु भी सफेद वेश में थे और वहां आकर बैठ गए। वे दोनों बातचीत करने लगे। कुछ मिनटों बाद, मैंने उनसे कहा कि अब मैं चल रहा हूं। साधु ने कहा 'मैं आपको भोजन कराना चाहता हूं।' मुझे इसकी इच्छा न थी, पर वह मुझे जाने देने को तैयार न हुए। मैं राजी हो गया और हम तीनों उस अघोरी को वहीं छोड़ उनके स्थान की ओर चले, क्योंकि अघोरी अपना अग्निकुंड बगैर देखरेख के यूं ही छोड़ कर नहीं जा सकते थे।

फिर पता चला कि साधु एक मंत्र पुरश्चरण करना चाहता था, जो मंत्रपूजा तथा आवाहन की एक क्रिया है, जिसे कुछ निश्चित दिनों तक किया जाता है। उदाहरणार्थ, गायत्री मंत्र का पुरश्चरण करने हेतु एक साधक यह संकल्प कर सकता है कि वह चालीस दिनों में उसके 1.2 लाख जप पूरे करेगा। और तब, उसे एक ही समय से शुरूकर इस मंत्र का 3,000 जप नित्य करना होगा। पुरश्चरण के चार अन्य अंग हैं: यज्ञ, अग्नि को आहुति; तर्पण, जल अथवा अन्य तरल मिश्रण समर्पित करना; मार्जन, तर्पण के लिए प्रयुक्त तरल मिश्रण से ही अपनी शुद्धि करना; और ब्राह्मण भोजन, क्रिया संपन्न होने पर ब्राह्मणों अथवा अन्य श्रेष्ठ साधकों को

भोजन कराना।

यह क्रिया प्रारंभ करने के पूर्व, अन्य प्रारंभिक क्रियाएं करने की आवश्यकता होती है, जिसमें दिव्य शक्तियों तथा संरक्षक ऊर्जाओं का आवाहन भी शामिल होता है। साधक के लिए यह आवश्यक है कि वह प्रारंभिक क्रियाओं के मंत्रों के संस्कृत उच्चारण अवश्य कर सके। प्रारंभिक क्रियाओं की शर्त केवल तभी हटाई जा सकती है, जब इस पुरश्चरण को एक तांत्रिक विधि अथवा गुरु के निर्देशानुसार किया जाए।

वह साधु वैदिक पुरश्चरण कर रहा था और इस तरह उसे आवश्यक क्रियाएं करनी ही थीं। उसने ब्राह्मण से अनुरोध किया था कि वह स्थानीय देवी-देवताओं की पूजा की क्रिया आरंभ करे, परंतु उन्हें यह करना नहीं आता था, वे केवल तंत्र की साधना करते थे। साधु ने मेरी ओर आशाभरी दृष्टि से देखा। मैंने संसार से संन्यास लिया था और एक संन्यासी को दूसरों के लिए धार्मिक क्रियाएं नहीं करनी चाहिए। पर चूंकि वे एक सच्चे साधु थे, मैंने उनके लिए ये क्रियाएं करने का निर्णय लिया।

इसपर कृतज्ञता प्रकट करते हुए उन्होंने हमें स्वादिष्ट खिचड़ी खिलाई और मुझसे कामाख्या के तीर्थाटन का कारण पूछा। मैंने उन्हें भी बताया कि मैं एक माह की तांत्रिक साधना हेतु एक उपयुक्त स्थल की खोज में हूं। उन्होंने मुझे सिद्धि गणेश गुफा के विषय में बताया, जहां पंचमुंडी आसान भी था। पंचमुंडी आसन एक तांत्रिक आसन होता है, जिसे तैयार करने हेतु मनुष्य समेत पांच भिन्न-भिन्न जीवों की खोपड़ियां जमीन में दफनाकर शेष बची जगह को एक चिता की राख, हल्दी तथा कुछ अन्य सामग्रियों से भर दिया जाता है। इस पवित्र आसन पर बैठ कुछ गूढ़ मंत्रों से देवी का आवाहन एक महत्वपूर्ण तांत्रिक साधना है।

इस गुफा के विषय में सुनकर मैं तुरंत ही साधु के घर से निकल उनकी बताई दिशा में चल पड़ा। एक खास मंदिर के निकट एक स्थल से 300 सीढ़ियों की एक श्रृंखला उतरकर मैं सिद्धि गणेश गुफा में पहुंच गया, जो ब्रह्मपुत्र नदी के तट पर अवस्थित थी।

दुर्भाग्य से, वहां दो साधु पहले से ही रह रहे थे, जिनमें से एक प्रार्थना में तल्लीन तांत्रिक थे। वे पंचमुंडी आसन पर नहीं, बल्कि उसके सामने बैठे थे। और आसन पर उन्होंने तेल का एक जलता दीपक रख छोड़ा था। जब मैं साधु की प्रार्थना समाप्त होने की प्रतीक्षा करता खड़ा था, तो दूसरे साधु ने मुझे कुछ छोटी-मोटी बातों में उलझाने की कोशिश की। मैंने इस बातचीत में जरा भी दिलचस्पी न ली और वहां से चलना ही चाह रहा था, जब तांत्रिक ने अपनी पूजा संपन्न कर ली और मेरे निकट आए। मैंने उनसे कहा कि आसन पर न बैठ उसके सामने बैठना एक मूर्खताभरी बात है। यह कुछ उसी तरह है, जैसे एक तालाब के किनारे बैठ पानी, पानी, पानी जपते हुए यह सोचना कि मैं इस तरह स्नान कर सकता हूं। मैंने उन्हें अपनी साधना में कुछ छोटे-मोटे सुधार लाने की सलाह दी, ताकि उन्हें उससे अधिक लाभ मिल सके।

उन्होंने इससे बड़ी कृतज्ञता महसूस की और मुझसे पूछा कि मैं किस उद्देश्य से वहां गया था। उनसे भी मैंने बस इतना ही कहा कि मैं ध्यान करने के लिए एक शांत स्थल की तलाश

में हूं। उन्होंने मुझे एक साधु के विषय में बताया, जिसके बारे में उन्हें पता था कि वह एक अत्यंत ही योग्य तांत्रिक है। मैं अनिच्छुक था, पर उन्होंने जोर दिया और मुझे वहां तक साथ ले चलने की इच्छा भी व्यक्त की।

अगले दिन हम तांत्रिक से मिले। वे पचास वर्षों से कुछ ऊपर की अवस्था के एक वामाचारी तांत्रिक थे। जब मैं उनके सामने बैठा था, तो उसी आवाज ने, जिसने हिमालय के वन में मुझे कामाख्या जाने का निर्देश दिया था, इस बार उतने ही स्पष्ट तरीके से यहां आने का अपना उद्देश्य उन्हें बताने को कहा। मुझे यह भी निर्देश मिला कि मैं जो भी तांत्रिक दीक्षाएं लेना चाहता था, उनके विषय में भी उन्हें बताऊं। मैंने वैसा ही किया।

'मुझे ऐसे केवल एक ही सिद्ध साधक की जानकारी है, जो तुम्हें यह दीक्षा दे सकते हैं,' उन्होंने कहा। 'वे बहुत वृद्ध हो चुके हैं और पिछले बीस वर्षों के दौरान उन्होंने किसी को भी यह दीक्षा नहीं दी है। मैं तुम्हें यह वचन नहीं दे सकता कि वे तुम्हें दीक्षा दे ही देंगे, पर तुम एक ऐसे व्यक्ति हो, जिसकी योग्यता का दायित्व मैं उनके समक्ष ले सकता हूं।'

मैं उनके साथ इधर-उधर मुड़ती बहुत सी छोटी तथा संकरी गलियों से होते हुए गंतव्य तक पहुंचा। मुझे एक छोटे से घर में ले जाया गया। वे तांत्रिक, जो एक दुबले-पतले कमजोर से व्यक्ति थे, अपने दरवाजे के सामने एक चटाई पर बैठ मानों मेरी ही प्रतीक्षा कर रहे थे। उनके निकट एक भैरवी बैठी थीं, जो नब्बे वर्षों के आसपास की एक उल्लेखनीय रूप से सुंदर महिला थीं और उनके पास एक ऐसा प्रभामंडल था, जिसकी उपेक्षा करना संभव न था। वे गोरी थीं और उनके चेहरे पर कुछ लकीरों के सिवा एक भी झुर्री न थी, हालांकि उनके बाल पूरी तरह सफेद हो चुके थे। उन्हें हिंदी बहुत कम और अंग्रेजी बिलकुल नहीं आती थी, उनकी मातृभाषा असमी थी। मुझे देख उन्होंने अपने हृदय में माता के सदृश स्नेह महसूस किया।

हमने उस महान तांत्रिक के प्रति अपनी श्रद्धा निवेदित की। वे मेरी ओर देखकर मुस्कुराए। 'मैं तुम्हें दीक्षा दूंगा,' मेरे कुछ भी कहने के पहले ही उन्होंने कहा। वे पहले से ही यह जानते थे कि हम लोग क्यों वहां आए हैं, किंतु मुझे जरा भी विस्मय नहीं हुआ। वन में मेरे द्वारा दर्शन करने के बाद मुझे अब और कुछ भी चकित नहीं कर पा रहा था।

जब तांत्रिक के साथ रहनेवाली उस भैरवी से मेरा परिचय कराया गया, तो उन्होंने मेरे सिर पर अपने हाथ रख मुझे आशीष दिए। वृद्ध साधक ने मेरी पूर्व तांत्रिक दीक्षाओं तथा साधनाओं के विषय में पूछा। दीक्षा के पहले वे मेरा पूरा नाम तथा मुझे संन्यास की दीक्षा देनेवाले गुरु के बारे में जानना चाहते थे। जब मैंने उनके दोनों प्रश्नों के उत्तर दे दिए, तो उन्होंने कहा 'इस उत्सव के समय तुम्हें दीक्षा देना संभव नहीं है, क्योंकि यह अवसर महामाई के रजस्वला होने का है। रजोदर्शन इसका संकेत है कि नारीशक्ति प्रजनन के लिए तैयार हो रही है। चंद्रमा के चक्र से सीधे तौर पर संबद्ध होने के कारण, ये पांच दिन जिज्ञासु साधकों के लिए सर्वाधिक शुभ माने जाते हैं, जिसके दौरान वे अपने आध्यात्मिक विकास तथा मानवता के कल्याण हेतु न केवल अपना, बल्कि अपनी वासनाओं तथा भावनाओं का भावातीत रूपांतरण कर सकते हैं।' तांत्रिक ने मेरी दीक्षा के लिए 29 जून का दिन निश्चित किया।

मैं एक माह व्यतीत करने हेतु कामाख्या की श्मशानभूमि की उपयुक्तता परखने वहां गया और मैंने भैरवी मां के विषय में पता करने की कोशिश की। मैंने वहां रहनेवाले प्रत्येक व्यक्ति से उनका रूपरंग बताते हुए उनके विषय में पूछा, किंतु किसी ने भी उनके बारे में कुछ भी न सुना था। यहां तक कि वैसे लोग भी, जो कामाख्या में ही पैदा हुए, पले-बढ़े थे और पिछले साठ वर्षों से वहां रह रहे थे, उनके विषय में कुछ भी नहीं जानते थे। एक बार फिर, मुझे कोई विस्मय नहीं हुआ।

श्मशानभूमि काफी आधुनिक थी। यहां लोहे के रैक लगे थे, जिन पर शव जलाए जाते थे। जैसे ही शव जल जाता, वे चिता पर पाइप से पानी डाल उसे बुझा देते, ताकि लकड़ियां बचाई जा सकें। यह स्थल महीनेभर की मेरी साधना के लिए अनुपयुक्त जान पड़ा, क्योंकि यहां पारंपरिक चिताएं नहीं थीं, यह मुख्य सड़क के काफी निकट था, इसके निकट ही श्रद्धालुओं से भरा एक शिवमंदिर था और इसके आसपास ही ऐसे साधु भरे पड़े थे, जो सच्चे तांत्रिक होने का दावा करते हुए मादक पदार्थों के व्यसनी और शराबी थे।

ऐसे ही साधुओं की वजह से दुनिया ने तंत्र तथा उसके सारतत्व को गलत ही समझा है। गलती से ऐसा समझ लिया जाता है कि तंत्र का अर्थ तांत्रिक यौनाचार, तांत्रिक मालिश, तांत्रिक योग तथा इसी तरह की अन्य चीजें हैं। तंत्र का इन चीजों से न तो आरंभ होता है और न अंत। तंत्र एक आंतरिक यात्रा है, जिसे एक साधक अपने मन का अनुकूलन भंग करने तथा अपने अनुकूलित तथा अहंकारी स्व से बाहर निकल अपने सच्चे स्वरूप की पहचान करने को किया करता है। मैं इन्हीं विचारों में डूबा था, जब शिवमंदिर की प्रबंध समिति के एक सदस्य मेरे निकट आए।

जब उन्होंने मेरे वहां आने का उद्देश्य जाना, तो इस पर जोर दिया कि मैं अपनी साधना के लिए मंदिर में ही रुकूं। यहां तक कि उन्होंने मेरे लिए आवश्यक प्रबंध भी करने का वचन दिया। मेरे पास अपनी मंत्रसाधना हेतु किसी स्थल की उपयुक्तता परखने का एक सरल तरीका था: जब भी मैं कहीं की यात्रा करता, तो उस स्थल की ऊर्जाओं को महसूस किया करता और हमेशा अपने प्रथम निष्कर्ष पर भरोसा करता। मेरे इस तरीके ने मुझे कभी धोखा नहीं दिया था। मैंने यहां पर सही ऊर्जा महसूस नहीं की, और इसलिए अपनी तलाश अन्यत्र जारी रखने का निर्णय किया। अपनी तांत्रिक दीक्षा में अभी समय था। सो, मैंने इस उम्मीद में पश्चिम बंगाल जाने का निर्णय किया कि शायद मुझे वहां कोई ऐसा मिल सके, जिससे मैं अपने अंदर लगातार हो रही संवेदनाओं के विषय में बातें कर सकूं। मैंने न्यू जलपाइगुड़ी के लिए एक रेलगाड़ी पकड़ी और फिर वहां से एक साझी टैक्सी से दार्जिलिंग निकल गया। वहां मैंने तीन मठों के भ्रमण किए और मुझे कई नई बातें पता चलीं, जैसे सभी लामा अपनी नित्य के काम, प्रार्थना की क्रियाएं और बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन में इतने व्यस्त रहा करते कि उनके पास ध्यान के लिए कोई वक्त नहीं बचता। इस तथ्य के बावजूद कि कोई धर्म विशुद्ध है और इसकी शिक्षाएं तथा इसके दर्शन गहन तथा मौलिक हैं, यदि उसका संस्थाकरण कर दिया जाए, तो वह एक शव में बदल जाता है। तब वह मस्तिष्क से मृत एक मरीज जैसा ही बच जाता है, जिसे केवल जीवनरक्षक उपकरणों की बैसाखियों पर जीवित रखा जा सकता है।

वैसे में बस इस पर संतोष किया जा सकता है कि मरीज अब भी सांसें ले रहा है। मुझे बुद्ध के लिए दुख महसूस हुआ।

एक मठ में मैं एक ऐसे लामा से मिला, जिन्होंने मुझे हिमालय के पहाड़ों में साधना कर रहे एक वरीय लामा के विषय में बताया, जो कठोर ध्यान में लगे थे। उन्होंने इस लामा के विषय में मुझे विस्तार से बताया, जो अभी लगभग सत्तर वर्षों से भी अधिक उम्र के थे। मैं उनसे मिलने को बहुत इच्छुक हो उठा। मैंने उन्हें बताया कि मैं महामुद्रा ध्यान में अनुभवी हूं और इसमें मैंने अनगिनत घंटों की साधना की है।

'उन्हें यह मत बताइएगा, क्योंकि वे बहुत क्रुद्ध हो उठेंगे,' उन्होंने कहा।

'क्रुद्ध?'

'हां, क्योंकि आपने बगैर किसी लामा से दीक्षा लिए इसे किया।'

'क्या आपने क्रुद्ध कहा?'

'हां, क्योंकि वे क्रोध से सचमुच पागल हो जा सकते हैं।'

मैंने उसी वक्त यह तय किया कि मैं उनके वरीय लामा से नहीं मिलूंगा। यदि इतने सारे वर्षों में भी वे अपने क्रोध से ऊपर नहीं उठ सके, तो वे मुझसे क्या साझा कर सकेंगे? पिछले सत्तर वर्षों में उन्होंने क्या किया? उन्होंने किस वस्तु पर ध्यान किया? उन्होंने क्या समझा और किस चीज से मुक्ति पाई? मैं मौन भाव से इन प्रश्नों पर चिंतन करता रहा। मुझे नागा बाबा की याद ताजा हो आई। ध्यान, आराधना, प्रार्थना ये सब तब किसी काम के न होते, जब हम उससे परे जाने में असमर्थ हों, जिसने हमें रोक रखा है।

मैंने गंगटोक जाकर कुछ और मठों के भ्रमण किए, किंतु किसी भी ऐसे व्यक्ति से मेरी मुलाकात नहीं हुई, जो मुझमें रुचि जागृत कर सके। फिर मैं रूमटेक मठ गया, जो यातायात, शोर तथा लोगों से दूर था और वहां एक ऐसे लामा से मिला, जिसने बुद्ध धर्म की शिक्षा देते हुए अपना जीवन गुजार दिया था। मैंने अपनी यात्रा तथा हाल के अनुभवों के विषय में उन्हें संक्षेप में जानकारी दी। उन्होंने मेरी नाड़ी पर हाथ दिया और इधर मैंने अपने शरीर की अनैच्छिक क्रियाएं रोक लीं। वे मेरी नाड़ी चलती न देख भावुक हो उठे। मैंने सोचा कि मैं उनसे ध्यान योग के बारे में विचार-विमर्श करूंगा, पर इसके बदले वे ही मेरे सामने दंडवत होने की तैयारी करने लगे।

जिस युवा संन्यासी ने मुझे उनसे मिलवाया था, वे भी वैसा ही करने लगे, तो मैंने दोनों को रोका। उन्होंने मुझे बताया कि अब तक उन्हें किसी ऐसे व्यक्ति से मुलाकात नहीं हुई थी, जो वह कर सके अथवा एक ही आसन में उतनी देर बैठ सके, जितना मैंने उन्हें बताया था। उन्होंने मुझे यह भी बताया कि वे किसी ऐसे व्यक्ति को नहीं जानते थे, जिसे हमेशा गहरी शारीरिक संवेदनाएं होती हों।

ये एक ऐसे लामा थे, जिन्हें बौद्ध और तिब्बती ध्यान की उतनी ही गहरी जानकारी थी, जितनी स्वयं उनकी हथेली के पिछले हिस्से की। वे ध्यान पर संभवतः मुझसे कहीं अधिक गहन तथा प्रभावोत्पादक प्रवचन कर सकते थे, पर उन्हें उसकी अनुभव तथा अवलोकन आधारित कोई समझ न थी। त्रिपिटक, जो बौद्ध धर्म के सिद्धांतों के प्राथमिक मूलग्रंथ हैं,

उन्हें जबानी याद थे। वे बौद्धधर्म की तीनों शाखाओं, हीनयान, महायान और वज्रयान की व्याख्या कर सकते थे। वे सूत्रों तथा तांत्रिक मार्ग पर चर्चा कर सकते थे... किंतु, केवल शब्द आपको कितनी दूर ले जा सकते हैं? मैंने निराशा से अपना सिर हिलाया, उनका धन्यवाद किया और वहां से चल पड़ा।

मैं उस तांत्रिक योगी द्वारा नियत तिथि पर उनसे मिलने वापस कामाख्या पहुंचा। जब मैं उनके निकट पहुंचा, तो वे एक क्रिया कर रहे थे, और वहां मेरे सामने पड़ा था बकरे का एक कटा सिर। यह पहली बार था कि मैंने बकरे का एक कटा सिर इतने निकट से देखा। इसे देखकर एक अजीब सी अनुभूति हुई। यह लगभग जीवित ही लग रहा था, आधी खुली आंखें और थोड़ा खुले दोनों होंठ, जिनसे झांकते उसके छोटे-छोटे दांत। मुझे उस बेचारे पशु के लिए दुख हुआ। यदि उन्होंने मेरी मौजूदगी में उसका वध करने की कोशिश की होती, तो मैंने निश्चित रूप से उन्हें रोक दिया होता।

'इसे अपने अंगूठे, तर्जनी तथा कनिष्ठिका के बीच पकड़ लो,' तांत्रिक ने मुझसे कहा और मुझे एक छोटा सा पात्र थमा दिया, जो आधे अंगूठे के आकार से बड़ा न था। उन्होंने उसमें मदिरा डाली, उसके ऊपर एक गुह्य मुद्रा बनाई तथा मुझे उसे पीने को कहा।

मैंने जीवन में कभी शराब को छुआ तक न था। इसके अतिरिक्त पिछले दिन मैं उपवास पर था, क्योंकि यह दीक्षा की प्रक्रिया का एक हिस्सा था, इसलिए मैं थोड़ा चिंतित था, क्योंकि मैं अपना संतुलन नहीं खोना चाहता था। मैंने उसे पीने में थोड़ी अनिच्छा जताई। इस पर तांत्रिक ने कहा कि 'यह शराब नहीं है। यह जगन्माता के लिए एक उपहार है, जिसे पवित्र किया गया है। यदि तुम इसका एक लीटर भी ले लेते हो, तो तुम्हें नशा नहीं आएगा। और कभी भी इसे शराब मत कहो, क्योंकि यह पंचमकार के पांच घटकों में एक है।'

पंचमकार पांच सामग्रियों का एक समूह है, जिसका तांत्रिक क्रियाओं में इस्तेमाल होता है। उनमें से प्रत्येक का नाम 'म' अक्षर से शुरू होता है। साधना की प्रकृति के अनुसार, इन सामग्रियों को उनके मूलरूप में लिया जा सकता है अथवा उनके बदले में ली जानेवाली चीजें ली जा सकती हैं। शराब के साथ मुझे काली जई, अनाज के सूखे दाने, नारियल का पानी तथा फूल दिए गए। मैंने जरा सी शराब मुंह में ली, केवल उतनी ही कि बस उससे मेरा मुंह भीग जाए। मैं जानता था कि यह मेरे जीवन का पहला और आखिरी अवसर है जब मैं शराब को मुंह लगा रहा हूं। इस प्रकार, मुझे दीक्षा दी गई।

इस दिन भैरवी लाल वस्त्रों में थीं। चमकते गहनों से सजी और अपनी चिकनी ललाट पर लाल ही बिंदी लगाए वे सुंदर लग रही थीं। उन्होंने भोजन तैयार किया था और मुझे खिलाना चाहती थीं, परंतु मैं लजा रहा था। वे नहीं मानीं और मुझे भोजन परोस दिया। भोजन स्वादिष्ट था और उनके जोर देने पर मैंने अपने नियमित आहार से अधिक लेते हुए उसका आनंद उठाया। मेरे चलने से पहले दंपत्ति ने मुझे अपने आशीष दिए।

अपने मन में उठी एक प्रेरणा के आधार पर मैं पूर्वी हिमालय के एक स्थल, लावा, गया, जहां मैंने एक माह तक एक एकांत कुटी में रहकर ध्यान किया। किंतु मेरी संवेदनाएं नहीं थमीं। अब मैं पढ़ने-लिखने में समर्थ तो था, पर अधिक देर के लिए नहीं। एक दिन मैं गहरे

ध्यान में चला गया और जगन्माता से इसके समाधान की प्रार्थना की। मेरे अंतर की आवाज ने मुझे चालीस दिनों की एक यौगिक क्रिया करने का निर्देश किया। ‘यह तुम्हें अपनी ऊर्जाएं नियंत्रित करने में मदद करेगी,’ उस आवाज ने कहा। ‘तुम्हें अग्नि श्वांस को नियंत्रित करना ही चाहिए।’ अग्नि की सांस, जिसे सौर प्रणाली से निकली सांस के नाम से भी जाना जाता है, उचित नासा छिद्र से ली गई तथा छोड़ी सांस को कहते हैं। यह शरीर के तापमान को काफी बढ़ा देती है और इसलिए इसे सर्दियों में करना सबसे अच्छा होता है।

मैं एक बार फिर उत्तरी हिमालय में गया और रुद्रनाथ नामक 14,000 फीट पर बसे एक बिलकुल छोटे से टोले के निकट रहते हुए उक्त अवधि तक ध्यान किया। रुद्रनाथ अपनी भयानक ठंड की वजह से वर्ष में केवल छह माह ही खुला रहता है। मुझे एक निर्जन स्थल पर एक छोटी सी झोपड़ी मिल गई और मैंने वहीं अपना ध्यान करने का निर्णय किया। निकट ही एक सुंदर शिवमंदिर था। यद्यपि अधिकतर शिवमंदिरों में शिवलिंग होता है, पर यहां शिव की एक मूर्ति थी, जैसा विरला ही हुआ करता है।

मैंने उस यौगिक क्रिया को बड़ी सूक्ष्मता से किया। ठीक जिस तरह उस आवाज ने मुझे निर्देशित किया था, इस साधना ने मुझे मेरी ऊर्जाओं को नियंत्रित करने में सहायता पहुंचाई। हालांकि मेरी संवेदनाएं न घटीं, न समाप्त हुईं, बल्कि वे और भी अधिक सघन हो गईं, पर अब वे मेरे ललाट में केंद्रित थीं। अब मेरा शरीर कांपता न था और मुझे पढ़ना, लिखना तथा चलना पहले से बहुत आसान लगने लगा। मेरे शरीर से तीव्र आनंद की एक धारा सी बह चली, जैसे हिमालय होकर गंगा बह रही हों।

जब मेरी क्रिया समाप्त हुई, तो मैं वहां से नीचे की ओर चलते हुए गोपेश्वर नामक शहर पहुंचा, जहां मैंने रात्रि विश्राम किया। अब मेरे प्रियजनों को यह जता देने की घड़ी भी आ पहुंची थी कि वे एक बार फिर मुझे देख सकते हैं। मैंने उन्हें भेजे अपने अंतिम ई मेल में उनसे वादा किया था कि जब एक बार मैं आत्मसाक्षात्कार कर लूंगा, तो उसके तुरंत बाद मैं उन सबसे संपर्क स्थापित करूंगा। अब उस वचन का सम्मान करने का समय आ चुका।

मैंने किसी से उसका फोन लिया और होटल के अपने कमरे से अपने पिता को फोन लगाया।

‘मुझ खेद है कि मैंने आप लोगों को उस तरह छोड़ दिया,’ ये ही वे पहले शब्द थे, जो मेरे मुंह से निकल सके। मैं अब उन्हें ‘पापा’ कह पुकारने का अधिकार अथवा विशेषाधिकार खो चुका था।

‘इसका अर्थ है कि आप इतने सारे वर्षों में मुझे ठीक से समझ नहीं सके, स्वामीजी। आप एक अच्छे उद्देश्य से गए थे और मैं पहले ही आपको अपना गुरु स्वीकार कर चुका हूं। हम नित्य ही आपकी तसवीर के सामने दीप-धूप जलाते हैं। आपको मुझसे अपने किसी भी अन्य शिष्य की तरह व्यवहार करना चाहिए। अब आप सारी दुनिया के हैं, स्वामीजी।’

हालांकि मैं उनके उत्तर से विस्मित न था, क्योंकि उन्होंने कभी मेरे जीवन में कोई हस्तक्षेप नहीं किया था, पर मैं उनकी श्रद्धाभावना और स्वीकार्यता से अवश्य ही चकित था। मैं इसकी आशा नहीं कर रहा था। सच तो यह है कि मैं किसी भी चीज की आशा नहीं कर

रहा था। मैं तो बस अपने परिवार को दिए गए वचन का निर्वाह कर रहा था, क्योंकि मुझे उनसे प्रेम था, उनका ध्यान था। उन्होंने मेरी मां को फोन दे दिया। यद्यपि वे मजबूत तथा शांत दिखने की कोशिश कर रही थीं, परंतु उनका गला रुंधा था। मैंने राजन भैया और दीदी से भी बातें कीं और उन्हें बताया कि मैं दो सप्ताह में उनसे मिलूंगा।

अंततः, 7 अक्टूबर को मैं उस स्थान पर गया, जिसे मैं अपना घर कहा करता था। यहीं पर मैं पहली बार अपनी भिक्षा प्राप्त करना चाहता था। मेरे सभी निकट परिजन वहां उपस्थित थे। उनकी आंखों में मैंने मेरे बिछोह से उपजी पीड़ा देखी। जब किसी की मृत्यु हो जाती है, तो आप सांत्वना पाने का मार्ग खोज़ सकते हैं। पर जब आपका कोई परम प्रियपात्र अपनी इच्छा से गायब हो जाता है और आप नहीं जानते कि वह कहां है, तो यह एक बिलकुल ही दूसरे प्रकार की पीड़ा होती है।

अपने मातापिता में शक्ति तथा शिव का आवाहन कर मैंने उन दोनों को एक ऊंचे आसन पर बिठाया और उनके प्रति अपना सम्मान प्रकट किया। अब प्रत्येक बुजुर्ग पुरुष मेरे पिता थे और हर बुजुर्ग महिला मेरी माता। पूरा विश्व ही मेरा परिवार था पर मेरा कोई घर न था। मैं सबका था, पर कोई भी मेरा अपना न था। मुझे हरएक व्यक्ति से शर्तरहित प्रेम था, मुझे सबका ध्यान था, मैं सबकी पीड़ा उनके बराबर ही महसूस करता था। मैं अब कर्ता न रहा, बल्कि मौन भाव से अवलोकन करनेवाला बन बैठा। मैंने शांत पर्वतों जैसा महसूस किया-विशाल एवं अचल, और विस्तृत आकाश जैसा-साफ तथा अनंत।

कुछ समय बाद जब मैंने अपने पिता से बातें कीं, तो उनका पहला प्रश्न था, 'हमारे लिए आपका क्या संदेश है?'

'यह ब्रह्मांड खरबों वर्ष पुराना है और हमारी आकाशगंगा तथा पृथ्वी अरबों वर्ष प्राचीन। मानवजाति लाखों वर्ष पहले से है, जबकि औसत मानव जीवन केवल सत्तर वर्षों का ही है। यह एक अत्यंत लघु जीवन है। इसका उत्सव मनाया ही जाना चाहिए, इसे अवश्य जीया जाना चाहिए। जीवन कोई चुनौती नहीं, जिसका सामना करने की आवश्यकता हो, न ही यह कोई शत्रु है, जिससे लड़ने की जरूरत हो। सच तो यह है कि यह कोई समस्या भी नहीं, जो अपना समाधान ढूंढ़ रही हो। यह एक प्रवाहित हो रही नदी है और हमें बस यही करने की आवश्यकता है कि हम इसके साथ बहते जाएं,' मैंने कहा। 'जीएं, प्रेम करें, हंसें, बांटें।'

मैं अपनी मां से निजी तौर पर मिला। मेरे पिता की ही तरह उन्होंने भी कुछ दूरी से मेरे आगे शीश नवाया। मैंने अपने हाथ जोड़ लिए और उनसे फिर कभी वैसा न करने को कहा, क्योंकि मैं चाहे जो बन जाऊं या प्राप्त कर लूं, वे हमेशा मेरी मां ही रहेगीं। निस्संदेह, मैंने जगज्जननी दिव्यमाता की गोद पा ली थी, पर मेरी जननी, मां, की गोद भी कम भावातीत न थी। मैंने उनकी कुछ लाल और सूजी हुई आंखों में झांका। उनकी उस कोमल मुस्कान के पीछे, मैं वे आंसू देख सकता था, जो उन्होंने मुझे एक संन्यासी की वेशभूषा में देख अभी-अभी बहाए थे। वे बोलने का प्रयास तो कर रही थी, पर उनके शब्द आसानी से निकल नहीं पा रहे थे।

'भविष्यवाणी सच सिद्ध हुई, बिलकुल अक्षरशः,' उन्होंने धीरे से कहा।

‘कौन सी भविष्यवाणी, मां?’

उन्होंने मुझे मेरे जन्म के पहले उस महात्मा से हुई पूरी बातचीत सुनाई।

‘आपने मुझे इस संबंध में पहले क्यों नहीं बताया?’ मैंने पूछा।

‘मैं कभी तुम्हारे राह की बाधा बनना नहीं चाहती थी। किंतु, मेरे अंदर कहीं न कहीं यह आशा जीवित थी कि यदि मैंने इस विषय में कभी किसी से कुछ न कहा, तो संभवतः यह घटित न हो।’

‘क्या मेरे संन्यास लेने पर आप दुखी हो?’

‘यदि आपको इसमें प्रसन्नता है, तो मैं कैसे दुखी हो सकती हूं, स्वामीजी? आज मैं दुनिया को कह सकती हूं कि मैं एक महात्मा की मां हूं।’

उपसंहार

प्रबुद्धता का अर्थ यह नहीं कि आप एक दरिद्र की भांति रहें। इसका अर्थ यह भी नहीं कि आप स्वयं को कठिनाई और कठोर संयम से भरे जीवन का शिकार बना डालें। इसके विपरीत, प्रबुद्ध होने का तात्पर्य प्रेम, करुणा तथा सच्चाई के प्रकाश में जीना है। इसका अर्थ निषेधों तथा अवरोधों के बगैर जीना सीखना है। मैंने ऐसे बहुत से उपदेशकों तथा साधुओं को देखा है, जो त्याग तथा निर्लिप्तता की शिक्षा देते हुए भी अपने विचारों, कार्यक्रमों तथा स्वामित्व भावना के प्रति गहराई से लिप्त हैं। मैं विभिन्न मठों के ऐसे युवा संन्यासियों से मिला हूं, जो रेस्त्रांओं और दुकानों में जाते हैं और वहां ऐसी चीजों के आनंद उठाने को उत्सुक रहते हैं, जिसकी कीमत वे नहीं चुका सकते। भिक्षा मांगने अथवा एक ऐसे दरिद्र संन्यासी बनने के बजाए, जो भौतिक सुख-सुविधाओं की लालसा रखता हो, संसार में रहकर उससे निर्लिप्त रहना कहीं बेहतर है।

मुझे यह कहते हुए खेद है कि जब तक आपका हृदय दिव्य सत्ता के प्रति मुक्त नहीं है, विधि-विधानों तथा शास्त्रों के विषय में आपके ज्ञान, आराधना स्थलों पर आपके द्वारा व्यतीत किए गए समय, धार्मिक उद्देश्यों के लिए आपके द्वारा जुटाई धनराशि जैसी चीजों का ईश्वर से कहीं कोई संबंध नहीं है। जब तक आप इसे भली-भांति समझ नहीं लेते कि धार्मिक कृत्यों का उद्देश्य स्वयं का शुद्धिकरण तथा करुणा तथा कृतज्ञता की भावना उत्पन्न करना है, तब तक प्रबुद्धता का तो प्रश्न ही नहीं उठता; यहां तक कि ऐसे कृत्यों से एक स्वतंत्र चिंतन का मार्ग भी नहीं खुल सकता। किसी भी धार्मिक अथवा अन्य उद्देश्य से आप जितना ही अधिक जुड़ते हैं, अपनी स्वतंत्रता उतनी ही अधिक बाधित करते हैं। मैं जिन सर्वाधिक कठोर तथा गैरलचीले व्यक्तियों से मिला हूं, सामान्यतः वे उतने ही अधिक 'धार्मिक' रहे हैं। धर्म तो हमारी बनाई चीज है। यह एक बिचौलिया है, जो अधिक देने का वचन कभी नहीं निभा पाता। और इससे भी बढ़कर, यह सही आपूर्तिकर्ता से हमारा संपर्क शायद ही कभी होने देता है।

कुछ शास्त्र यह बताते हैं कि यह संसार एक भ्रम है अथवा यह कि मृत्यु के पश्चात एक स्वर्ग तथा एक नरक होता है। इनमें एक ठोस वास्तविकता अंतर्निहित हो सकती है-प्रत्येक दृश्य वस्तु का एक अदृश्य सारतत्व-पर यह इस संसार को एक भ्रम अथवा एक अवास्तविकता नहीं बनाता। आंतरिकता के पलों में आप जो सुख महसूस करते हैं, जब आपका बच्चा मुस्कुराता है, तो आप जो आनंद महसूस करते हैं, सफलता का स्वाद चखने पर आपको जो सुख मिलता है, अपने लक्ष्य की प्राप्ति पर आपको जिस उल्लास की अनुभूति होती है... ये सब अस्थाई हो सकते हैं, किंतु ये अवास्तविक तो नहीं हैं। भोजन करने से हम जो संतुष्टि तथा पोषण प्राप्त करते हैं, उसकी अनुभूति भी अस्थाई ही होती है, पर इससे हम भोजन करना बंद तो नहीं कर देते, न ही किसी ऐसी चमत्कारिक गोली की तलाश में निकल पड़ते हैं, जो फिर भोजन करने की आवश्यकता ही उत्पन्न न होने दे।

संसार अस्थाई हो सकता है, पर यह इसे अवास्तविक नहीं बना देता। वैसे भी, कोई भी चीज निरपेक्ष अथवा स्थाई नहीं है। सच तो यह है कि इस सृष्टि की प्रत्येक वस्तु निरंतर रूपांतरण की अवस्था में है: प्रत्येक चीज एक दूसरे से संबद्ध तथा एक दूसरे पर निर्भर है। प्रबुद्धता केवल उनसे ही वार्तालाप करती है, जो सत्य के प्रति खुले हैं; और अंतर्दृष्टि तो बातें करती ही नहीं, यह सीधा उतर आती है। इसलिए, मैं आपको कोई अंतर्दृष्टि दे नहीं सकता, इसे तो अंतर से ही आना होगा। मैं आपसे सिर्फ अपने सबक, अपने जीवन के पाठ साझा कर सकता हूं।

कृष्ण, ईसा, बुद्ध और मुहम्मद ने संसार से अपना ज्ञान तथा अपने सत्य साझा किए, किंतु उन्होंने बिजली के बल्ब का आविष्कार नहीं किया, अग्नि उत्पन्न नहीं की, न ही कृषि के उपकरणों का ईजाद किया। हम उन मस्तिष्कों के प्रति भी उतने ही ऋणी हैं, जिन्होंने हमें ये उपहार दिए, जितने उनके प्रति, जिन्होंने हमें हमारे महान आध्यात्मिक सत्य दिए। क्या हमारे लिए यह कहना आवश्यक है कि इनमें कौन किससे बेहतर है? हमें आध्यात्मिकता तथा विज्ञान दोनों की आवश्यकता है। हम धर्म तथा धर्मशास्त्रों पर इसलिए निर्भर हैं कि हमने स्वयं में तथा अपने साथी मनुष्यों में अपना विश्वास खो दिया है। परिणाम यह होता है कि हमें अपने सहारे के लिए बाह्य स्तंभों की आवश्यकता होती है। आत्मसाक्षात्कार स्वयं को उस सहारे से विलग करना है। उसके बाद, आपको किसी स्तंभ की आवश्यकता नहीं होती, बल्कि आप स्वयं ही दिव्य प्रेम तथा प्रकाश के स्तंभ बन जाते हैं।

यह एक बहुमूल्य जीवन है, और सभी धर्म, चाहे भले के लिए अथवा बुरे के लिए, केवल अवधारणाएं हैं। आप जितनी जल्दी इस वास्तविकता के प्रति जाग्रत हो जाएंगे, उतनी ही जल्दी आप उनसे ऊपर उठ सकेंगे। किंतु कोई भी सत्य ऐसा नहीं होता कि वह हर मामले के लिए सही हो। यह एक व्यक्तिगत चीज, एक निजी मामला है। आइंस्टाइन ने इसे प्रयोगशाला में पाया। बुद्ध ने इसे एक वृक्ष के नीचे प्राप्त किया। एडिसन ने इसे बिजली के बल्ब में प्राप्त किया। सुकरात ने इसे जहर का प्याला पीकर साबित किया, जबकि ईसा ने इसे सूली पर चढ़ कर सिद्ध किया। बिल गेट्स ने इसे माइक्रोसॉफ्ट में प्राप्त किया और स्टीव जॉब्स को यह ऐपल में मिला। आपका सत्य क्या है?

शाश्वत सत्य यह है कि आपको अपना जीवन उसकी संपूर्णता में जीने का अधिकार प्राप्त है। इसका प्रत्येक पल। यह वह सबसे छोटी चीज है, आप जिसे प्राप्त करने के पात्र हैं। इस तथ्य का कि आप सांसें ले रहे हैं और जीवित हैं, अर्थ यह है कि प्रकृति को आपकी आवश्यकता है, जीवन को आपकी आवश्यकता है। जब तक आपकी दृष्टि में करुणा है और आप दूजों को हानि नहीं पहुंचा रहे, तब तक प्रत्येक चीज-हां, लगभग हरएक चीज-सही है। अपने अंतर की आवाज सुनिए। यह आवाज वह सर्वाधिक विशुद्ध आवाज है, जिसे आप कभी जान सकेंगे। आपका सत्य भी आपका महानतम धर्म, आपका उच्चतम ईश्वर है। अपने स्वयं के रास्ते पर चलने से ही संतुष्टि का भाव आता है। किसी के लिए यह ध्यान हो सकता है, दूसरों के लिए यह संगीत, नृत्य, चित्रकला, लेखन अथवा पठन हो सकता है। इसे पता कीजिए कि कौन सी चीज आपको प्रसन्नता देती है और उसके ही पीछे लग जाइए।

मैं आपका पारंपरिक साधु अथवा एक ब्रह्मचारी संन्यासी नहीं हूं। मैं एक कर्मकांडी पुजारी या एक गैरलचीला उपदेशक भी नहीं हूं। मैं केवल अपना स्वयं का सत्य हूं, जो बगैर किसी अपेक्षा अथवा उद्देश्य के, आपको यह आजादी देते हुए कि आप चाहे जिस तरह भी उसकी व्याख्या कर लीजिए, आपके सम्मुख खुला पड़ा है। मैं आपको इस हेतु आमंत्रित करता हूं कि आप इसकी तलाश कर कि कौन सी चीज आपके लिए सबसे महत्वपूर्ण है और, साथ ही, अपना जीवन उसकी संपूर्णता में जीकर, अपनी मुक्ति की खोज स्वयं कीजिए। अपने नियम एक बार फिर से तय कीजिए, एक बार पुनः अपनी परिभाषा निश्चित कीजिए। जीवन को कदापि इसकी अनुमति न दीजिए कि वह आपको चूक जाने दे। आप अनंत संभावनाओं के स्वामी हैं।

मैंने आपको अपना सत्य बता दिया है। जाईये, अब अपने सत्य खोंजे।

आभार

मेरे जीवन में जिन असंख्य लोगों ने अपना योगदान किया है, उनके प्रति अपनी कृतज्ञता व्यक्त करना मेरी अभिव्यक्ति की सीमा के परे है। ठीक जिस तरह यह शरीर असंख्य कोशिकाओं की एक बस्ती है, मेरा जीवन दूसरों के द्वारा किए गए शुभ कर्मों का एक संचय मात्र है। यह संस्मरण तथा मेरा एक-एक श्वास मेरे हृदयपटल पर उनकी कूचियों द्वारा उकेरी सुंदर और चमकीली रेखाओं की स्वीकृति हैं।

धैर्यपूर्वक मुझे सहन करने तथा मेरी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए माता पृथ्वी के प्रति मेरी गहनतम कृतज्ञता। मैं एक-एक सजीव प्राणी के प्रति ऋणी हूं, क्योंकि हम सभी एक दूसरे से संबद्ध हैं तथा हम जो कुछ भी करते हैं, उसका प्रभाव सब पर पड़ता है। इसलिए ब्रह्मांड द्वारा मुझे प्रदत्त प्रेम तथा शांति का कोष मेरे आसपास के लोगों के भले कृत्यों का एक सीधा परिणाम है।

वे लोग, जिन्होंने मुझे वह सिखाया, जिसे मेरे द्वारा सीखे जाने की आवश्यकता थी, जिन्होंने मुझे मेरी भूलों के लिए क्षमा किया, जिन्होंने मुझे असीम स्नेह दिया तथा पूर्ण रूप से सहयोग प्रदान किया। मैं आप सबके प्रति कृतज्ञ हूं।

किसी पृष्ठ पर लिखे चंद शब्दों के लिए यह कदापि संभव नहीं कि वे मेरे इस संस्मरण में प्रत्येक व्यक्ति के योगदान को स्वीकार सकें। फिर भी, मुझे उनका उल्लेख तो करना है, जिन्होंने एक बड़े उद्देश्य के लिए इस पुस्तक को एक वास्तविकता में बदलने हेतु अथक परिश्रम किया।

मैं कोई लेखक नहीं हूं। इसे मैंने तब अनुभव किया, जब मैंने अपने संस्मरण का पहला प्रारूप पूरा कर लिया। आपसे ईमानदारीपूर्वक कहूं, तो वह पढ़ने में किसी पुस्तक की बजाए माइक्रोवेव चूल्हे से काम लेने की एक मार्गदर्शिका की तरह अधिक प्रतीत होता था, क्योंकि उसमें मैं अपने जीवन के घटनाक्रम का एक विवरण मात्र दर्ज कर सका था। जो कुछ अधिक उल्लेखनीय है, वह यह कि मैंने उसे ही एक अच्छी उपलब्धि भी समझ लिया। फिर मेरी

पांडुलिपि एक बहुत ही प्यारी इंसान, इस्मिता टंडन के हाथों में पहुंची और उन्होंने इसकी प्रथम संपादिका के रूप में पांडुलिपि के रुपांतरण में अपना सहयोग दिया। स्वामी तथा उसके लेखन में आपकी अडिग आस्था के लिए आपको धन्यवाद, इस्मिता।

मैं इस संस्मरण के स्वयं-प्रकाशन की बात सोच रहा था, पर तभी इस्मिता ने यह पांडुलिपि हार्परकॉलिंस इंडिया की एक कमीशनिंग संपादक, रुक्मिणी चावला कुमार के पास भेज दी, जिन्होंने इसे प्रकाशित करने में अपनी रुचि दिखाई। मैंने सोच लिया था कि अब पांडुलिपि का संपादन संपन्न हो चुका है, पर तभी रुक्मिणी ने बारीकियों के प्रति अपनी विलक्षण दृष्टि के साथ उसका संपादन शुरू किया और एक जादू सा कर दिखाया। यदि एक टोप के अंदर से खरगोश निकाल दिखाने जैसे करामात के लिए कोई साहित्यिक अभिव्यक्ति है, तो रुक्मिणी ने ठीक वही किया। उस करिश्मे के लिए आपको धन्यवाद, रुक्मिणी, जिसे केवल आप ही कर सकती थीं।

मेरे प्रारंभिक प्रारूप के एक-एक शब्द को बारीकी से पढ़कर उसमें जहां-जहां भी अधिक स्पष्टता की आवश्यकता थी, वहां निशान लगाकर मेरी सहायता करने के लिए कनाडा निवासिनी अंजू मौदगिल विशेष उल्लेख की पात्र हैं। आपके सतत उत्साह तथा अद्वितीय समर्पण के लिए आपको धन्यवाद, अंजू।

मैं पीबी, ऑस्वाल्ड पेरीरा, नवजोत गौतम, हरप्रीत गिल, सुवि गर्गस, मीनाक्षी अलिमचंदानी, केली बेलाकोविच, श्वेता गौतम, मानिक गौतम और कनिष्क गुप्ता को उनकी टिप्पणियों के लिए धन्यवाद देना चाहूंगा। मेरे संस्मरण के अंश सुनकर उस पर अपनी प्रतिक्रिया देनेवाले दो स्वामियों, स्वामी परमानंद तथा स्वामी विद्यानंद के प्रति मेरी कृतज्ञता। गणेश ओम को उनकी गहरी तथा अंतर्दृष्टिपूर्ण टिप्पणियों के लिए धन्यवाद।

अत्यंत प्रभावोत्पादक आवरण डिजाइनर, एलेग्जेंडर वोन नेस तथा प्रख्यात कलाकार, मिन वे औंग को इस हेतु धन्यवाद कि उन्होंने इस पुस्तक के आवरण के लिए हमें अपनी कलाकृति के उपयोग की अनुमति दी। आवरण में अपने सृजनात्मक योगदान के लिए हार्पर कॉलिंस की बोनिता शिमरे को भी धन्यवाद। पुस्तक में कलाकारी के वित्तपोषण तथा प्रबंधन के लिए राजन शर्मा को मेरा धन्यवाद।

मैं श्रीदेवी राव तथा हार्पर कॉलिंस की विक्रय एवं विपणन टीम को, खासकर समीर महाले, इति खुराना और हिना मोबर को उनके अमूल्य योगदान के लिए धन्यवाद देना चाहूंगा।

मैं पूरी जयको टीम को भी धन्यवाद देना चाहूंगा। विशेष रूप से आकाश शाह, संध्या आइयेर तथा संजय हीरे।

दो अद्भूत अनुवादक विजय नंदन तथा रचना भोला ‘यामिनी’, जिन्होंने बहुत कम समय में इतना सुन्दर अनुवाद किया, मेरा आपको बहुत बहुत धन्यवाद।

बात यहीं समाप्त नहीं होती। यह सुनिश्चित करने में कि यह पुस्तक अधिकाधिक पाठकों तक पहुंच सके, कुछ अन्य लोगों ने भी बहुत सहायता की। विशेष तौर पर, संजीव मदान, टी आर रामचंद्रन, सरला पंचपकेसन, नीता सिंघल, प्रसाद परशुरामन तथा उन्नति फाउंडेशन,

बेंगलूरू के प्रति मेरी कृतज्ञता।

और अंत में, विवेक धूमे के बगैर कुछ भी संभव न हो पाता, जिन्होंने इस पूरे उद्यम के लिए उदार तथा शर्तरहित वित्तीय सहायता उपलब्ध कराई और नरेन्द्र आनंद, जिन्होंने इसे त्रुटिहीन ढंग से कार्यान्वित किया। आप दोनों को धन्यवाद। स्वामी आपका ऋणी है।

अब आप मेरे यह कहने का अर्थ समझ चुके होंगे कि यह पुस्तक तथा मेरा जीवन दूसरों के द्वारा किए गए शुभ कर्मों का परिणाम है।